रोगोंकी नई चिकित्सा

लूई कूनेकी

New Science of Healing

का

भावानुवाद

आ रो ग्य - मं दि र - प्र का श न

मुख्य विक्रेता : सस्ता साहित्य-मंडल नई दिल्ली

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर,
गोरखपुर

प्रथम वार : जनवरी १९५७
मूल्य : दो रुपये

मुद्रक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,

भूमिका

यद्यपि प्राकृतिक चिकित्साका जन्म कूनेके बहुत पहले हो चुका था। विंसेट प्रिसनिज, फादर क्नाइप, जे० स्कॉथ, अरनॉल्ड रिक्ली, हेनरिच लेमैन आदि प्राकृतिक चिकित्सक प्राकृतिक चिकित्साका प्रयोग सफलतापूर्वक कर चुके थे और इसका सदेश भी ससारको दे चुके थे, पर हिंदुस्तानमे प्राकृतिक चिकित्सा कूनेकी इस पुस्तक 'रोगोकी नई चिकित्सा' (दि न्यू साइंस ऑव हीलिंग) के साथ आयी। उत्तर भारतमे पहले-पहल इसका अनुवाद उर्दू और हिंदीमें मुरादाबादके श्रीश्रोत्रियजी कृष्ण स्वरूपने किया और इसके बाद साहू रामकुमार तथा अन्य कई व्यक्तियोने किया। श्रोत्रियजी और साहू रामकुमारजी तो कूनेकी पद्धतिके प्रबल समर्थक भी थे। इन लोगोने स्वय इससे लाभ उठाया तथा औरोको भी लाभ पहुचाया था और आज ऐसे व्यक्तियोकी सख्या सैकडोमे है जो कूनेकी पद्धतिद्वारा लोगोको लाभ पहुचा रहे हैं और ऐसे लोगोकी संख्या तो हजारोमें है जिन्होने कूनेकी इस पुस्तकको पढकर लाभ उठाया है। वस्तुतः कूनेकी पद्धति इतनी सरल और भारतीय जलवायुके इतनी अनुकूल है कि इसको छोड़कर कोई भी चिकित्सक प्राकृतिक चिकित्सा सफलतापूर्वक चला भी नही सकता और न कोई अन्य पद्धति इतनी सरलतासे हर घरमें चलायी ही जा सकती है।

मैंने कूनेकी पद्धतिसे स्वय बहुत लाभ उठाया है और यह पद्धति आज भी आरोग्य-मंदिरकी चिकित्साकी रीढ बनी हुई है। साहित्यिक दृष्टिसे भी प्राकृतिक चिकित्साके मूल सिद्धात 'रोगोकी एकरूपता' का इस पूर्णतासे विवेचन करनेवाली दूसरी पुस्तक अभीतक लिखी ही नही जा सकी। अतः हर रोगी और प्राकृतिक चिकित्साके हर विद्यार्थीके लिए इसकी उपयोगिता आज भी पूरी-पूरी बनी हुई है।

कूनेसे परिचित होनेके बादसे ही इसका एक सरल, स्पष्ट और अच्छा

छपा हुआ अनुवाद प्रकाशित करनेकी मेरी इच्छा रही है। मुझे वडी प्रसन्नता है कि वह इच्छा वहुत देरसे सही, पर आज पूरी हो रही है। इस अनुवादमें कूनेकी कही पूरी वातें आ जाय इसका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है, केवल पुनरुक्तियां कम कर दी गयी हैं।

गाधीजी कूने, जस्ट और क्नाइपकी कृतियोंको प्राकृतिक चिकित्साका मूलाधार मानते थे। वे इनका पढना प्राकृतिक चिकित्साके हर एक प्रेमीके लिए आवश्यक वताते थे। जस्टकी एकमात्र पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' का हिंदी अनुवाद हम 'प्राकृतिक जीवनकी ओर' के नामसे प्रकाशित कर चुके हैं। कूनेकी मूल पुस्तक 'दि न्यू साइस ऑव हीलिंग' का यह अनुवाद प्रस्तुत है। अव हो सका तो हम क्नाइपकी पुस्तक "माइ वाटर क्योर" का अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

आरोग्य-मदिर
गोरखपुर
१५-२-५७

विठ्ठलदास मोदी

विषय-सूची

रोगोंकी नई चिकित्सा

भाग १

आविष्कारकी कहानी

मैं हमेशासे प्रकृतिका प्रेमी रहा हू। खेतो और जगलोमें, आकाश और पृथ्वीपर प्रकृति माता अपने कार्य कैसे करती है इसका अध्ययन करनेका मुझे सदा विशेष चाव रहा है। चिकित्सकका काम तो मुझपर परिस्थितिवश आ पडा।

बीस सालकी उम्रमें ही मेरा शरीर जर्जर हो गया, मेरे फेफड़ों और सिरमें भयकर दर्द रहने लगा। पहले मैंने डाक्टरोसे इलाज कराया, पर वेफायदा। डाक्टरोमे मेरा विश्वास था भी नही। मेरी मां सदा बीमार रहती थी और वे अपनी सारी पीडाओका कारण दवाओको ही ठहराती थी। वे हमेशा हमें समझाया करती थी कि डाक्टरोसे दूर ही रहना। मेरे पिताजी भी डाक्टरोकी दवा करते-करते आमाशयिक कर्कटिका (कैंसर) से मरे थे।

इन्ही दिनोकी बात है। मुझे पता चला कि एक जगह प्राकृतिक चिकित्साके प्रेमियोका एक जलसा होनेवाला है। मै वहा गया और हिम्मत करके एक भाईसे अपने फुप्फुसोके दर्दका इलाज पूछा। मुझे सीनेकी गीली पट्टी बताई गई। उससे मुझे लाभ हुआ। मेरे भाईने बीमार पडनेपर 'हान' नामक प्राकृतिक चिकित्सकसे चिकित्सा कराई और कुछ ही सप्ताहोमें अच्छा होकर घर वापस आ गया। हानके कुदरती इलाजके तरीकेकी तारीफ मै पहलेसे ही सुनता आ रहा था। इस प्रत्यक्ष प्रमाणने प्राकृतिक चिकित्सापर मेरी आस्था जमा दी।

मेरा रोग अभी जडसे नही गया था। मुझे विरासतमें अपने पितासे

मिले रोगके कीटाणु डाक्टरोंद्वारा मेरे शरीरमे डाली गई दवाओका सहारा पाकर तेजीसे बढ रहे थे। दशा दिन-पर-दिन खराब होती जा रही थी। पिताजीकी तरह मेरे आमाशयमे भी कर्कटिका पैदा हो गयी थी, फुप्फुस अशत नष्ट हो गए थे, सिरकी नाडिया हमेशा उत्तेजित रहती और ठडी हवामे ही मुझे कुछ आराम मिलता। नीद तो आती ही न थी। मै कोई काम करने लायक नही था। यो मै देखनेमें मोटा-ताजा था, गालोपर लाली भी थी, पर मेरी नस-नसमें रोगोने घर कर रखा था। मैंने उस समय प्रचलित प्राकृतिक चिकित्साके अनुसार स्नान, गीली पट्टिया, एनिमा आदिका प्रयोग किया, पर दर्द कभी-कभी मिट जानेसे अधिक कुछ नही हुआ। इसी दशामे प्रकृतिके अध्ययनद्वारा मैंने उन नियमोको जाना जो मेरी चिकित्साके आधारस्तंभ है। मैंने अपनेपर इन नियमोंकी आजमाइश की और अपनी चिकित्साके कामके टब वगैरह बनाए। मेरा प्रयोग काफी सफल रहा और मेरी दशा सुधरती गई। मेरी सफलता देखकर मित्रो एव सबधियोने भी मुझसे परामर्श कर अपना इलाज शुरु किया और उन्हे जो लाभ हुआ उससे उन्हे बहुत सतोष हुआ।

पर इसका बाहरी लोगोपर कोई प्रभाव नही पड़ा। मैंने जिसे भी अपने सिद्धात बताए उसीने मेरी हँसी उडाई। पुराने प्राकृतिक चिकित्सको-से मैंने अपनी विधि आजमानेकी सिफारिश की, पर उन्होने भी मेरी प्रार्थना-पर कोई ध्यान नही दिया। ऐसी दशामें मेरे लिए लोगोपर अपनी चिकित्सा-विधिका प्रयोग करके एलोपैथी, होमियोपैथी आदिपर इसकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके अलावा और कोई चारा ही नहीं रहा।

इस विचारने मेरे सामने एक समस्या खडी कर दी। अपने विचारोके अनुसार काम करनेके मानी यह होते कि मै अपना कारखाना बद कर दू जो चौबीस वर्षोसे अच्छी तरह चल रहा था। बिना कारखाना बद किए मै रोगियोकी चिकित्सामें पूरा समय नही लगा सकता था। वर्षो तर्क और भावनाके बीच सघर्ष चलता रहा। अतमे भावनाकी जीत हुई। मैंने अक्तूबर सन् १८८३ में अपना जल-चिकित्सालय खोल दिया। पहले

सालोतक मेरे पास कोई रोगी नही आया, फिर धीरे-धीरे कुछ रोगी, खासकर दूसरे शहरोसे, आने लगे और जब मेरे यहासे नीरोग होकर गए हुए लोगोने रोगियोको भेजना शुरू किया तो मेरे पास रोगियोकी भरमार हो गई। निदानकी मेरी नई पद्धति आकृति-विज्ञान तथा मेरी चिकित्सा-विधि हजारो रोगियोपर सफल हुई और बहुतसे लोगोको तो मैंने उनको भविष्यमे होनेवाले रोगोकी सूचना देकर बहुत बडे कष्टोसे बचा लिया।

मेरा अपना स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो गया। इसमे मेरे अपने आविष्कार मेहनस्नानने बहुत मदद की। मेरा विश्वास है कि इस स्नानकी मददसे हर रोग अच्छा किया जा सकता है। खयाल रहे कि **मै हर रोग कहता हूं, हर रोगी नहीं।** जब शरीर जर्जर हो जाता है, विशेषत जब वर्षो दवाओका प्रयोग करते रहनेपर शरीर दवाके तरह-तरहके जहरोसे भर जाता है और शरीरके अगोकी इन जहरोको निकालनेकी शक्ति चली जाती है, तब मेरा तरीका केवल तकलीफ मिटा सकता है, रोगीको बचाने या पूर्णत स्वस्थ करनेका काम नही कर सकता।

यदि एलोपैथीसे प्राकृतिक चिकित्साकी तुलना की जाय तो दोनोमे सिर्फ इतनी समता है कि दोनोका विषय मानवशरीर है। वैसे तो मेरा खयाल है कि आज जो खोजनेसे भी स्वस्थ आदमीका मिलना मुश्किल हो गया है उसका कारण एलोपैथीद्वारा दवाके रूपमे शरीरमे डाला जानेवाला विष ही है। जीर्ण रोगोकी वृद्धिका कारण भी ये दवाए ही है। चीर-फाड भी अस्वस्थता बढानेमे खास तौरसे सहायक हो रही है। अगर समयपर प्राकृतिक चिकित्साकी सहायता ली जाय तो इसकी जरूरत ही न रहे।

हा, हम होमियोपैथीको औषधवादके विरुद्ध एक जिहाद कह सकते है। इसमें दवाका कम-से-कम प्रयोग एव भोजनका नियत्रण 'रोगोकी नई चिकित्सा' के निकट पहुचनेकी सीढी माना जा सकता है। यो मेरा अनुभव यह है कि होमियोपैथीकी गोलिया कितनी भी छोटी क्यो न हों

वे खतरेसे खाली नही है। इसके अलावा इस पद्धतिका भोजनके सबंधमें कोई स्पष्ट मत भी नही है।

मेरे आविष्कारोके पहले भी प्राकृतिक चिकित्साकी जो विधि प्रचलित रही है वह दूसरी चिकित्सा-पद्धतियोसे कही श्रेष्ठ है। मेरे आविष्कार उन्हीके आधारपर हुए है। मैंने प्रिसनिज, स्क्राथ, रास, थोडरहान-जैसे प्राकृतिक चिकित्साके महान् उन्नायकोका ही अनुसरण किया है, औरोका नही। दूसरे तो प्राकृतिक चिकित्साको अपना निजी आविष्कार सिद्ध करनेकी धुनमें प्रकृतिके सरल मार्गसे दूर जा पडे और उसे बेमतलब पेचीदा और अस्वाभाविक बनानेकी कोशिशमे लगे रहे।

पिछले खेवेके प्राकृतिक चिकित्सकोकी सबसे बडी कमजोरी यह रही कि वे रोगके स्वरूपको नही पहचान सके—वे यह न जान सके कि शरीरमें विजातीय द्रव्य किस तरह स्थान बदलता और किसी विशेष स्थानपर आकर ठहर जाता है। इसलिए निदानके लिए उन्हे डाक्टरोकी ही रीति अपनानी पडी, हाला कि प्राकृतिक चिकित्सकोंके लिए इस प्रकारके 'सही' निदानकी कोई आवश्यकता ही नही है।

'रोगोकी नई चिकित्सा'की निदान-विधि बिलकुल अपनी है। इसे 'आकृति-विज्ञान' कहते हैं। इसके जरिए मनुष्यका मुख और गर्दन देखकर रोगकी गति समझी जा सकती है।

जलके प्रयोगोको भी मेरी विधिने बहुत आसान बना दिया है। रोगोका स्वरूप ठीक तरहसे समझनेवालोको पता चल जाता है कि जलकी पट्टियो, एनिमा, फुहारेका स्नान, अर्ध-स्नान, पूर्ण-स्नान एवं भापका विविध रूपोमें इस्तेमाल अशत आडबर है।

पहले प्राकृतिक चिकित्सामें साधारणत भोजनपर उतना ध्यान नही दिया जाता था अथवा रोगीकी पुरानी आदतोका खयाल करते हुए कुछ थोडा-सा हेर-फेर कर दिया जाता था, पर मेरी 'रोगोकी नई चिकित्सा' सदा अनुत्तेजक आहार ग्रहण करनेकी सिफारिश कर हैती जो प्राकृतिक नियमोपर आधृत है। इस अनुत्तेजक आहारकी व्याख्या मैंने इतनी

स्पष्ट रीतिसे की है कि इसे समझनेमे किसीसे किसी तरहकी गलती होनेकी सभावना नही है।

अब मै इस वातका विचार करूगा कि कौन शरीर स्वस्थ और कौन अस्वस्थ कहलाता है। इसी सवालके जवावपर मेरी सारी चिकित्सा-पद्धति अवलवित है। लोगोके विचारोमे इस सबधमें वडी-बडी उलझनें है। कोई कहता है कि मै पूर्ण स्वस्थ तो हू, केवल जोडोमे वातके कारण दर्द रहता है। दूसरा कहता है, मुझे तनिक-सा नाडी-दौर्वल्य जरूर है, वाकी मेरी तदुरुस्ती बिल्कुल ठीक है। ये लोग समझते है कि शरीर कई हिस्सोमे वटा हुआ है और उन हिस्सोका आपसमे कोई ताल्लुक नही है। ताज्जुब तो यह है कि हमारे डाक्टर भी यही मानते है, क्योकि जब वे किसी एक अगके कष्टके लिए दवा देते है तो शायद ही कभी शरीरके दूसरे अगके सवधमे सोचते हो; पर इसमे क्या कोई शक है कि हमारा सारा शरीर एक है और सारे अगोका आपसमें अविच्छिन्न सवंध है। किसी एक अगमे रोग होनेपर उसका असर शरीरके सारे हिस्सोपर पडना अनिवार्य है। कोई भी विचारशील व्यक्ति इसे समझ सकता है। यदि आपके दातोमें दर्द हो जाय तो आपसे कोई काम मुश्किलसे हो पाता है और तव आपको न तो खाना अच्छा लगता है न पीना। अगर कोई एक उगुली कट जाय तब भी यही असर होता है; आमाशयमे दर्द पैदा हो जाय तो न शारीरिक श्रम हो सकता है न मानसिक। आरभमें ऐसी स्थिति नाडियोके द्वारा तात्कालिक प्रभावके रूपमें ही पैदा की जाती है, पर सभी जानते है कि शरीरमे कोई एक रोग शुरू हो जानेके बाद अनेक रोग पैदा हो जाते है और एक रोग भी अधिक दिनोतक बना रहे तो हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है, चाहे उसकी प्रतीति हमे हो या न हो। जब हमारे शरीरके सभी अग अपनी स्वाभाविक अवस्थामें रहते और अपना काम वगैर किसी कष्ट, दवाव या तनावके करते है तभी हम शरीरको स्वस्थ कह सकते है। इसके अलावा शरीरके अगोंकी वनावट भी ऐसी होनी चाहिए कि जिस कामके लिए वे बने है उसे वे पूर्ण रूपसे कर

सकें। उनकी काम करनेकी यह योग्यता ही उनके सौंदर्यका मापदंड है। जब शरीरका कोई अंग देखनेमें बेडौल लगे तो जानना चाहिए कि यह बेडौलपन किसी खास कारणसे आया है, पर किसी अंगको व्यक्ति-विशेषके शरीरकी बनावटका विशेष अध्ययन करनेके बाद ही बेडौल कहा जा सकता है। इसके लिए हमे पहले स्वस्थ आदमी मिलने चाहिए जिनके शरीरके अध्ययनद्वारा समझा जा सके कि शरीरके अंगोकी स्वाभाविक बनावट क्या है। इस समय तो स्वस्थ आदमीका मिलना ही कठिन हो गया है।

कुछ लोग मोटे-ताजे कसरती पहलवानोंको स्वस्थ कह देगें; पर उनसे पूछिए तो वे आपको बताएगे कि और सब तो ठीक है, केवल सिरमें अथवा दातमें और शरीरमें और कही कभी-कभी कुछ दर्द हो जाया करता है। इससे साबित होता है कि पूर्ण स्वास्थ्य उनसे बहुत दूर है। इस दृष्टिसे शरीरकी स्वाभाविक आकृतिको जाननेके लिए व्यापक अध्ययनकी आवश्य-कता है; तथापि रोगी शरीर और अपेक्षाकृत नीरोग शरीरकी आकृतिका मिलान करके थोडा-बहुत जरूर समझा जा सकता है।

मैंने यह बताया है कि रोग शरीरकी स्वाभाविक आकृतिमें फर्क डाल देता है। मोटापेको लीजिए। इसमे शरीर स्थूल और गोल हो जाता है। दूसरी तरफ वे लोग है जो बिल्कुल दुबले रहते है, शरीरपर कभी चर्बी नही चढ पाती। इन दोनों ही आकृतियोंके अस्वाभाविक होनेमें कोई शक नही है। दात गिरनेपर मुंह पोपला हो जाता है, गठिया होनेपर जोडोमें सूजन आ जाती है, वातविकारोंमे सारा शरीर सूज जाता है। इन रोगोंके कारण आकृतिमें जो परिवर्तन होता है वह इतना साफ होता है कि साधारण आदमी भी उसे समझ सकता है। कुछ रोगोमें यह परिवर्तन उतना स्पष्ट नही भी होता। आप जानते है कि स्वस्थ आदमीकी आंखे स्वच्छ एव शांत होती है और उनमें किसी प्रकारके डोरे वगैरह नही होते। पर मनुष्यके चेहरेकी किस आकृतिको स्वाभाविक कहे यह जरा कठिनतासे समझमे आता है। जब आप किसी मित्रसे वर्षों बाद मिलते है तो आसानीसे आपकी समझमें

आ जाता है कि उसकी शक्लमे फर्क पड़ा है और इस परिवर्त्तनके कारण उसका मुह आपको पहलेकी अपेक्षा अधिक अस्वाभाविक लगता है। यदि आपसे पूछा जाय तो आपके लिए यह बता सकना कठिन होगा कि यह अस्वाभाविकता आपको क्यो प्रतीत होती है। शरीरके इस परिवर्तनसे उसके सौंदर्यका ह्रास होता है और इस परिवर्तनका बहुत बडा अर्थ है जिसके बारेमे मै आपको बताऊगा; पर इतनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रोगके कारण शरीरकी आकृतिमे और विशेष रूपसे गर्दन और मुहकी आकृतिमे अतर पड जाता है और इस अतरको देखना तथा समझना बहुत आवश्यक है।

यह काम कौन कितनी खूबीसे कर सकता है यह बात अलग है, पर इस चीजको ठीक तौरसे जाननेके लिए सतत साधना और लबे समयतक यत्नशील रहनेकी जरूरत है। जो लोग आकृति-विज्ञानको गहराईसे समझना चाहते हैं उन्हे मेरी आकृति-विज्ञान पुस्तक पढनी चाहिए।

कौन स्वस्थ है और कौन अस्वस्थ, यह समझनेकी अब मै एक दूसरी कसौटी आपके सामने रखता हू।

हम जान चुके है कि रोग कोई भी हो अथवा कही भी हो, उसका असर सारे शरीरपर रहता है। अत. हम शरीरके किसी भी एक अगकी परीक्षा करके स्वास्थ्यकी दशा समझ सकते है। इस जाचके लिए पाचन-प्रणालीको लें, क्योकि इसकी परीक्षा शीघ्र पूरे तौरसे हो सकती है। पाचन ठीक है तो शरीर भी स्वस्थ है। पाचन ठीक हुआ है या नही, यह पाचनके बाद बचे मलके निरीक्षणद्वारा जाना जा सकता है। यदि भोजन ठीक तरहसे पचा है तो मल मलाशयके द्वारपर चिपके बिना बाहर हो जाता है। प्रकृतिके सपर्कमे रहनेवाले पक्षियो एव घोडोमें यह बात स्पष्ट रूपमें देखी जा सकती है। मलाशयका छोर प्रकृतिद्वारा ऐसा बनाया ही गया है कि यदि वहा पहुचनेपर मलमे उचित घनत्व हो तो वह बिना वहा चिपके आसानीसे बाहर हो जाता है। इस विषयपर मैंने अपनी 'मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?' पुस्तकमे विस्तारपूर्वक लिखा है।

यदि मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हो तो आवदस्तकी जरूरत न होनी चाहिए, क्योकि उस दशामें मलाशयके द्वारपर मल लगा होगा ही नहीं।

जो उपर्युक्त दृष्टिसे स्वस्थ हो, उसे अपनेको बडा भाग्यवान् समझना चाहिए। यो भी स्वस्थ आदमीकी तवियत विल्कुल ठीक रहती है। यदि उसे कोई वाहरी आघात न लगे तो उसके शरीरमे कही दर्द या कष्ट नही होता। असलमे उसे अपने शरीरके होनेका ज्ञान नही रहता। उसे काम करनेमें आनद आता है और जवतक उसे थकान नही आती उसका मन काममें लगा रहता है। थकान आनेपर वह मीठी नीदका आनद लेता है। चिंताएं उसे नही घेरती, वह हर परिस्थितिके लिए तैयार रहता है। इसी तरह स्वस्थ माता अपने वच्चेको पिलाकर आनद पाती है। वच्चोका स्वय पालन करना उसके लिए खुशीकी वात होती है।

इस प्रकार 'रोगोकी नई चिकित्सा'का इतिहास मेरे स्वस्थ होनेका इतिहास है। मै वीमार पडा और दवाओंसे निराश होनेपर प्रकृतिप्रेमी होनेके नाते प्राकृतिक चिकित्साकी ओर झुका, पर उसे आजमानेपर उसमें अपूर्णता प्रतीत हुई। उसे पूर्ण वनानेके लिए मैंने अनेक प्रयोग किए। रोगियोंके शरीरका निरीक्षण करते-करते यह ज्ञात हो गया कि रोगीकी आकृतिमें किस प्रकार परिवर्तन होता है और स्वस्थ होनेपर वह किस प्रकार स्वाभाविक हो जाती है। रोग क्या है और वह किस प्रकार पैदा होता है, रोग कैसे और क्यो होते है और कैसे जाते है इन विपयोकी चर्चा आगे होगी।

रोग कैसे उत्पन्न होता है ? ज्वर क्या है ?

रोग क्या है, कैसे उत्पन्न और प्रत्यक्ष होता है, बुखार क्या है—आदि बातोके सबधमे लोगोमें बडा भ्रम फैला हुआ है। यदि रोगके स्वरूपका पूरा-पूरा ज्ञान हो जाय तो उसे दूर करनेका उपाय भी आसानीसे मालूम किया जा सकता है और तब अधेरेमे टटोलनेका कोई कारण ही नही रह जायगा।

कुछ रोगोमें शरीरमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य देख पडता है—भले ही सवमे एक-जैसा न हो, पर होता है अवश्य। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वस्थ शरीरका एक साधारण रूप होता है और उस रूपमें परिवर्तन रोगका ही परिणाम हुआ करता है। गर्दन और शक्लमे जो परिवर्तन देख पडता है वह उदरसे आरभ होनेके कारण उदरमे और कमरके नीचे और अधिक होता है। विजातीय द्रव्य मलमार्गोसे वाहर न निकल सकनेपर मासपेशियोमे पहुच जाता है जिससे शरीर कुछ फैल जाता है। जब पेशियोका तनाव इतना बढ जाता है कि वे और स्थान नही दे सकती तब यह द्रव्य पेशियोकी बगलमे त्वचाके नीचे एकत्र होने लगता है। गर्दन और शक्लका परिवर्तन इसी अवस्थामे प्रत्यक्ष होता है।

गर्दन और शक्लका यह परिवर्तन, उनमे विजातीय द्रव्यका एकत्र होना इस वातका प्रमाण है कि वह शरीरके अधोभागमे अधिक मात्रामे एकत्र हुआ होगा; क्योकि नीचे, उदरमें एकत्र होनेके बाद ही वह ऊपरकी ओर वढता है। लोगोको इस वातका ज्ञान नही होता कि शरीर गलत जगहमें एकत्र इस द्रव्यका कोई उपयोग नहीं कर सकता और यह उसका अश नही है। वे यह भी नही जानते कि आया यह द्रव्य ही रोगका कारण है या रोगके ही कारण यह द्रव्य एकत्र हुआ है। गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तके अनुसार यह द्रव्य पहले शरीरके एक ही पार्श्वमे—विशेषकर जिस करवट

लोग सोया करते है—अधिक जमा होता है। रोगका जोर भी प्राय उसी भागमें देख पडता है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह द्रव्य ही रोगका कारण है। यदि वात ऐसी न होती तो रोगका रूप सर्वत्र एक-सा होता या और भागोमे उसका ज्यादा जोर होता। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह द्रव्य शरीरका अश न होकर विजातीय है; क्योकि शरीरका पोपक द्रव्य एक ही स्थलपर एकत्र नही हो सकता। यदि ऐसा होता तो एक ही करवट सोनेपर स्वस्थ शरीरमे भी यही वात देख पडती।

शरीर इस विजातीय द्रव्यको वाहर निकालनेका प्रयत्न वरावर करता रहता है। पसीना, फोडे, मसूरिका आदि उसके इसी प्रयत्नके परिणाम है। रोगके दूर हो जानेपर, विजातीय द्रव्यके वाहर निकल जानेपर शरीरको वड़ा आराम मालूम होता है, वह 'स्वस्थ' हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीरमें विजातीय द्रव्यका रहना ही रोग है और उसके वाहर निकलते ही रोगका आप-ही-आप अंत हो जाता है और शरीर साधारण अवस्थामें आ जाता है।

अव प्रश्न यह है कि यह विजातीय द्रव्य शरीरमें आता कहासे है?

शरीरमें ऐसे दो ही मार्ग है जिनके द्वारा कोई पदार्थ उसमें प्रवेश कर सकता है। इन मार्गोके द्वारपर रक्षाके लिए पहरेदार तो है पर वे ऐसे नही है कि उन्हे कर्तव्य-पथसे विचलित न किया जा सके। ये दोनो द्वार नाक और मुह है—एकसे तो हवा भीतर प्रवेश करती है और दूसरेसे आहार। यदि हम इनकी पसदका खयाल न कर इनकी उपेक्षा करते जाय तो ये भी अपने कर्तव्य-पालनमे ढीले पडते जाते है और अनिष्टकर पदार्थोको भी, जो शरीरका अग नही वन सकते, विना किसी रोक-टोकके अदर प्रवेश करने देते है। सिगरेटवाजोकी मडलीमें वैठा हुआ धूम्रपानसे परहेज करनेवाला व्यक्ति भी सिगरेटका विपाक्त धुआ स्वच्छ वायुकी तरह सासके जरिए अदर पहुचाता रहता है। ग्रहणका विपय परिमित होनेके कारण नाकके तो कम, पर अनेकानेक प्रलोभन प्रस्तुत होते रहनेसे जीभके पतित होनेकी वहुत अधिक सभावना रहती है। रोज ही हमारे

सामने ऐसी-ऐसी मसालेदार और चटपटी चीजे आती रहती है जिन्हे हमारे पूर्वजोने स्वप्नमे भी न देखा होगा। उचित तो यह है कि हम इनसे परहेज करे, पर ऐसा न कर हम उन्हे गलेतक ठूस लेते है और इस प्रकार अस्वास्थ्यकर वस्तुए अधिक मात्रामे अदर पहुचाकर अपने पाचनयत्रको खराब कर लिया करते है।

पाचनयन्त्र कैसे कमजोर या खराब होता है यह एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। जो टट्टू दो मनका बोझ ढोया करता है उससे आप चाबुकके जरिए दो-एक बार या कुछ दिनोतक तीन मनका बोझ ढुलवा सकते है। यदि आप रोज इतना ही बोझ लादते जाय तो कुछ दिनोतक तो वह किसी तरह ढो ले जायगा, पर उसका यह अधिक बोझ ढोना उसके लिए बहुत हानिकर होगा; कुछ दिनोके बाद वह दो मनका पहला बोझ भी न ले जा सकेगा और आगे चलकर तो वह जवाब ही दे देगा। ठीक यही बात पाचन-यत्रके सबधमे भी कही जा सकती है। आधुनिक उत्तेजक पदार्थोके सहारे कुछ दिनो क्यो, बहुत दिनोतक वह काम करता जायगा, पर उसकी शक्ति दिनोदिन क्षीण होती जायगी और एक दिन वह बिलकुल नि शक्त हो जायगा। यह क्रिया—स्वास्थ्यसे अस्वस्थताकी ओर बढनेकी गति—इतनी अलक्षित और धीमी होती है कि मनुष्यको बहुत दिनोतक इसका भान भी नही हो पाता।

रुग्ण आतोके लिए आहारकी क्या उपयुक्त मात्रा होगी, यह कहना आसान नहीं है। अगर किसीके लिए एक सेब लाभदायक हो सकता है तो दो हानिकारक हो जायगे। जितना वह पूरा-पूरा पचा सके वही उपयुक्त मात्रा है, उससे अधिक वह जो कुछ खायगा वह उसके लिए विषके समान होगा और यदि वह मलमार्गोसे शरीरके बाहर न निकल सका तो वही विजातीय द्रव्यके रूपमे शरीरमें एकत्र होगा।

इस द्रव्यसे शरीरके क्षयकी पूर्तिमे तो सहायता मिलती नही, ऊपरसे यह सचलनक्रियामे बाधक होकर पाचनकी क्रिया भी मद कर देता है। यह प्राय मलमार्गोके पास ही एकत्र हुआ करता है और अगर रहन-सहनमे

शीघ्र परिवर्तन न किया जाय तो एक वार एकत्र होना आरंभ होनेपर दिनोदिन वढता ही रहेगा। उपर्युक्त गर्दन और शक्लका परिवर्तन इसी अवस्थामें आरभ होता है। इस स्थितिमें शरीर रुग्ण ही रहता है, पर रोग जीर्ण होते हुए भी कष्टदायक नही होता। रोगकी वृद्धि इतनी मथर गतिसे होती है कि वहुत दिनोतक उसका पता ही नही चलता, पता तव चलता है जव पहले-जैसा न तो शारीरिक श्रम हो पाता है और न मानसिक। मलमार्गोंके जैसे-तैसे काम करते रहनेसे काम चलता जाता है, उनके अशक्त हो जानेपर ही अवस्था कष्टदायक या चिंताका कारण होती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विजातीय द्रव्य आरभमे मलमार्गोंके पास ही एकत्र होता है, पर वादमें वह अन्य भागो, विशेषकर ऊपरके भागोमें फैलने लगता है। गर्दनमें यह स्पष्ट रूपसे देख पडता है। गर्दन घुमाते समय जिवर तनाव मालूम हो समझना चाहिए कि विजातीय द्रव्य उसी मार्गसे आगे वढा है। इस द्रव्यके कारण शरीरका विकास भी रुक जाता है; क्योकि जहा यह एकत्र होता है वहा रक्तका सचलन समुचित रूपसे न होनेके कारण वह भाग पोपक तत्त्वोंसे वचित हो जाता है। रोगकी प्रगति कहासे आरभ हुई है, इसका भी निश्चय करना कठिन होता है; क्योकि वहुतसे लोग विजातीय द्रव्यका भार लिए ही पैदा होते है। शैशवावस्थामे तरह-तरहके रोग होनेका यही कारण हुआ करता है।

यह द्रव्य वहुत दिनोतक उसी रूपमे पडा रहता है, पर मौसिम, भावावेश या अन्य कारणोंसे परिस्थिति अनुकूल होनेपर शीघ्र ही उसका रूपांतर हो जाता है। घुलने और गलनेवाला होनेके कारण वह ऐसे रूपमें परिणत हो जाता है कि उससे खमीर पैदा हो सके। यह खमीर शरीरमें प्राय. वनता रहता है। रोगोत्पत्तिके सवधमें यही सवसे अविक महत्त्वकी वात है। यह क्रिया उदरमें आरभ होती है और सावारणत दस्तके रूपमें विजातीय द्रव्य वाहर निकल जाता है, पर अगर कब्जकी शिकायत रही तो खमीर वनना जारी रहेगा और वह ऊपरकी ओर उठेगा। अगर आप वोतलमें कोई द्रव पदार्थ—किसी फलका रस—रख दें तो उसमें गर्मी

पहुचनेपर पहले नीचेके हिस्सेमे खमीर बनना शुरू होगा, बादमे वह ऊपरकी ओर बढेगा। शरीरका खमीर भी ठीक इसी तरह ऊपरकी ओर बढता है और हमे पहले सिरदर्दके रूपमे इसका अनुभव होता है। इसके अनतर विजातीय द्रव्यके कणोके आपसके और त्वचाके साथ उनके सघर्षसे और खमीर बननेकी क्रियासे भी जो गर्मी पैदा होती है उसका हमे अनुभव होने लगता है। इसी गर्मीको हम लोग ज्वर कहा करते है। इस प्रकार ज्वर तभी होता है जब शरीरमे विजातीय द्रव्य मौजूद हो और वह बाहर न निकल सके अर्थात् मलमार्ग अपना काम ठीक तरहसे न कर रहे हो। इससे स्पष्ट है कि ज्वर और कुछ नही, शरीरके अदर होनेवाली खमीर बननेकी क्रियाका ही नाम है। जिस प्रकार गर्मीके कारण द्रव पदार्थोमे खमीर पैदा होता है उसी प्रकार गर्मीमे ही शरीरस्थ विजातीय द्रव्यका भी खमीर बनता है। यही कारण है जिससे गर्म देशोमे ठडे देशोकी अपेक्षा ज्वर अधिक हुआ करता है।

ज्वरकी हालतमे मनुष्यका शरीर कुछ फैल भी जाता है; क्योकि चमडा बढनेवाला होनेके कारण खमीरकी उसपर क्रिया होने लगती है। जब तनाव इतना बढ जाता है कि त्वचा और आगे बढनेसे इनकार कर देती है तब ज्वर और उसके साथ ही खतरा भी बहुत बढ जाता है। खमीरमें फैलनेकी प्रवृत्ति होती है, पर ऊपरसे रोक लग जानेके कारण वह भीतरकी ओर अपने लिए स्थान ढूढने लगता है जिससे शरीर भीतर-ही-भीतर जलने लगता है और मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। अगर किसी तरह इस खमीरको निकलनेका मार्ग मिल जाय तो ज्वरका जोर कम हो जायगा और खतरा भी टल जायगा। अगर मार्ग न मिला तो जिस अगपर उसका ज्यादा असर होगा उसे वह नष्ट कर डालेगा।

इस सबधमे एक बात और जान लेना आवश्यक है। गर्मी बढनेके पहले कुछ कालतक थोडी ठड मालूम होती है। यह तभी होता है जब विजातीय द्रव्य इतना बढ जाता है कि रक्तका प्रवाह रक्त-नलिकाओके छोरतक नही पहुच पाता और दबाव भीतरकी ओर बढ जाता है। इस

प्रकार यह ठड ज्वरकी पूर्वसूचना होती है जिसकी ओर ध्यान न देना बहुत वडी भूल है। अगर इसी समय समुचित उपचार आरभ हो जाय तो ज्वर वढने ही न पाये।

खमीर वननेकी क्रिया शुरू होनेपर दडाणु (वेसिलस) पैदा होने लगते हैं। लोगोका कहना है कि सक्रामक रोगोके कीटाणु इन्हीके द्वारा शरीरमें प्रवेश करते हैं। यदि विजातीय द्रव्यका खमीर न वने तो इन कीटाणुओंके प्रवेश करनेकी भी कोई सभावना नही रहेगी। इसलिए प्रश्न दडाणुओका अत करनेका नही वल्कि विजातीय द्रव्यको शरीरमे एकत्र न होने देने या यदि एकत्र हो तो उसे वाहर निकालनेका है। इस द्रव्यके वाहर निकल जानेपर ये छोटे दानव, जिन्होने अनगिनत लोगोंके दिमागमें सक्रमणका हौआ पैदा कर रखा है, आप-से-आप नष्ट हो जायगे।

एक उदाहरणसे यह वात विलकुल स्पष्ट हो जायगी। अगर किसी कमरेकी वहुत दिनोंतक सफाई न हो और उसमें गदगी जमा होती रहे तो उस कमरेपर कीडे-मकोड़े कव्जा जमा लेंगे और रहनेवालोकी नाकमें दम कर देंगे। अगर पुराने तरीकेसे किसी विपके द्वारा उन्हे नष्ट करनेका प्रयत्न किया जाय तो इससे स्थितिमे कोई विशेप अंतर नही आयेगा; जितने मरेंगे उससे कई गुने उस गदगीसे फिर पैदा हो जायगे। इसके वजाय अगर कमरेकी गदगी ही दूर कर दी जाय तो स्थितिमें आमूल परिवर्तन हो जायगा। उनकी उत्पत्तिका मूल कारण दूर हो जानेपर उनसे कमरेमें रहनेवालोका पिड छूट जायगा।

गर्मीके दिनोमें दलदल या नम जमीनमे वहुत वडी सख्यामे मच्छर पैदा हो जाते है। यदि उन्हें किसी विपैली दवासे या और किसी तरह एक वार नष्ट भी कर दिया जाय तो वे फिर पैदा हो जायगे। यदि उन्हे एकत्र कर किसी शुष्क पहाडपर पहुचा दिया जाय तो भी वे वहां कभी न टिकेंगे, फौरन पहले स्थानपर लौट आयेंगे। उष्ण देशोमें जीव-जन्तु वहुतायतमे होते है तो उनको खानेवाले जीव भी वहुतसे होते हैं।

इन मासाहारी जीवोका यदि अत करना हो तो पहले उनका शिकार या खाद्य पदार्थ नष्ट करना पडेगा।

इन बातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति किस प्रकार बडे पैमानेपर कार्य करती है। छोटे क्षेत्रोमे भी प्रकृतिका यही नियम काम करता है। क्षेत्र छोटा-बडा होनेके कारण प्रकृतिके नियममे कोई अतर नही आता। इसलिए यदि दडाणुओका अत करना है तो उन्हे विषवाली दवाओसे मारनेकी जरूरत नही है; उनके अस्तित्वका आधार न रहनेपर वे आप ही नष्ट हो जायंगे। साराश यह कि स्वास्थ्यके लिए, रोगोका निवारण करनेके लिए शरीरमें विजातीय द्रव्यको एकत्र न होने देने और एकत्र द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयत्न करना आवश्यक है; क्योकि यह विजातीय द्रव्य ही रोगका मूल कारण है, उसका बाहरी रूप चाहे जैसा भी हो।

च्चोंके रोग और उनका उपचार

शरीरमें विजातीय द्रव्यका मौजूद रहना ही रोग है। मनुष्य या तो इसे साथ लेकर पैदा होता है या हानिकर पदार्थ खा-पीकर शरीरमें पहुचाया करता है। पहले तो शरीर आतो, फुप्फुसो, मूत्राशय और त्वचाकी राह भरसक इसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है, पर जब वह इसमें समर्थ नही हो पाता तब यह शरीरमें कही-न-कही जमा हो जाता है और सबसे तग भाग गर्दन और चेहरेपर स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है।

अगर बोतलमें कोई रस रखकर उसमे खमीर पैदा होने दिया जाय और उसका मुह खुला रहे तो खमीर फैलकर बाहर निकलने लगेगा, पर अगर उसका मुह किसी फैलनेवाली पोली चीजसे बदकर गैसका बाहर निकलना रोक दिया जाय तो पहले तो वह ढक्कन कसता जायगा और बाद-में गैसके दबावसे वह फैलने लगेगा। अगर शीशेके बजाय हम किसी ऐसे पदार्थकी बोतल लें जो पारदर्शक होनेके साथ ही फैल भी सके तो हम स्पष्टत देखेंगे कि जिस ओर खमीर उठ रहा है उस ओरका बोतलका पार्श्व भी खमीरके फैलावके मुताबिक बढता जा रहा है। शरीरकी हालत भी बहुत कुछ ऐसी ही हुआ करती है, अतर केवल यह होता है कि शरीरका भीतरी भाग उतना पोला नही होता जिससे खमीरको अबाध गतिसे फैलनेकी स्वतत्रता नही रहती, जो अग बाधक होते हैं उनमेंसे होकर या उनसे बचकर ही उसको आगे बढना पडता है। बोतलमे खमीर पैदा होनेका स्थान पेंदा होता है, शरीरमें वह स्थान उदर है।

विजातीय द्रव्यमें खमीर पैदा होनेपर वह सारे शरीरमे फैलने लगता है और गर्मी पैदाकर शरीरको उत्तेजित कर देता है। इसी अवस्थाको हम लोग ज्वर कहते हैं। अगर खमीरकी क्रिया सिर्फ अदर हो तो गर्मी भी अदर ही रह जाती है और बाहर ठडा रहता है। यह हालत ज्वरवाली हालतसे

ज्यादा खतरनाक होती है। ठडवाली अवस्थाका ज्वरकी अवस्थामे परिणत होना एक महत्त्वपूर्ण बात है। भीतरका ज्वर बाहर आनेसे खमीर भी बाहरकी ओर आ जाता है और तब पसीने आदिके रूपमे उसे बाहर निकालना आसान हो जाता है। अगर उसे बाहरकी ओर लानेमें सफलता न मिली, ज्वर भीतर ही रह गया तो वह भयकर रोगका रूप धारण कर लेता है जिससे मृत्यु भी हो जा सकती है, क्योकि इस स्थितिमे भीतरके अग ज्वरसे जल जाते है और अगर खमीरकी क्रिया रुक जाय तो विजातीय द्रव्य उन अगोको ढक लेता है। इस प्रकार शरीरमें विजातीय द्रव्यका रहना नगरमे बारूदका ढेर रखनेके समान होता है। सतर्क रहनेपर भी कहीसे चिनगारी पहुचकर बारूदमे भयकर विस्फोट उत्पन्न कर दे सकती है। यह सत्य है कि विजातीय द्रव्यका विस्फोट सर्वदा घातक ही नही हुआ करता, पर अगर कही खमीर बाहर नही निकल सका तो उसके घातक होनेमे कोई सदेह भी नही रहता।

जैसा कि आरभमें ही कहा जा चुका है, बहुतसे बच्चे यह विजातीय द्रव्य साथ लेकर ही पैदा होते है। शैशवावस्थामें जो बहुतसे तीव्र रोग हुआ करते है उसका मूल कारण यही है। हममेसे प्राय. प्रत्येकको इन रोगोका सामना करना पडता है। इनका बाह्य रूप तो विभिन्न प्रकारका होता है और अलग-अलग नाम भी है, पर सबका मूल कारण एक ही—वही ज्वरवाली अवस्था—है। प्राकृतिक चिकित्साकी दृष्टिसे इन नामोका कोई महत्त्व नही है, पर पाठकोकी सुविधाके विचारसे इन रोगोपर विचार करते समय हम इन प्रचलित नामोका ही उपयोग करेगे।

विभिन्न रूपोमे प्रकट होनेवाले बच्चोंके इन रोगोमें खतरा एक-जैसा नही होता इसलिए उपचारका रूप निर्धारित करना भी कठिन हुआ करता है। हा, एक बात अवश्य होती है। वह यह कि रूपमें अतर होते हुए भी इनमें दो बातें सामान्य रूपसे पाई जाती हैं—गर्मी और ठड।

रोमांतिका

रोमातिका (मीज़िज़मे) पीड़ित किसी बच्चेकी अवस्थापर विचार कीजिये। पहले तो उसको वेचैनी होती है, नीद नही आती और उसकी त्वचा गर्म और शुष्क रहती है। साधारण तौरपर इसे ज्वरकी अवस्था कहते है, पर इस स्थितिमें यह कोई नही वतला सकता कि यह कौन-सा रोग है। इस तरहकी हालतमें और बच्चोको रोमांतिका होते देख इसके भी उसी रोगसे आक्रात होनेका अनुमानभर कर लिया जाता है। फिर भी इसका उपचार तो आरभ कर ही दिया जा सकता है और उसका आधार वही ज्वरवाला सिद्धात होगा।

ज्वर कम करनेका एकमात्र उपाय रोमकूपोका मुह खोलना है जिसमें पसीना आसानीसे निकल सके। इसके साथ ही ठड पहुंचानेवाले उपायसे अदरकी गर्मी निकालनेका भी प्रयत्न होना चाहिए। पसीना निकलने-पर ज्वर कम हो जाय तो समझना चाहिए कि रोमांतिका निकलनेकी संभावना वहुत कम हो गई। विजातीय द्रव्य पसीने, प्रश्वास और मलमूत्रके रूपमें वाहर निकल जायगा। अगर यह उपचार जल्द न हो तो रोमांतिका चकत्तोंके रूपमें निकल आएगी। चकत्तोकी संख्या जितनी अधिक होगी खतरा भी उतना ही कम होगा, क्योकि उनके जरिए सारा विजातीय द्रव्य वाहर निकल जायगा। उनके कम निकलनेपर खतरा ज्यादा रहेगा; क्योकि ज्वर अदरके अगोमें रहकर उन्हें जला डालेगा। बच्चेकी मृत्यु तव इस कारण नही होगी कि रोमांतिका निकली थी वल्कि इस कारण होगी कि वह खूव अच्छी तरह नहीं निकल पाई थी।

रोमातिका रोगसे पूर्णरूपसे छुटकारा पानेके लिए विजातीय द्रव्यके निकासके मार्गोंको खोलना होगा और अदरकी गर्मी भी शात करनी होगी। ठंड तो कटि और मेहन-स्नानके द्वारा पहुचाई जाय और पसीना निकालनेका सवसे अच्छा उपाय यह होगा कि रातको माता वच्चेको अपने साथ सुलाकर अपने शरीरसे उसे गर्मी पहुचाए। दूसरा उपाय यह है कि बच्चेको गद्देदार विस्तरपर सुलाकर उसे कंवलसे ढक दिया जाय। स्वच्छ हवाके प्रवेशके

लिए कमरेकी खिडकियां बरावर खुली रहे। अगर इन उपायोसे काम चलता नजर न आए तो बच्चेको वाष्पस्नान कराया जाय। प्रत्येक वाष्प-स्नानके बाद कटिस्नानद्वारा ठड पहुचाई जाय। इस प्रकार बच्चेकी हालत सुधरती जायगी। यदि ज्वर फिर हो जाय तो कटि या मेहन-स्नानके वाद विस्तरेपर लिटाकर पसीना निकालनेका प्रयत्न किया जाय। ज्वरके लौटते रहनेतक यही क्रिया दुहराते रहना चाहिए। सिर, आख या और किसी अगपर भार मालूम हो तो उस विशेष अगका वाप्प-स्नान कराया जाय। इस स्नानके वाद भी कटि या मेहन-स्नान आवश्यक होगा।

आरक्त ज्वर

इस रोगके आरभमें भी वही रोमातिकावाले लक्षण देख पडते है। पहले लाल-लाल छोटे चकत्ते निकलते है, पर बादमे वे आपसमे मिलकर बडे हो जाते है। सिर, सीने और नाभिके पास ये ज्यादा निकलते है। इसमे शरीरका ऊपरका हिस्सा तो बहुत गर्म रहता है, पर पैर ठडे रहते है। कानो और आखोमे दर्द रहता है। यह सब इस बातका सूचक है कि विजातीय द्रव्यका खमीर नीचे न उतरकर ऊपर ही बढा है और ऊपरके ही भागमे एकत्र विजातीय द्रव्यपर उसका ज्यादा असर हुआ है। जितने ही कम भागमे यह प्रकट होता है खतरा उतना ही ज्यादा होता है।

आखो और कानोको बचानेके लिए सिरका वाप्प-स्नान कराकर पसीना निकालनेका प्रयत्न करना चाहिए। अगर खमीर अन्य मलमार्गोंसे बाहर न निकल सका तो दर्द फिर-फिर होता रहेगा। इसके लिए कटिस्नान आवश्यक होगा जिसमे पाचन-क्रिया ठीक हो जाय जो ज्वरकी हालतमे और उसके भी पहलेसे बहुत खराब हो गई होती है। कटि-स्नानसे आते ढीली पड जाएगी जिससे कोष्ठबद्धता दूर हो जायगी। रोगके पूर्णत दूर होनेमे काफी समय लगता है इसलिए धैर्यपूर्वक उपचार करते जाना चाहिए।

रोहिणी

वच्चोका यह रोग माता-पिताके लिए विशेष चिता और भयका कारण होता है। इसके लक्षण उपर्युक्त रोगोसे सर्वथा भिन्न होते है। ज्वर ही एक ऐसा लक्षण है जो सबमें सामान्य रूपमें होता है। कभी-कभी ज्वर वाहर वहुत कम रहता है। वच्चे विस्तरपर सुस्त पडे रहते है और सास लेनेमें तकलीफ होनेकी शिकायत करते है। रोगकी यह अवस्था कुछ खतरनाक होती है। अदर तेज ज्वर रहता है, त्वचा निष्क्रिय रहती है और मूत्राशय तथा आतें शिथिल पड जाती है। खमीर भीतर जगह न मिलनेपर वाहरकी ओर वढता है, पर मलमार्गोके निष्क्रिय हो जानेसे गलेके अतिरिक्त उसके वाहर निकलनेका और कोई मार्ग नही रह जाता। इस हालतमें गला रुध जाता है जिसके परिणामस्वरूप रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

अगर गलेमें विजातीय द्रव्य पहुच गया हो तो पहले स्थानीय उपचारद्वारा गलेको मुक्त करनेका—चाहे वह थोडी ही देरके लिए क्यो न हो—प्रयत्न करना चाहिए। वाष्पस्नानद्वारा यह कार्य वडी सफलता और शीघ्रतासे होता है। इससे दर्द कम हो जाता है और मेहन-स्नान आदिके द्वारा विजातीय द्रव्यसे उसके मुख्य स्थान उदरको मुक्त करनेका समय मिल जाता है।

इस रोगमें पहले सधियो—घुटनो, कधो आदि—मे दर्द होता है और फिर विजातीय द्रव्यके दवावके कारण गलेमें सूजन हो जाती है सधियोका दर्द तो किसी तरह वर्दाश्त भी किया जा सकता है, पर गलेकी सूजन असह्य हो जाती है। इसलिए जवतक आतें अपना काम ठीक-ठीक न करने लगें तवतक इसके उपचारमे वडी तत्परता और सावधानता अपेक्षित होती है। साथ ही ज्वरको वाहर लानेका भी प्रयत्न होना चाहिए जिसमे त्वचाको सक्रिय वनाकर विजातीय द्रव्य पसीनेके रूपमे वाहर निकाला जा सके। यह कार्य माता साथ सुलाकर आसानीसे कर सकती

है। इस उपायसे पसीना न निकलनेपर ही वाष्प आदिका कृत्रिम उपाय काममे लाना चाहिए।

मसूरिका

इस रोगके कई रूप देखनेमें आते है और यह सबसे ज्यादा खतरनाक भी माना जाता है, क्योकि इसमे ज्वर बहुत तेज होता है और ठीक उपचार न होनेपर बहुत जल्द मृत्यु हो जाती है। आरभमे इसका भी ठीक-ठीक पता नही चलता, ज्वर-ही-ज्वर रहता है, पर बादमें दाने निकल आते है जो प्राय मटरके बराबर होते है और पीछे और बढ जाते है। उनका आधा भाग तो शरीरके अदर और आधा बाहर निकला होता है। दानोके बीचमे काला दाग पड़ जाता है। कभी-कभी ये दाने सारे शरीरमें न निकलकर किसी विशेष भागमे अधिक देख पडते है—जहा विजातीय द्रव्य अधिक जमा रहता है वही ज्यादा निकलते है। चेहरेपर ये अधिक निकलते है, क्योकि शरीरका छोर होनेसे खमीर वहां पहुचकर रुकता जाता है। चेहरे परका विस्फोट और बुरा होता है, क्योकि गड्ढो और दागोके रह जानेसे शक्ल ही खराब हो जाती है। अगर आखोमें विस्फोट हो तो मनुष्यको उनसे भी हाथ धो लेना पडता है।

दानोके अच्छी तरह निकल जानेपर खतरा प्राय. टल जाता है। केवल ऐसे ही लोग मरते है जिनका शरीर खमीर पूरा-पूरा निकाल बाहर करनेमे समर्थ नही हो पाता। कभी-कभी तो मृत्युके बाद भी विस्फोट होता और दाने निकल आते है। अगर मृत्यु होती है तो वह मसूरिका होनेके कारण नही बल्कि दानोके पूरा-पूरा न निकलनेके कारण, तेज ज्वरकी हालतमे होती है।

दाने निकलनेके पहले बहुत तेज ज्वर होता है और गर्मीके कारण दानोमे बडी जलन और खुजली होती है जिससे रोगी बेचैन होकर शरीर नोचने लगता है। फल यह होता है कि दाने पकनेके पहले ही खुरच जाते है और बदशक्ल बनानेवाले चिह्न रह जाते है। कही-कही इससे बचनेके लिए

रोगीके हाथ बाध दिए जाते है जिससे उसके कष्टोकी सीमा नही रह जाती । पसीना निकलनेके लिए रोमकूपोका मुह खोल देने और उदरमे ठड पहुचाने-पर खुजली वहुत कुछ कम पड जाती है।

इस रोगमें वडी सावधानी वरतनेकी जरूरत पडती है। ज्वर शुरू होनेके साथ ही उपचार शुरू कर देना चाहिए। रोग वादमें कौन-सा रूप ग्रहण करेगा यह देखनेके लिए रुकना वडी भूल है। सब रोगोका मूल रूप एक ही—विजातीय द्रव्यका एकत्र होना—होता है, इसलिए चिकित्सा-की पद्धतिमें भी कोई विशेष अतर नही होता। जिस प्रकार वोतलमें छेद कर दिए जानेपर खमीर वाहर निकल जाता है उसी प्रकार रोमकूपोका मुह खुल जानेपर विजातीय द्रव्यका खमीर वाहर निकल जायगा। यदि इसके साथ ही मेहन और कटि-स्नानद्वारा आतें ढीली करनेका उपाय कर दिया जाय तो सारे उत्पातोकी जड ही कट जायगी।

कुकुरखांसी

यह रोग रोहिणी या मसूरिका-जैसा खतरनाक नही होता, फिर भी इससे वहुत-से वच्चोकी मृत्यु हो जाया करती है। खासी परेशानी और तकलीफका ही कारण नही हुआ करती, वह किसी वडे रोगकी सूचक भी हुआ करती है। यह तभी उठती है जब नीचेके मलमार्गोंके ठीक तरहसे काम न करनेपर विजातीय द्रव्यका दवाव ऊपरकी ओर होता है। इस रोगसे ग्रस्त वच्चेमें भी खमीरका परिचायक चिह्न—अल्प ज्वर—मौजूद रहता है। विजातीय द्रव्य गले और सिरकी ओरसे निकलनेका मार्ग ढूढता है। अगर खासीका दौरा होनेपर रोगीको पसीना आता हो तो कोई विशेष उपचार आवश्यक नही होता; पसीना न आनेपर वच्चेकी शक्ल स्याह पड जाती है और समुचित उपचार न होनेपर वह मृत्युका शिकार हो जा सकता है। रोगके वहुत वढ जानेपर तो नाक, आख और कानसे खून भी निकलने लगता है, क्योकि विजातीय द्रव्य इन्ही मार्गोसे वाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। इस हालतमें उपचारद्वारा सहायता पहुचाना भी कठिन ही होता है।

इस रोगका उपचार भी वही है। इसमे पसीना निकालने और ऊपर-की ओर बढते हुए विजातीय द्रव्यको नीचे लाकर मलमार्गोंसे बाहर निकालनेका प्रयत्न होना चाहिए। उपर्युक्त स्नानोसे इसमें पूरी सफलता प्राप्त की जा सकती है। पसीना निकलने लगनेपर खासी कम पड़ जायगी और पाचनक्रियाके सुधर जानेपर तो वह बिलकुल दूर हो जायगी।

गंडमाला

इस रोगमे गर्मी पैदा नही होती इसलिए इसकी गणना ज्वरवाले रोगोमें नही की जाती, पर होनी चाहिए उसी श्रेणीमें। ज्वर न होनेका कारण यह होता है कि शरीर ज्वर पैदा करनेकी स्थितिमे होता ही नही। समशीतोष्ण और ठडे मुल्कोमे यह रोग विशेष रूपसे होता है। इसमे सिर वर्गाकार हो जाता है, आखे उठ आती है, शरीरमें सूजन होती है, पैर पतले और हाथ-पैर टेढे हो जाते है और मस्तिष्क शिथिल पड जाता है। ये सभी चिह्न एक ही रोगीमें नही पाए जाते। हाथ-पैर तो ठडे रहते ही है, शरीरमे भी ठड मालूम होती है। यह अवस्था रोगकी भीषणताकी सूचक होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीरके अगोके छोर विजातीय द्रव्यसे लद गए है, उनकी शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो गई है और अदर अंगोको जलानेवाली गर्मी मौजूद है।

रक्तनलिकाओमें विजातीय द्रव्यके भर जानेसे उनकी हालत कीचसे भरी नाली-जैसी हो जाती है और सतहतक रक्तका सचार न होनेके कारण ठड बनी रहती है। तीव्र न होनेके कारण इस रोगसे विशेष कष्ट नही होता। निदान और उपचार ठीक-ठीक न हो सकनेके कारण लोग जलवायु-परिवर्तनकी राय देते है, पर इससे कोई विशेष लाभ नही होता। इस प्रकारका रोगी प्राय. माता-पितासे प्राप्त विजातीय द्रव्यसे ही लदा हुआ पैदा होता है। द्रव्यके लदावके कारण सिर गोलापन छोडकर वर्गाकार बनता जाता है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार बोतलका फैलनेवाला ढक्कन खमीरके दबावसे पहले कसता और फिर फैलने लगता है। आकृति

देखकर इस रोगकी पहचान आसानीसे की जा सकती है। हाथ-पैरके सुडौल न रहनेका कारण भी विजातीय द्रव्य ही है जिसे त्वचा निष्क्रिय हो जानेके कारण बाहर नही निकाल सकी।

भीतर ज्वर बराबर बना रहता है जिससे बेचैनी रहती है। यह अन्तर्लीन या जीर्ण-ज्वर जैसा होता है। इसके जल्द दूर न होनेपर आगे चलकर क्षय आदि भीषण रोग प्रकट हो जाते हैं।

रोगका जीर्ण रूप हटाकर उसे तीव्र बनानेके लिए पहले ठडको गर्मीमे परिणत करना आवश्यक है। ज्वरके बाहर आनेपर और रोगोमें जो उपचार होता है वही इसमें भी करना चाहिए। यह रोग समयसाध्य होता है इसलिए अधीर न होकर उपचार करते जाना चाहिए।

ऊपर रोगोके जो लक्षण और उन्हे दूर करनेकी जो विधि बतलाई गई है उनसे स्पष्ट है कि इन सभी रोगोके बाह्यरूपमें चाहे जो भी अतर हो, पर सबका मूल विजातीय द्रव्य और उसमें पैदा होनेवाला खमीर है जो ज्वरके रूपमें प्रकट होता है। ज्वरकी तुलना तूफानसे मजेमें की जा सकती है। जिस प्रकार तूफान उठनेके पहले हवा भारी होकर बद हो जाती है और अनुमान होने लगता है कि तूफान उठनेहीवाला है उसी प्रकार ज्वरके पहले भी शरीर ठडा हो जाता है और बेचैनी मालूम होती है; जैसे तूफानके निकल जानेपर वातावरण साफ और आनददायक हो जाता है उसी प्रकार ज्वरके भी दूर हो जानेपर शरीर स्वच्छ—स्वस्थ—हो जाता है। विजातीय द्रव्यमें खमीरका पैदा होना ही तूफान है। इस प्रकार तूफान हवाको और ज्वर शरीरको स्वच्छ करनेकी एक प्रक्रिया है।

रोग—विजातीय द्रव्यका संक्रमण

रोमांतिका, मसूरिका, कुकुरखासी, रोहिणी, गडमाला आदि रोगके जो रूप बाल्यावस्थामे प्राय प्रकट होते है उन सबमे दोमेंसे एक बात अवश्य देखी जाती है—या तो तापकी मात्रा बढ गई होती है या ठडकी। ये दोनो ही अवस्थाए ज्वरकी है और इन सबका मूल कारण शरीरमे एकत्र विजातीय द्रव्य ही है, इसलिए इनके उपचारकी विधि भी मुख्यत एक ही है। रोगके इन रूपोद्वारा शरीर स्वस्थ होनेका प्रयत्न करता है, इसलिए प्रचलित औषधोपचार-पद्धतिके सिद्धातानुसार इन्हे दबाने या प्रक्षिप्त करनेका प्रयत्न न कर शरीरके स्वास्थ्य-लाभके इस प्रयत्नमे यथासभव उसे सहायता देनी चाहिए। इसी प्रकार शरीर वस्तुत. नीरोग भी हो सकता है; दबाने या प्रक्षिप्त करनेपर रोग भीतर-ही-भीतर गभीर रूप धारणकर अतत· असाध्य अवस्थामे पहुच जायगा, क्योकि शरीरमे एकत्र विजातीय द्रव्य कभी निष्क्रिय नही रहता, उसकी स्थिति और रूपमे निरतर परिवर्तन होता रहता है।

रोगकी हालतमे खान-पानपर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। रोगीको ऐसी कोई चीज नही देनी चाहिए जिससे शरीरमे नया विजातीय द्रव्य पहुचकर खमीरकी मात्रा और बढा दे। शरीर इस समय विशेष रूपसे क्रियाशील रहता है, इसलिए पाचन-शक्तिपर ऊपरसे कोई नया भार नही पड़ना चाहिए। पोषणकी दृष्टिसे स्वल्प मात्रामे कुछ दिया जा सकता है, पर रोगीके न मागनेपर तो कुछ देना ही नही चाहिए।

शरीरमे विजातीय द्रव्यके पहलेसे ही एकत्र रहे विना किसी तीव्र रोग (ज्वर) की कल्पना भी नही की जा सकती। वस्तुत. यही स्थिति खतरनाक हुआ करती है। माता-पिताके शरीरमे विजातीय द्रव्य रहनेपर वह सतानके शरीरमें भी पहुच जाता है। जव आंखका रग, शरीरकी आकृति, यहांतक

कि मानसिक गुण-दोष भी बच्चोमे आ जाते है तब यह तो आसानीसे माना ही जा सकता है कि माता-पिताके, विशेषकर माताके शरीरका विजातीय द्रव्य भी बच्चेमें आ जायगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि माता-पितामें रोगका जो रूप रहता है वह सतानमें भी प्रकट होते देख पडता है।

अबतक संक्रमण केवल तीव्र रोगोके संबंधमें माना जाता रहा है, पर माता-पिताके शरीरके विजातीय द्रव्यका सतानमें पहुचना रोगसक्रमणके अतिरिक्त और कुछ नही, क्योकि यह सक्रमण ही बच्चेके तीव्र रोगोसे ग्रस्त होनेका कारण हुआ करता है। इसलिए बच्चेके रोगोकी व्याख्या माता-पितासे प्राप्त इस विजातीय द्रव्यके ही आधारपर की जा सकती है।

पूछा जा सकता है कि तीव्र रोगका संक्रमण होता है या नही। इसका उत्तर 'हा' भी हो सकता है और 'नहीं' भी। जिन लोगोका शरीर पूर्णत. स्वस्थ है—विजातीय द्रव्यसे रहित है वे ससर्गके कारण रोगकी चपेटमें नही आ सकते, चाहे जितने भी जीवाणु या दडाणु मुह या नाकके जरिए अपने शरीरके अदर पहुचा ले; पर यदि विजातीय द्रव्य मौजूद हो और तापकी मात्रा अनुकूल हो तो ये अदर पहुचकर उस द्रव्यमें खमीर पैदा कर देंगे। अगर विजातीय द्रव्य अत्यल्प मात्रामे हो तो छूत लगनेकी सभावना भी कम ही रहेगी। तीव्र रोगके द्वारा शरीर विजातीय द्रव्यको बाहर निकालता है और आरोग्य-लाभके समय खमीर सास, स्वेद और मल-मूत्रके साथ विशेष रूपसे बाहर निकलता रहता है। अगर यह खमीर विजातीय द्रव्यवाले शरीरमे किसी तरह पहुचकर रुका रह जाय तो उसमें भी वह खमीर पैदा कर देगा—ठीक वैसे ही जैसे गर्म दूधमे किसी चीजका खमीर डाल देनेपर उसमे भी खमीर पैदा हो जाता है या पैसाभर दही सेरो दूधको दहीमें परिवर्तित कर देता है। विजातीय द्रव्यके रूपमे रोगके लिए उपयुक्त क्षेत्र पहलेसे ही प्रस्तुत रहनेके कारण छूत लगनेपर वही रोग हो जाता है। जैसा कि होमियोपैथीका सिद्धात है, घोलके रूपमें

पदार्थोंकी क्रियात्मक शक्ति बहुत बढ जाया करती है, इसलिए प्राकृतिक घोलके रूपमे पहुचे इस खमीरका विजातीय द्रव्यपर बहुत तेज असर होता है। एलोपैथीके सिद्धातानुसार प्रविष्ट किया जानेवाला गोमसूरिकाका विप अन्य दवाओकी ही तरह शरीरको निश्चेष्ट बना देता है और प्राय खमीरकी क्रिया भी रोक देता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि शरीर तीव्र रोगके द्वारा विजातीय द्रव्यको बाहर नही निकाल पाता और वह भीतर ही सचित रह जाता है। बादमे यही अतर्निहित द्रव्य किसी भीषण रोगका कारण होता है। इसी पद्धतिकी बदौलत आज तरह-तरहके असाध्य जीर्ण रोग बढते जा रहे है। इस दृष्टिसे कुनैन, ऐंटीफेब्रिन आदि दवाए, जो आम तौरपर ज्वरको दबानेके लिए काममें लाई जाती है, स्वास्थ्यके लिए लाभदायक न होकर अत्यत हानिकारक सिद्ध हो रही है।

पुरानी दवाओके असर न करनेकी हालतमें उनसे भी तेज दवाओकी खोज होती जा रही है। बात यह है कि किसी विशेष औषधके प्रयोगसे जो अग कुछ निष्क्रिय हो गए होते है उनपर औषधका फिर कोई असर नही होता, इसलिए उन अगोको और निष्क्रिय या अशक्त करनेके लिए पहलीसे ज्यादा तेज दवाकी जरूरत पडती है। अततोगत्वा स्थिति यह हो जाती है कि ये तेज दवाए भी विजातीय द्रव्यका खमीर बनाना रोकनेमे समर्थ नही हो पाती और परिणाम मृत्युके रूपमें सामने आता है। एक उदाहरणसे यह स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो जायगी।

तबाकू पीना शुरू करनेवालेको पहले अपने आमाशयसे सघर्ष करना पडता है—आमाशय तबाकूके निकोटीन नामक विषका प्रतिरोध करता है। धीरे-धीरे कुछ आदी हो जानेपर यह प्रतिरोध-शक्ति कम पड जाती है और फिर तो बिलकुल खत्म ही हो जाती है। इस हालतमे पूर्व प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेके लिए और तेज या अधिक मात्रामे विषकी जरूरत पड़ती है। शुरू करनेवाले प्राय. कहा करते है—'हमारा आमाशय बहुत कमजोर है, धूमपान बर्दाश्त नही कर रहा है, इसकी आदत डालनी पडेगी', पर दर-असल बात बिलकुल उलटी होती है। अगर आमाशय धूमपानका-

प्रतिरोध करता है तो समझना चाहिये कि वह सशक्त है, उसमें इतनी शक्ति मौजूद है कि वह बलपूर्वक विषको बाहर निकाल सके। अगर प्रतिरोध बंद हो जाय तो समझिए कि उसकी पहली प्राकृतिक क्रियाशीलता समाप्त हो गयी, वह अशक्त और निष्क्रिय हो गया।

इस अंतर्निहित विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेके लिए शरीरको किसी विशेष प्रबल और उत्तेजक साधनकी अपेक्षा होती है, क्योंकि कुनैन आदि दवाओंके कारण उसकी शक्ति कुंठित हो गयी होती हैं। अगर ठंडे स्थानमें बोतलमे कोई रस रखा रहे तो उसमें खमीर नही उठेगा, पर धूपमें रखनेपर या गर्मी लगनेपर बोतलका मुह बद होते हुए भी, खमीर पैदा होने लगेगा। इस खमीरका कारण दडाणु (वेसिली) या और कोई जीवाणु नही होता, दडाणु तो खमीर बननेके बाद ही उत्पन्न होते है—मुख्य कारण ताप ही होता है। यही ताप शरीरस्थ विजातीय द्रव्यको भी खमीरके रूपमें परिणत कर देता है, और यही कारण है जिससे गर्मीका मौसिम आनेपर मरी फैला करती है।

जिन भूभागोमें दलदल होता है और गर्मी ज्यादा पड़ती है वहाका वायुमडल दलदलसे उठे खमीरसे भरा रहता है। जिन लोगोंके शरीरमें विजातीय द्रव्य अधिक मात्रामे होता है उनको वहा कुछ ही दिन रहनेपर ज्वर हो जाता है, क्योंकि वायुमडलका खमीर उनके शरीरमें प्रवेशकर विजातीय द्रव्यको खमीरके रूपमें परिणत कर देता है। जमे हुए पानीका भी बहुत कुछ ऐसा ही असर होता है। जाडेके दिनोमें पंकवाले जलाशयोका पानी साफ दिखता है, पर गर्मीमें नीचेसे खमीर उठकर सारे जलाशयको गंदला कर देता हैं जो इस बातका सूचक होता है कि जलके नीचे क्या है। पहाडी जलाशयोमे नीचे पक न होने, पत्थर होनेके कारण खमीर पैदा होनेकी सभावना नही रहती।

प्रश्न यह होता हैं कि ससर्गकी स्थिति न रहनेपर भी महामारी क्यो फैलती है; एक ही रोगके आज यहां, कल वहां होनेका क्या कारण है? शरीरमें विजातीय द्रव्यके मौजूद रहे बिना महामारीका खयाल भी नही

किया जा सकता। प्राय प्रतिवर्ष, छोटे या बडे क्षेत्रमें महामारी फैलनेसे यही सिद्ध होता है कि जनसमूहके रहनेका ढग, खान-पान, विजातीय द्रव्यकी विद्यमानता बहुत कुछ समान है। शरीरपर मौसिमका प्रभाव होनेपर वह विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगता है। अगर विजातीय द्रव्य और खमीरकी स्थिति बहुतोमें एक-सी है तो रोगका रूप भी बहुत कुछ समान ही होगा, उनके रूपमें अतर होनेपर रोगके रूपमे भी अंतर हो जायगा जैसा कि प्राय. देखा भी जाता है। इस प्रकार मौसिम ही महामारीका मुख्य कारण हुआ करता है, यों रोगीके साथ ससर्ग तो रोगके फैलनेमें सहायक होता ही है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तीव्र रोगोका संक्रमण खमीरके सक्रमणसे, विशेषकर हवाके जरिए होता है, इसलिए रोगीके कमरेमे स्वच्छ हवाका प्रवेश परमावश्यक है। कीटाणुनाशक द्रव्योसे इस उद्देश्यकी पूर्ति नही होती, वे उलटे हवा और गंदी कर देते है और साथ ही अपनी तेज गधके द्वारा घ्राणशक्ति भी कुठित कर देते है जिससे रोगके कारण गदी हुई हवाका ठीक-ठीक पता नही चलता। वे खमीर नष्ट करनेमें भी समर्थ नही होते, क्योकि खमीरकी स्वल्पमात्रा भी कहीसे प्रवेशकर विजातीय द्रव्यको खमीर बनानेके लिए काफी होती है। समुचित उपाय वही है जिससे विजातीय द्रव्य शरीरसे बाहर निकल जाय और रोगग्रहणके अनुकूल स्थिति ही न रहे। रोगियोका उपचार करते समय मेरे शरीरमें प्राय. खमीर प्रविष्ट हो जाता था जिसके मेहन या कटिस्नान करते समय बाहर निकलनेपर वैसी ही दुर्गंध मालूम होती थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इन स्नानोसे शरीरमें घुसा हुआ विष आसानीसे निकल जाया करता है।

जो अपने शरीरको—बाहर ही नही, अदर भी स्वच्छ—रखना जानता है उसके पास कभी कोई सक्रामक रोग नही फटक सकता। कुछ लोगोकी धारणा है कि रोगके विभिन्न रूपोमें कारण भी भिन्न-भिन्न हो सकते है, पर वस्तुतः बात ऐसी नही है। रूप भिन्न होते हुए भी कारण एक—

विजातीय द्रव्य—ही हुआ करता है। शरीरमें वह किस मात्राम मौजूद है, इसका निश्चय आकृतिकी परीक्षाद्वारा किया जा सकता है।

रोग-सक्रमणके उपर्युक्त सिद्धातको दृष्टिमें रखकर विचार करनेपर सक्रामक रोगोकी रोक-थामके लिए औपधोपचारक जो उपाय काममें लाया करते है वह उनके अज्ञानका ही परिचायक होता है। सारे मकानका सवध-विच्छेद कर दिया जाता है और कारवोलिक एसिड आदि कीटाणुनाशक द्रव्य डालकर व्यर्थ ही दुर्गंध फैलाई जाती है। मैंने वहुतेरे रोगग्रस्त वच्चोको अपने भाई-वहनोके साथ सोते देखा है, पर विजातीय द्रव्यसे रहित होनेके कारण उनपर छूतका कोई असर होते नही देखा। इसके विपरीत, वचावके सारे सभव उपाय होते हुए भी घरके सारे वच्चोको एक ही रोगसे ग्रस्त होते देखा। रोगग्रस्त होनेके पहले ही उनकी आकृतिसे विजातीय द्रव्यका उनके शरीरमें मौजूद होना स्पष्ट हो गया था और अभिभावकोको इसकी सूचना भी दे दी गई थी। जगलमें सडे-गले, कीडोसे भरे ठूठके पास ही दूसरे वृक्ष लहलहाते रहते है। अगर इन वृक्षोमें भी विकृत द्रव्य होता तो उनमें भी कीटाणु उत्पन्न हो गए होते और उनकी भी उस ठूठ-जैसी ही गति हो गई होती, पर वे निरतर हरे-भरे रहकर ऊपरकी ओर भागते जाते है, कीड़े उन्हें कोई नुकसान नही पहुचा पाते क्योकि उनका आहार मौजूद नही होता।

यदि जनता रोगसक्रमणके इस रहस्यको भलीभाति समझ जाय तो औपधोपचार-पद्धतिने इस सवधमें जो भ्रम फैला रखा है वह शीघ्र ही दूर हो जाय। फिर तो वह महामारीका प्रकोप होनेपर किंकर्तव्य-विमूढ न हो जाकर उसके मूल कारणको ही दूर करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा देगी।

वात, संधिवात, गृध्रसी आदिका कारण और उपचार

पूर्व कालमे प्रौढ या अधिक अवस्थाके ही लोग, विशेषत पुरुष इन रोगोसे आक्रात होते देखे जाते थे, पर अब तो स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी इनके शिकार होने लगे है। इनकी रोक-थामके लिए जितना अधिक प्रयत्न किया गया है उतने ही ये बढते गए है। यो तो शरीरके किसी भी भागपर इस प्रकारके रोगका आक्रमण हो सकता है, पर अधिक सभावना सधियोपर ही होनेकी रहती है।

इस प्रकारके रोगके मूल कारणका पता लगानेका बहुत कम प्रयत्न किया जाता है। आमतौरसे लोग कह दिया करते है—'ठढ लग गई है'। आश्चर्यकी बात तो यह है कि आविष्कारके इस युगमे लोगोने मौसिममें इस प्रकारका कोई परिवर्तन करनेका उपाय नही निकाला जिससे बाल या वृद्ध किसीको ठढ लगनेकी स्थिति ही न रह जाय। यह 'ठढ लगना' दर-असल क्या है, इसे अच्छी तरह समझनेके लिए इस सबधमें कुछ विशेष कहना आवश्यक है।

मान लीजिए फौजकी कोई टुकडी किसी ठढे और खुले प्रदेशमे कुछ दिनो-के लिए भेजी जाती है। टुकडीके सैनिक प्राय समवयस्क और बहुत कुछ एक ही-जैसे स्वास्थ्यवाले होते है। टुकड़ीके वापस आनेपर इस स्थानके मौसिम या जल-वायुका प्रभाव सैनिकोपर विभिन्न रूपोमें देख पडेगा। कुछ सैनिकोको सर्दी-जुकामकी शिकायत होगी, कुछको सिरदर्द होगा, कुछके अगोमें दर्द होगा, पर कुछ लोगोका स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा हो गया रहेगा और कुछकी तो सिरदर्द वगैरहकी छोटी-मोटी तकलीफें बिलकुल दूर हो गई रहेगी। इन सभी बातोका कारण इस स्थानका जलवायु या मौसिम बतलाया जायगा और ऐसा कहना उनकी समझमे

ठीक भी होगा, क्योंकि ठढे और खुले मैदानमें रहना ही इन परिवर्तनोका तात्कालिक और प्रत्यक्ष कारण हुआ है; पर दरअसल स्थान या जलवायु इसका प्रमुख कारण नही है; क्योकि यदि वही प्रमुख कारण होता तो एकके पूर्णतः स्वस्थ और दूसरेके अस्वस्थ हो जानेकी स्थिति न उत्पन्न हुई होती। शताब्दियोंसे लोग इन परस्परविरोधी स्थितियों या परिणामोंके कारणका पता नही लगा पाए और रोग दिनोंदिन वढते ही गए।

ये रोग प्राय. शरीरके एक ही पार्श्व—एक हाथ, एक पैर, एक कधेमें हुआ करते हैं। इनका यह रूप ही यह स्पष्ट कर देता है कि मौसिम या जलवायु मुख्य कारण नहीं हो सकता; क्योकि मौसिमके प्रभावकी दृष्टिसे सभी अगोकी स्थिति एक ही-जैसी होती है। प्रायः ऐसा होता है कि खिड़कीकी ओर ठढी हवाके मार्गमें रहता है दाहिना हाथ पर रोग होता है बायें हाथमें जो हवाके मार्गमें न होकर सुरक्षित स्थितिमें रहता है। इसलिए रोगके समुचित उपचारके लिए वास्तविक कारणका ज्ञान होना परमावश्यक है।

सर्वप्रथम इस वातकी खोज होनी चाहिए कि इन रोगोंके कौन-कौन-से लक्षण और रोगोमें सामान्य रूपमें पाए जाते है। रोगीकी परीक्षा करनेपर तीन बातें मुख्य रूपमें पाई जाती हैं—(१) ज्वर, (२) दर्दके साथ सूजन और (३) पाचनमें गडवड़ी। वातरोगमें, विशेषकर सधिवातमें एक विशेष स्थलपर सूजन और पीड़ा होती है। यह स्थिति हमें मूल कारणके कुछ निकट पहुचा देती है। सधिवातमें पीड़ा सधिके नीचे ही देख पड़ती है, ऊपर कभी नही। यह बात आकस्मिक नही हो सकती, कोई कारण अवश्य होगा।

विजातीय द्रव्य वाहर निकलनेके प्रयत्नमें ज्वर उत्पन्न किये विना भी शरीरमें फैलता है। नातिशीतोष्ण और ठंढे देशोमें प्रौढ लोगोंके शरीरमें प्रायः ऐसा होता रहता है। गर्मीसे फैलना और ठंढसे सिकुड़ना पदार्थका साधारण धर्म है। शरीरमें भी यही प्राकृतिक नियम चलता है। ठंढकी मात्रा वढ़ जानेपर शरीरमें फैला हुआ विजातीय द्रव्य पुनः अपने उद्गम-

स्थान—उदरकी ओर जानेका प्रयत्न करता है, पर संधियोके बराबर गतिशील रहनेके कारण उसका मार्ग बहुत कुछ अवरुद्ध हो जाता है और वह संधियोके नीचे जमा होने लगता है। रुकावटपर दबाव पड़नेपर उनमे पीड़ा होने लगती है। विजातीय द्रव्यकी गति उद्गम-स्थानकी ओर होनेसे वह हमेशा सधिके नीचे ही देख पड़ता है। यदि सैनिकोंकी स्थिति-पर हम पुन. ध्यान दे तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी अस्वस्थताका कारण उनके शरीरके अदर ही वर्तमान था, मौसिम तो केवल प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। इसलिए रोगके लक्षण भी शरीरके उसी भागमें देख पडते है जहा यह द्रव्य एकत्र रहता है।

इस प्रकार सधिवातका कारण बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका उपचार करनेके लिए केवल रोगवाले भागका उपचार करना बिलकुल निरर्थक होगा। दर्द कम करनेके विचारसे उस विशेष भागका वाष्प-स्नान कराया जा सकता है। इससे द्रव्य तरल अवस्थामें आ जायगा और उसका मार्ग खुल जाएगा, पर रोगको पूर्णरूपसे दूर करनेके लिए विजातीय द्रव्यको मलमार्गोंके पास लाकर बाहर निकालनेका उपाय करना पडेगा।

एक ही पार्श्वमें रोग होनेका कारण एक ही ओर विजातीय द्रव्यका एकत्र होना है। कहा जा सकता है कि विजातीय द्रव्य तो सारे शरीरमें फैलनेका प्रयत्न करता होगा। यह ठीक है, पर ऐसा तभी होता है जब एक पार्श्व विजातीय द्रव्यसे इतना लद जाता है कि अधिकके लिए और गुजाइश नही रह जाती। इस प्रकार उस पार्श्वमें विजातीय द्रव्य बहुत दिनोतक मौजूद रहता है। पदार्थ सर्वदा गुरुत्वाकर्षणके नियमका पालन करता है। शरीरके सबधमें भी यही नियम लागू होता है। शीशेकी बोतलमें साफ पानी भरकर रख दीजिए। दूसरे दिन देखनेपर यह पता नही चलेगा कि बोतल कैसे रखी गई थी, पर अगर उसमे कुछ पक घोल दिया जाय तो दूसरे दिन पकके जमनेसे स्पष्ट हो जायगा कि बोतल किस बल रखी गई थी। अगर उसमें किसी चीजका तेज खमीर डाल दिया जाय तो पक-

वाले हिस्सेमें खमीर भी पैदा होने लगेगा। यह कोई आकस्मिक बात नही है, जहां पंक होगा वही खमीर भी उठेगा। अगर खमीर न डालकर उसे गर्मीमे रखा जाय तो भी खमीर उठेगा, पर इसके लिए कुछ समय अपेक्षित होगा। शरीरमें भी यही प्रक्रिया चलती है।

विजातीय द्रव्य उसी पार्श्वमें एकत्र होता है जिस करवट आदमी सोता है। स्वस्थ व्यक्तिको देखकर हम यह निश्चय नही कर सकते कि वह कैसे सोता है। वह चाहे जिस करवट सोये, उसके शरीरमें कोई अंतर नहीं आएगा। विजातीय द्रव्य मौजूद होनेपर आकृति-विज्ञानके सहारे यह आसानीसे मालूम किया जा सकता है कि व्यक्ति किस करवट सोया करता है। मात्रा बहुत अधिक होनेपर विजातीय द्रव्य इधर-उधर फैलने लगता है और तब व्यक्ति बेचैनीसे छटपटाने लगता है, किसी बल सोनेपर उसे शांति नही मिलती, जिस पार्श्वमें विजातीय द्रव्य लदा होगा उसपर मौसिमका असर भी अधिक और आसानीसे होगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस हाथमें ठंडी हवा लगी थी उसमें कोई तकलीफ न होकर दूसरे हाथमें क्यो हुई।

किसी पार्श्वमें विजातीय द्रव्यके एकत्र होनेमे काफी समय लगता है; बोतलवाले पंककी तरह अल्प कालमे ही यह बात नही हो जाती। बच्चे प्राय एक पार्श्वमें द्रव्य लिए हुए उत्पन्न होते है। यह माताके बराबर एक बल सोने या गर्भमें बच्चेकी स्थितिके कारण होता है।

मुझे एक ऐसा रोगी मिला जिसका रोग तो उतना भीषण नही था, पर उसके लक्षण बडे गभीर थे। घुटनेके ऊपर-नीचे सूज गया था और वहां भयकर पीड़ा थी। उसे यह रोग हर साल होता था और हर साल उसका रूप कुछ बढा ही हुआ होता था। उसका शरीर सिरमे पैरतक विजातीय द्रव्यसे लदा हुआ था, नया घुटनेकी ओर बढनेका प्रयत्न कर रहा था और पुराना लौटनेका। यह द्रव्य अल्प कालमें ही वहा जमकर कठिन हो जाता और तब यह सधिवातका रूप धारण कर लेता। उस जगह गर्मी पहुचानेसे फायदा हो जाया करता था, पर रोग क्रमश. जीर्ण ही होता

जा रहा था। पहले उस हिस्सेका वाष्प-स्नान कराकर द्रव्य नरम किया गया, फिर कटि और मेहनस्नानद्वारा द्रव्य बाहर निकाला गया, तब कही वह व्यक्ति स्वस्थ हुआ।

एक स्त्री हाथ और पैरके सधिवातसे बहुत परेशान थी। उसने बहुत कुछ चिकित्सा की, पर सब व्यर्थ। मैंने उसे बतलाया कि रोगका मूल कारण पाचनकी खराबी है। उसे रोज तीन बार मेहनस्नान करने और उपयुक्त आहार लेनेकी राय दी जिसमे शरीरमें नया विजातीय द्रव्य न आने पाए। कुछ ही दिन यह उपचार चलानेके बाद सधियोमे ठडकी जगह गर्मी आ गई और ठडे जलके स्नानसे शरीरमे ठड न आकर तापका ही सचार हुआ, क्योकि विजातीय द्रव्यके बाहर निकल जानेपर रक्त-सचलन ठीक-ठीक होने लगा। कुछ दिनोमें सधियोकी भी गर्मी दूर हो गई और शरीरका ताप साधारण हो गया।

सत्तर-सालकी एक बुढियाकी हालत तो इससे भी बदतर थी। वह तीन सालसे खाटपर पडी हुई थी। वह खाती तो थी, पर उसकी आतें खराब हो गई थी और मलमार्ग अपना काम उचित रूपमें नही कर रहे थे। जब-तक वह दुकानमे काम करती रही, उसका स्वास्थ्य ठीक रहा, पर काम छोड देनेपर शारीरिक परिश्रम कम पड जानेसे उसकी पाचनशक्ति मद पड गई और आते खराब हो गईं। सबका सामूहिक परिणाम यह हुआ कि सधिवातने उसे धर दबाया। नहानके बाद उसे बिस्तरपर लिटाकर पसीना लानेका प्रयत्न किया जाता और इस उपचारसे वह कुछ ही दिनो-मे बिलकुल स्वस्थ हो गई।

गृध्रसीका रूप इससे भी भयकर होता है। इसका भी कारण वही होता है जो सधिवातका। इसमे कटिसधिमे प्रदाह और पीडा होती है। इसके उपचारकी विधि भी वही ऊपरवाली है। एक व्यक्ति इस रोगसे बहुत परेशान था। पहले उसका बाया नितम्ब कुछ कडा हुआ, फिर मेरुदडका निम्नभाग और अन्तत. सारा शरीर ही कडा पड गया। अगोमे भयंकर पीड़ा रहती जिससे अग-सचालन भी कठिन हो गया। जूते पहनने-

निकालनेमें भी उसे अपार कष्ट होता। नगरके वाहर प्रसिद्ध चिकित्सकोने उसकी चिकित्सा की, विश्वविद्यालयके अध्यापकोने भी अपने छात्रोंको इस रोगका एक विशेष रूप कहकर दिखलाया, पर कोई उसे जरा भी राहत नही पहुचा सका। मेरी विधिसे चिकित्सा करनेपर उसे पहले ही दिनसे लाभ होने लगा और कुछ ही दिनोमें वह विलकुल ठीक हो गया।
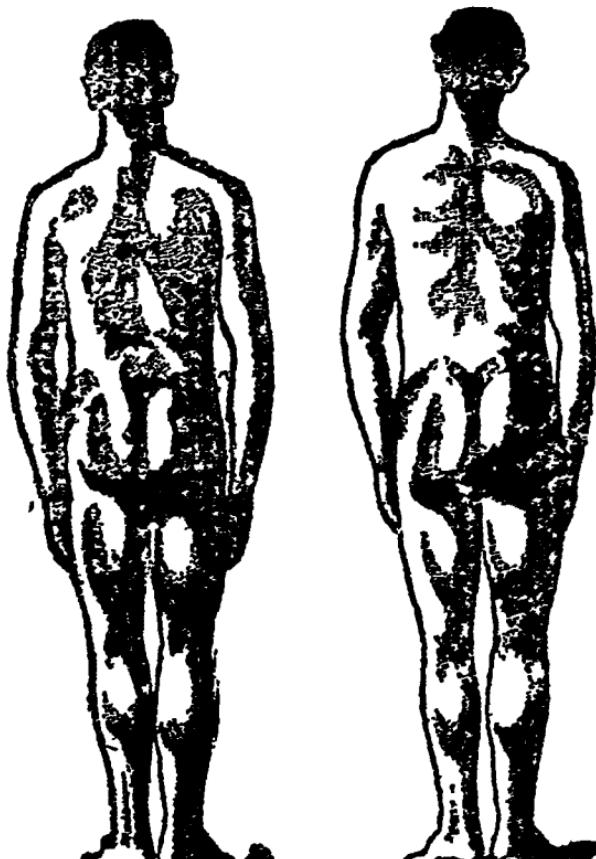
चित्र १ चित्र २

विजातीय द्रव्यके विशेष भागोमें एकत्र होकर कठिन पड जानेपर आकृतिमें—मेरुदड, कधे आदिमें परिवर्तन हो जाता है। विजातीय द्रव्यके

यह रूप ग्रहण करनेमें काफी समय लगता है। कभी-कभी तीव्र रोगके कारण कुछ विजातीय द्रव्य निकल जानेपर रूप-विकृति कुछ कालके लिए दूर हो जाती या कम पड जाती है। इस प्रकार आकृतिमें स्पष्ट परिवर्तन होनेमें वर्षो लग जाते है। जो विजातीय द्रव्य कभी मसूरिका, कभी सन्निपात ज्वर और कभी किसी दूसरे रूपमे प्रकट हुआ करता है वही जब किसी कारणसे बाहर न निकलकर किसी भागमे एकत्र हो जाता है तो आकृतिमे परिवर्तन कर दिया करता है। वह साधारणत ऐसे ही भागोमें एकत्र होता है जहा उसके कारण अगोको भरसक कोई बाधा न पहुचे। गतिवाले स्थानसे तो वह काफी दूर रहता है। इस विजातीय द्रव्यके कारण जो रोग होता है वह अधिक कष्टदायक नही होता। बाह्य परिवर्तन प्रत्यक्ष होनेपर तरह-तरहके कारणोकी खोज और कल्पना की जाने लगती है। पेशा और एक स्थितिमें बैठना प्रायः इसका कारण माना जाता है। यह सहायक तो हो सकता है, पर मूल कारण विजातीय द्रव्य ही होता है। स्वस्थ व्यक्ति चाहे जैसे बैठे-लेटे उसके शरीरमें कोई परिवर्तन नही होगा।

देहातमें लोग दिनभर झुके रहकर खेतमें काम करते है, पर सीधे खडे होनेपर उनके शरीरमें कोई झुकाव नही रहता। अगर वे स्वस्थ न होते तो विजातीय द्रव्यका प्रभाव उनके शरीरपर भी अवश्य पडा होता। अधिकाश लोग इस प्रकारकी विकृतिको पोशाक आदिके जरिये छिपाने-की कोशिश करते है, पर वे इस प्रयत्नमें अधिक दिनोतक सफल नही हो पाते। पेशे, आदत, सोनेकी स्थिति आदिके कारण विकृतिके रूपमे विभिन्नता देखी जाती है, ऐसे दो व्यक्ति शायद ही देख पड़ें जिनकी आकृतिमें एकरूपता हो।

चित्र १ लगभग साधारण रूपवाले मनुष्यका है। इसके सारे अगोंमें समानुपात है—न कोई बडा है न छोटा, न मोटा न पतला। सारा शरीर सुडौल है।

चित्र २ एक भिन्न ही रूप प्रकट करता है। परिवर्तन बायी ओर स्पष्ट

रूपसे देख पडता है। नितव ऊपर-नीचे कुछ वढ गया है। विजातीय द्रव्य उदरमें एकत्र होनेके कारण इस निकटतम भागमे उसका पहुचना स्वाभाविक था। यहा वहुत दिनोतक रुकनेके वाद ही वह कवेकी ओर वढा होगा। अगर लोगोका ध्यान इस वृद्धिकी ओर गया होता तो उचित समयपर उपचार आरभ हो गया होता। ऐसे रोगमें कोई दोपी ठहराया भी नही जा सकता, क्योकि लोगोको इसके उपचारका ज्ञान ही नही था। इस प्रकारकी आकृतिवालेको लोग 'विकलाग' कह दिया करते हैं। वस, यह विकृति कैसे और क्यो आयी आदि वातोकी पहले कभी खोज नही की गई। मेरी नई पद्धति इस सवघमें निम्पाय नही है, वह आरोग्य प्रदान करनेमे पूर्णत सफल हुई है।

इस व्यक्तिमें विजातीय द्रव्य वाम पार्श्वमें एकत्र हुआ है—ठीक उसी तरह जैसे वोतलमें। द्रव्यको अधिक स्थानकी जरूरत थी, पर मार्ग न पाकर दवावके कारण एक जगह एकत्र होता गया। अगर यह स्थिति वनी रही तो वह और वढता और फैलता जायगा। नितवकी वृद्धिके पहले ही गलेका वायां हिस्सा कुछ वढ गया रहा होगा। यह वही द्रव्य है जो मसूरिका, संन्निपात, ज्वर आदिका कारण हुआ करता है। इसे वाहर निकाल देनेपर सभी प्रकारके रोगोसे आसानीसे वचा जा सकता है।

इसी प्रकार दोनो नितवो और धडकी भी वृद्धि हो जाती है और गर्दन तथा पैर छोटे पड़ जाते हैं। गर्दनका कुछ हिस्सा कधोमे छिप जाता है और उनके भर जानेपर द्रव्य सिरकी ओर वढ जाता है। इसके विपरीत ऐसा भी हो सकता है कि पैर और हाथ काफी वढ जाये और धड छोटा पड जाय। यह छोरोकी ओर द्रव्यके वढनेका परिणाम होता है। पचास वर्षके एक व्यक्तिका धड वहुत वढ गया था और गर्दन तथा पैर छोटे पड गए थे। मेरी चिकित्सा आरभ करनेपर उसके शरीरकी आकृतिमे क्रमश परिवर्तन होने लगा। उसका पाजामा पैरोमे छोटा होने लगा, कोट भी कधेके पास ढीला पडने लगा। कुछ ही दिनोंके उपचारके वाद

उसका शरीर साधारण रूपमे आ गया। इस पद्धतिसे इस प्रकारका फल प्राप्त किया जा सकता है, इसकी पहले कोई कल्पना भी नही कर सकता था। हा, इसके लिए बहुत दिनोतक लगातार उपचार करनेकी जरूरत

चित्र ३ चित्र ४

है। अगर रोग बहुत पुराना और जीवशक्ति कम हो गई हो तो नीरोग होनेकी आशा कम रहेगी।

चित्र ३ वाली विकृति बहुत कम देख पड़ती है। पीठ निकल गई

है और सीना धस गया है जैसे आगेका हिस्सा लेकर पीछेकी ओर जोड दिया गया हो। पीठका भार कम हो जानेपर सीना निकल आएगा। कभी-कभी यह भार शैशवावस्थामे ही आरभ हो जाता है। उस समय यह रोग बड़ी आसानीसे दूर किया जा सकता है।

चित्र ५

कभी-कभी यह विजातीय द्रव्य मार्गसे हटकर इधर-उधर भी जा पड़ता है और वही जमा हो जाता है। चित्र ४में यह वात स्पष्ट रूपसे देखी जा सकती है। द्रव्य मुख्यत. वाईं ओर जमा हुआ है, पर उस ओर-का मार्ग अवरुद्ध हो जानेपर दाहिनी ओर चला आया है और वहांसे फिर वाईं ओर पहुचा है। वाईं ओर तो ऊपर-नीचे, पर दाहिनी ओर बीचमें

वढा है। मेरुदंड भी वक्र हो गया है। अगर पट्टी या किसी यंत्रका उपयोग किया जाय तो लाभ तो कुछ होगा नही, वह व्यर्थ ही कष्टका कारण होगा। दवानेकी ज्यादा कोशिश करनेपर द्रव्य मीनेकी ओर निकल आएगा। शरीरमे रहनेपर उसके लिए कही-न-कही स्थान होना ही चाहिए, इसलिए वाह्योपचार होनेपर केवल उसके स्थानमे परिवर्तन हो सकता है।
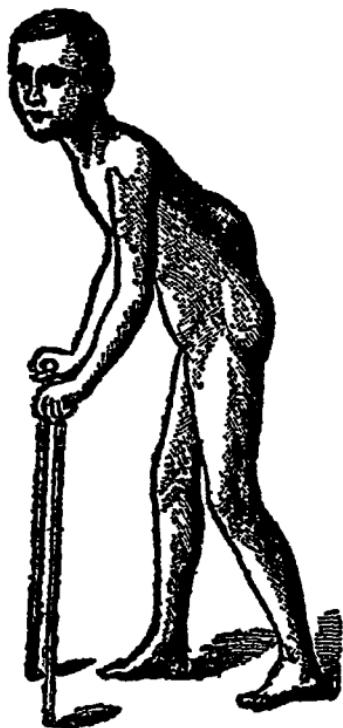
चित्र ६ चित्र ७

चित्र ५मे विजातीय द्रव्य पीठपर एकत्र हुआ है और उसने ढाचेको स्थायी रूपसे टेढा कर दिया है। ऐसा शायद ही कभी होता है, क्योंकि विजातीय द्रव्य हमेशा अगोके छोरकी ओर वढनेका प्रयत्न करता है।

चित्र ६वाले वालककी पीठ इसी कारण टेढी पड गई थी और वह दो छडियोके सहारे वडी कठिनाईसे दो-चार कदम चल पाता था। कहीं आना-जाना तो उसके लिए असभव ही था। एक डाक्टरने वृद्धिके स्थान-पर चीरा लगाकर लडकेको व्यर्थ ही कष्ट पहुचाया। मेरी पद्धतिके अनु-सार उपचार करनेपर दो सप्ताहमें उसे छडियोकी जरूरत नही रही और चौथा सप्ताह व्यतीत होते-होते वह स्कूल जाने योग्य हो गया (चित्र७)

भाग २

ठंढे हाथ-पैर—गर्म सिर

कुछ लोगोके हाथ-पैर ठडे और सिर गर्म रहा करता है। पहले कहा जा चुका है कि विना ज्वरके कोई रोग नही होता और विना रोगके ज्वर भी नही होता। इसलिए मेरे सिद्धातानुसार यह भी ज्वरकी ही अवस्था है। सिरका गर्म होना तो ज्वरका लक्षण है ही, अलबत्ता हाथ-पैरका ठडा होना ज्वरमें नही देखा जाता। मेरी समझमें दोनो वाते एक ही प्रकारसे होती हैं। विजातीय द्रव्यका खमीर उदरसे निकलकर सारे शरीरमे पहुचता है और उसका थोडा-थोड़ा अश सिर, हाथो और पैरोमे जमा हो जाता है। पैरोमे इसका बहुत कम प्रतिरोध होता है। यह पहले उगलियोमे जमा होता है और तब ऊपर बढकर घुटनोंतक पहुचता है जिससे रक्त-सचारमें कमी आ जाती है और इसके फलस्वरूप उस भागमे गर्मी कम पड़ जाती है। हाथोके सवधमे भी यही बात होती है। कुछ लोगो-की उगलियोका केवल अग्रभाग ठडा होता है, कुछका एक ही पैर, पर कुछ दिनोके वाद दोनो पैरोकी हालत एक-सी हो जाती है और ठंड घुटनो-तक पहुच जाती है। गर्म मोजे या पट्टिया बहुत दिनोतक मदद नही करती। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कपड़ेके कारण शरीरमें गर्मी नही पहुचती वल्कि शरीर ही कपड़ेको गर्म रखता है। कपडेसे गर्मी पहुचाने-का अर्थ यह होता है कि शरीरमे गर्मी मौजूद है, वही निकलकर कपडेमें जाकर रुकती है। रक्तका सचलन और स्वेद निकलना वद हो जानेपर गर्म-से-गर्म कपडा भी बेकार सावित होता है। सिरकी स्थिति इससे भिन्न होती है। भेजेमे रक्त अधिक होनेके कारण वहा विजातीय द्रव्यका प्रति-रोध हाथ-पैरकी अपेक्षा अधिक होता है। संघर्ष अधिक होनेके कारण

गर्मी भी अधिक पैदा होती है। जिस कारणसे हाथ-पैर ठडे पड जाते है उसी कारणसे सिर पहले गर्म होता है। यह गर्मी कुछ ही दिनोंमे समाप्त हो जाती है। विजातीय द्रव्यका दवाव वढने और प्रतिरोध समाप्त हो जानेपर सिर भी ठडा हो जाता है। अगर हाथ-पैरमें ठड और सिरमे जलन-सी मालूम हो तो खमीर वननेके मूल स्थान उदरका उपचार करना चाहिए। पाचनक्रिया ठीक हो जानेपर हाथ-पैर तो गर्म और सिर ठडा रहेगा। ऊपरकी अवस्था जिन लोगोंकी होती है उनको सधिवात आदि होनेकी सभावना अधिक रहती है।

आकृतिविज्ञानद्वारा निदान

मेरे वहुतसे रोगी अन्य सारी चिकित्सा-पद्धतियोकी आजमाइश कर लेनेके वाद आखीरमें मेरी सहायता लेने पहुचते है। इस परिस्थिति-ने औपधोपचार-पद्धतिके निदानमे अच्छी अतर्दृष्टि प्रदान कर दी है। एक वार एक अच्छे डील-डौलका लवा आदमी, जिसे सव लोग स्वास्थ्य-की प्रतिमूर्ति ही कहते, मेरी राय लेने आया। कई चिकित्सक उसके स्वास्थ्यकी पूरी जाचकर इसी नतीजेपर पहुचे थे कि वह पूर्णत स्वस्थ है—उसे कोई रोग नही जान पड़ता और चूकि उसकी वीमारी सिर्फ खयाली है इसलिए उसके लिए यही सवसे अच्छा उपाय होगा कि वह कही सफरमें निकल जाय जिसमें उसका खयाल वदल जाय और तव उसे रोगका भूत नही सतायेगा। उसने उनके आदेशका पूरा-पूरा पालन किया, पर उससे कोई लाभ न होनेपर वह मेरे पास आया। उसका सिर और गर्दन देखने और सिरके दाहिने-वायें घूमते समय गर्दनकी परीक्षा करनेपर मुझे साफ-साफ पता चल गया कि उसका सारा शरीर विजा-तीय द्रव्यसे वुरी तरह भरा हुआ है। मैंने उसे अपना साधारण उपचार चलानेको कहा और छ सप्ताहमें ही यह विजातीय द्रव्य इतना अधिक निकल गया कि वह दिनभर काम करने योग्य हो गया। इससे आप समझ सकते है कि किसका निदान अधिक व्यावहारिक था।

अट्ठारह सालकी एक लडकी हरित् रोगसे पीडित थी। डाक्टरोका कहना था कि कुछ-कुछ हरित् रोग है, यो वह बिलकुल ठीक है, वह लौहका सेवन करे तो जल्दी ही स्वस्थ हो जायगी। उसने लौहका सेवन तो किया, पर इससे उसकी हालतमे कोई सुधार नही हुआ। मेरा आकृति-विज्ञान कह रहा था कि उसका हरित् रोगसे ग्रस्त होना और बिलकुल ठीक भी होना—दोनो बातें साथ नही हो सकती, उसका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ था। रक्तकेशिकाओके अवरुद्ध होनेके कारण रक्त त्वचाके ऊपरी भागमे पर्याप्त परिमाणमे नही पहुँच रहा था जिससे त्वचा पीली और अस्वस्थ देख पड रही थी। इस रोगका कारण पाचनका वर्षो पुराना विकार था जिसे उसने खुद स्वीकार किया। दुर्भाग्यवश बहुतेरे लोग यह नही जानते कि पाचनकी साधारण अवस्था वस्तुत क्या है। इसी वजहसे वे इसका महत्त्व भी नही समझ पाते। मुझे अपने चिकित्सा-कार्यमे रोज ही इस बातका अनुभव होता है। इसके लिए भी मैंने वही ऊपरवाला उपचार चलाया और कुछ ही महीनोमे सारी खराबी दूर हो गयी और उसकी शक्ल बदल गयी। इस रोगकी वास्तविक अवस्थाके सबधमे भी औषध-विज्ञानका निदान बिलकुल गलत निकला; क्योकि हरित् रोग तो मूल रोगका बाह्य लक्षणमात्र था जिसे विकृत पाचनसे उत्पन्न विजातीय द्रव्यने प्रस्तुत किया था। इस अवस्थाका निश्चय मैंने लडकीके सिर और गर्दनकी शक्ल देखकर किया था जिसकी ओर औषध-विज्ञानके प्रतिनिधियोका ध्यान भी नही जा सका था।

एक उदाहरण और। एक औरत मेरे पास आयी जो कब्जसे बेतरह परेशान थी और कब्ज किसी तरह जानेका नाम ही नही ले रहा था। कोई दवा अब काम नही कर रही थी। डाक्टरने कह दिया था कि चिता करनेकी जरूरत नही है, स्वस्थ लोगोको भी कब्ज रहा करता है और यह आप-ही-आप ठीक हो जायगा। इस स्त्रीके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत अधिक परिमाणमे भरा हुआ था जिसके कारण जीर्ण ज्वरका ताप अदर, विशेषकर उदरमे बराबर बना रहता था। यही आतोसे निकलनेवाले

श्लेष्माको सुखाकर मलको करीव-करीव जला डालता था जिससे वह शुष्क और कडा होकर आतमें रुका रह जाता था। मेरा उपचार शुरू करने-पर वहुत थोडे समयमें, आरभिक स्नानोसे ही अदरका ताप वाहरकी ओर खिच आया और आत मलविसर्जनका कार्य करने लगी। इसमें भी औषध-विज्ञानके निदानके तरीकेकी अनुपयुक्तता स्पष्टत देख पडती है। कब्जसे पीडित व्यक्तिको पूर्णत. स्वस्थ कहना ऐसी हानिकारक और व्यापक भूल है जैसी और कोई शायद ही हो। रोगविषयक यह मान्यता सत्यसे कितनी दूर है! यह तो वच्चोका-सा देखना हुआ। जिनकी दृष्टि वाहरी चिह्नोतक ही सीमित रहती है, उनकी तहतक नही पहुच सकती। मेरी तो यही मान्यता है कि पाचनकी विकृति ही सारे रोगोकी जननी है।

एक सुयोग्य चिकित्सकने मुझसे एक बार कहा था कि शरीर-सस्थान-की परीक्षा करते समय मैं प्राय यह जाननेके लिए दिमाग लड़ाता रहा हू कि रोगीकी मृत्यु इसी रोगसे क्यो हुई, किसी अन्य रोगसे क्यो नही हुई। शरीरके सारे हिस्सों और अदरके अगोको भी ठीक हालतमें पाता हू, थोडा भी किसी रोगका चिह्न नही दिखाई पड़ता। मैंने अपने और उसके निदानका अतर स्पष्ट करते हुए उसे वतलाया कि औषधोपचारक तो मुख्यतः शव-च्छेदके जरिये सीखना चाहते है, पर मैं जीवित शरीरमें होनेवाली क्रियाओ, उनके कारणो और उनमे पडनेवाली वाधाओका अध्ययन करता हू, इसलिए शवकी परीक्षा मेरे लिए विलकुल वेकार है। एक उदाहरणसे यह वात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये कि कोई आदमी सिलाईकी मशीन खरीदना चाहता है। वह दूकानमे रखी हुई अच्छी मशीनोको देखकर एक पसद कर लेता है। उसमे उसे ऊपरसे कोई खरावी नही देख पडती, छोटे-से-छोटा पुरजा भी वढ़िया वना हुआ है। अव उसे कोई यह सुझाता है कि स्थिर रहते समय तो मशीन विलकुल ठीक देख पड़ सकती है, पर उसकी खरावीका पता तो उसके चलनेपर ही लग सकता है, उसमें ऐसी कोई खरावी नजर आ सकती है जो और किसी हालतमें तो लक्षित

न हो, पर उसके कारण मशीन बिलकुल रद्दी समझी जाय; इसलिए उसे चालू करके देखना ही अच्छा होगा। मानवशरीरके संबंधमे भी यही बात लागू होती है। निष्क्रिय या यो कहिये कि मृत शरीरसे उसकी हालत समझना बिलकुल असभव है। जीवितावस्थामें उसकी नियमितता या अनियमितता प्रत्यक्ष हो जाती है, इसलिए जो उसकी अनियमितताओ—रोगो और उनके विभिन्न लक्षणोका अध्ययन करना चाहता है वह शवच्छेदसे अपना प्रयोजन सिद्ध नही कर सकता, केवल जीवित शरीरके निरीक्षण-परीक्षणद्वारा कर सकता है। मेरा आकृतिविज्ञान जीवित शरीरके निरीक्षणोपर ही आधृत है।

सभी प्रकारके रोगोकी एकता प्रमाणित हो जानेके बाद मै यह कहने-की स्थितिमें हू कि रोगोके नाम और स्थानके संबंधमें किये जानेवाले, औषधविज्ञानके निदान निरे निरर्थक है और जहातक आरोग्य-लाभका सबध है वे बिलकुल बेकार है। वे हमें बडी आसानीसे गलत रास्तेपर ले जा सकते है। निश्चय करनेका प्रश्न केवल यह है कि शरीर स्वस्थ है या रुग्ण—वह विजातीय द्रव्यसे मुक्त है या उससे भरा हुआ है। साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि यह विजातीय द्रव्य कैसे आया है और कबसे है जिसमें आरोग्य-लाभमे लगनेवाले समयका कुछ अदाजा लगाया जा सके। रोगका सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जानेपर हमे यह भी मालूम हो जायगा कि स्वास्थ्य-लाभके लिए क्या करना चाहिए। इससे यह होगा कि उपचारके आरभिक कालसे ही हम गलतियोसे बहुत कुछ बचे रहेगे।

उपचारके साधन और विधि

कुछ रोगोंके लक्षण और कारण जान लेनेके वाद उन रोगोसे मुक्त होनेके तरीकोंका कुछ ज्ञान करा देना आवश्यक जान पडता है। उपचार-में भी एकरूपताका ही सिद्धात वरता जाता है, क्योकि विभिन्न नाम-रूपधारी रोगोका मूल एक है।

वाष्पस्नान

पहला सावन वाष्पस्नान है। त्वचाको सावारण रूपमें कार्य करने योग्य वनानेके लिए वाष्पस्नान सर्वाधिक विश्वसनीय उपाय है। जो लोग अपना स्वास्थ्य वनाए रखना या वनाना चाहते हैं उनके लिए त्वचाको उपर्युक्त स्थिति अनिवार्य रूपमें आवश्यक है।

वाष्पस्नानके लिए कोई ऐसी चौकी या वेंच वनवा लेना अच्छा होगा जिससे सुविवापूर्वक सारे शरीर या अग-विशेषका वाष्पस्नान कराया जा सके। अगर सारे शरीरका वाष्पस्नान कराना हो तो तीन-

चार पात्रोंमें पानी उवाला जाय। रोगीको इस चौकीपर पीठके वल लिटा दिया जाय। वदनपर कोई कपडा न हो। कवलसे सारा शरीर इस प्रकार ढक दिया जाय और उसके दोनो किनारे दोनों वगल लटकते

रहे। एक आदमी कबल जरा उठाकर पात्रोको नीचे रख दे। ढक्कन आवश्यकतानुसार पूरा या थोडा खोला जाय। प्रौढ़ोंके लिए तीन-चार पात्र आवश्यक होते हैं, बच्चोका काम एकसे ही चल जाता है। एक पात्र अलग तैयार रहना चाहिए। एक पात्र कमरके नीचे, दूसरा पीठ और तीसरा पैरोके नीचे होना चाहिए।

दस-बारह मिनट बाद वाष्पकी कमी पडने लगनेपर कमरके नीचे-का पात्र बदल दिया जाय। पैरोके नीचेका पात्र बदलनेकी जरूरत नही है। पद्रह मिनटके बाद रोगीको सीनेके बल लेट जाना चाहिए। अगर अबतक पसीना नही निकला है तो अब अच्छी तरह निकलने लगेगा। सिर और पैरोसे पसीना साथ ही निकलेगा। बच्चोके लिए पात्र बदलने-की जरूरत नही है। जिन लोगोको पसीना जल्द नही निकलता उनका सिर ढका रहना चाहिए। यह बुरा नही मालूम होगा। पद्रहसे तीस मिनट-तक पसीना निकलना जारी रखा जा सकता है। जिन अगोपर विजातीय द्रव्य अधिक लदा होगा उनसे पसीना मुश्किलसे निकलेगा और रोगी स्वय उन स्थानोपर अधिक गर्मी पहुचानेकी जरूरत महसूस करेगा। रोगीकी बातपर शीघ्र ध्यान देना चाहिए, क्योकि इसी प्रकार शीघ्र आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग कमजोर हैं, जिनका रोग भीषण है या जिनमें नाडी-दौर्बल्य है उन्हे वाष्पस्नान नही कराना चाहिए। ऐसे लोगोके लिए कटि और मेहनस्नानके साथ धूप-स्नान ही विशेष रूपसे लाभ-दायक हुआ करता है। जिनको आसानीसे पसीना निकल आता हो उनके लिए भी वाष्पस्नानकी कोई विशेष आवश्यकता नही है।

वाष्पस्नानके बाद शरीरको ठडा करनेके लिए कटिस्नान करना चाहिए। आरभमे या स्नान समाप्त करते समय फुर्तीसे शेष अंगोको धो डालना चाहिए जिसमे वे भी साफ और ठडे हो जाय। शरीर जितना गर्म रहेगा ठडका अनुभच उतना ही कम होगा। पसीना निकल आनेपर किसी तरहकी उत्तेजना नही रहती, केवल त्वचा गर्म हो जाती है। इस प्रकारके स्नानका कोई हानिकर प्रभाव होनेकी सभावना नही रहती।

जैसे लोहेको भट्ठीमें लाल करनेके बाद आवश्यकतानुसार कडा करनेके लिए उसे पानीमें डुबाना पड़ता है ठीक वैसे ही वाप्पस्नानके बाद शरीर ठडा किए जानेपर सशक्त और कठोर हो जाता है।
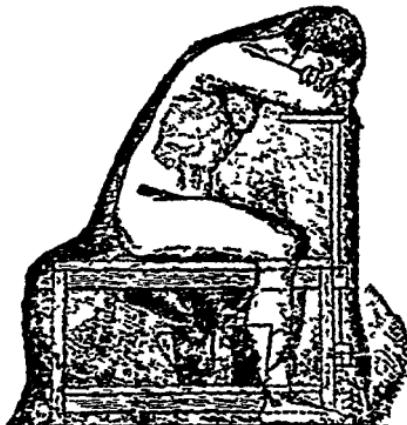
कटिस्नानके बाद भी कुछ पसीना निकालनेके लिए शरीरको फिर गर्म करना आवश्यक होता है। बलवान् व्यक्ति खुले मैदानमे, विशेपकर धूपमें व्यायाम कर बदनमें आवश्यक गर्मी ला सकते है, कमजोर लोगोको

बिस्तरेपर लिटाकर कंबलसे ढक देना चाहिए। कमरेकी खिडकी स्वच्छ हवाके लिए अशत. खुली रहे।

मासिक स्राव तथा स्त्रीसंबंधी अन्य रोगोमें उदरका वाप्पस्नान

विशेष रूपसे लाभदायक होता है। इसके लिए केवल एक पात्र आवश्यक होता है; यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो पात्र बदला जा सकता है। इसके बाद ठड लानेके लिए मेहन (उपस्थ) स्नान सबसे अच्छा होता है। स्नान तबतक जारी रखा जाय जबतक ठड न मालूम होने लगे। सावधानीसे चलानेपर यह वाष्पस्नान आश्चर्यजनक लाभ दिखलाता है।

गर्दन और सिरका वाष्पस्नान करानेके लिए पात्र बेचपर रखकर सिर और गर्दनको तबतक वाष्प देते है जबतक पसीना न निकलने लगे। पसीना निकलनेपर दर्द, विशेषकर दातका दर्द गायब हो जाता है। सिर और सीना गर्म हो तो ठडे पानीसे फौरन धो डालना चाहिए और कटि या मेहनस्नान भी करना चाहिए। अगर दर्द फिर वापस आ जाय तो बारी-बारीसे सारे शरीर और गर्दनका वाष्पस्नान करना चाहिए।

यह आशिक वाष्पस्नान बडे महत्त्वका होता है। कान, आख, नाक, गर्दन और दातकी तकलीफ इससे फौरन दूर हो जाती है। फोडो और प्रमेहपीडिका (कार्बंकल) मे यह विशेष रूपसे लाभदायक होता है। इस आशिक स्नानके लिए सुविधाजनक आसन बनवानेमे कोई कठिनाई नही होती। उदरके स्नानके लिए तो बेतवाली कुर्सी ही काम दे सकती है। सिरका स्नान करनेके लिए एक दूसरे आसनपर बैठ जाइए और वाष्पवाला पात्र कुर्सीपर रखकर सिरको कुर्सीकी पीठसे टिका दीजिए। बदन तो प्रत्येक स्नानमे ढका रहेगा ही।

धूपस्नान

धूपस्नान तेज धूपमे ही किया जा सकता है। रोगीको ऐसी जगह धूपमें केवल लगोट पहनकर चटाईपर लेट जाना चाहिए जहा हवाका झोका न आता हो। चेहरे, सिर और उदरको किरणोसे बचानेके लिए केले या और किसी चीजकी पत्तीसे ढक लेना चाहिए। अगर पत्ती न मिले तो गीला कपड़ा काममें लाया जा सकता है।

स्नान आधेसे डेढ घटेतक चल सकता है। अगर पसीना न निकले

और थकान न मालूम हो तो रोगी और देरतक रह सकता है। धूप बहुत अधिक तेज होनेपर स्नानका समय अधिक नही होना चाहिए।

जिनके सिरमें दर्द पैदा हो जाय या सिर चकराने लगे वे आरभमें देरतक धूपस्नान न करें। यह हालत प्राय. उन्ही लोगोंमें देख पडती है जिन्हे पसीना नही निकलता या देरसे निकलता है। धूपस्नानके बाद उससे ढीला पडे हुए विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेके लिए कटि या मेहनस्नान आवश्यक होता है। कटि या मेहनस्नानके बाद जिनके शरीरमें जल्द गर्मी न आए वे सिर ढककर पुन धूपमें थोडी देर बैठ जाय और चाहे तो धूपमें टहल भी सकते है। जिन लोगोका रोग भीषण होता है या जो नाजुक होते है उन्हीमे यह बात देख पडती है। ऐसे लोगोंको चिकित्साके आरभमे भरसक धूपस्नान नही करना चाहिए, क्योकि उनके लिए यह बहुत कडा पडता है।

धूपस्नानके लिए सबसे अच्छा समय नौ बजेसे तीन बजेतकका होता है। भोजनके बाद भी धूपस्नान किया जा सकता है, पर दो-एक घटे रुककर करना चाहिए, क्योकि पाचनके लिए गर्मी आवश्यक होती है जो धूपस्नान-के बाद कटि या मेहनस्नानसे बहुत कम पड जाती है।

आंशिक धूपस्नान

जख्म, काठिन्य, अर्बुद, दर्द आदिके लिए आंशिक धूपस्नान बहुत लाभदायक होता है। इस स्नानमे वह विशेष भाग निर्वस्त्र रखकर पत्तियो-से ढक दिया जाता है।

जल और सयत आहारके साथ-साथ धूप बहुत आरोग्यदायक चीज है। जीर्णरोगमे विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेके लिए धूप-स्नानसे बढकर और कोई साधन नही है। अगर फलालैनका गदा कपडा धूपमें रखा जाय तो गदगी उसके भीतर प्रविष्ट होती जायगी; लेकिन अगर उसे पानी और धूपमें बारी-बारीसे रखें तो धूप उसकी गदगी बहुत कुछ दूर कर देगी। शरीरके सबधमें भी यही बात लागू होती है।

धूप, पानी, हवा, मिट्टी—इन्हीके सम्मिलित प्रभावसे प्राणियोका इस पृथ्वीपर जीना सभव है। पौधेको भी इन सबकी जरूरत होती है; अगर इनमेसे एक भी न रहे तो वह मुरझा जायगा या उसकी वृद्धि रुक जायगी। अन्य जीवो तथा मनुष्यके साथ भी यही बात है। कुछ लोग पानी और धूपसे बहुत परहेज करते है जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उनकी प्रकृति कोमल पड जाती है और शरीरमे रोग-ग्रहण-की प्रवृत्ति आ जाती है। तदुरुस्त आदमीपर धूपका कोई बुरा असर नही होता; अस्वस्थ व्यक्ति बेचैनी मालूम होनेके कारण इससे बचना चाहता है। अगर मलमार्ग सशक्त न हो तो धूपके कारण विजातीय द्रव्य-मे गति आ जानेपर सिरदर्द, चक्कर, सुस्ती, भारीपन आदि विकार पैदा हो जाते है। यह इस बातका सूचक है कि विजातीय द्रव्य तेजीसे इधर-उधर हट रहा है। बादमें कटि या मेहनस्नान न करनेपर केवल धूपस्नान-से अभीष्ट फलकी प्राप्ति नही होती। पानीमे जीव-शक्ति वढानेका प्रभाव होता है। पौधे भी धूप और पानीके ही बारी-बारीसे पडनेवाले प्रभावसे बढते है—केवल धूपमे मुरझा जाएगे।

कुछ लोगोका यह खयाल हो सकता है कि ढके बदनकी अपेक्षा खुले बदनपर धूपका असर ज्यादा होगा, पर यह भ्रम है। प्रकृतिकी ओर दृष्टिपात करनेपर यह बात स्पष्ट हो जायगी। यदि आप अगूरकी लता-की ओर ध्यान दें तो देखेगे कि अगूर हमेशा पत्तियोकी ओटमे जाकर सूर्य-की किरणोसे बचना चाहते है। ऐसे ही फल बढिया और मीठे होते है, धूपवाले खट्टे और छोटे होते है। चेरी वृक्षकी भी यही हालत है। उसकी पत्तिया कीडे चाट जाते है जिससे उसके फल अच्छे नही होते। पकते समय प्रत्येक फलको सूर्यकी किरणोसे बचनेके लिए पत्तियोकी ओट-की आवश्यकता होती है। इन उदाहरणोसे सूर्यके सीधे और वक्र प्रभाव-का अतर बिलकुल साफ हो जाता है।

खुले सिरपर धूपका असर बुरा होता है। इससे तरह-तरहकी तक-लीफे पैदा हो सकती है। अगर शरीर कपडेसे ढका रहे तो शरीरके छिद्र

जल्द खुल जाते हैं, शरीर आर्द्र और गर्म हो जाता है और पसीना निकलने लगता हैं। अगर किसी गीली चीजसे निर्वस्त्र शरीरको ढक लें तो धूपकी क्रिया बहुत बढ़ जायगी। ताजी पत्तिया इसी प्रकारके आवरणका काम करती हैं।

यह बात लोग अच्छी तरह जानते है कि काले और सफेद कपडेके अदर प्रवेश करनेवाली किरणोका असर भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए कपडा इस्तेमाल किया जाय या हरी पत्ती, यह यो ही टाल देनेकी बात नही हैं। कई वर्षोंके प्रयोगसे यह सिद्ध हो चुका है कि पत्तीके नीचेका विजातीय द्रव्य जल्द हटने लगता है। सधिवात, रक्ताल्पता, हरित् रोग, क्षय आदिमें और उपचारोके साथ धूपस्नान बहुत लाभदायक होता है।

कटिस्नान

कटिस्नानके लिए नीचेकी आकृतिका एक टब लेकर उसमे इतना पानी डालिए कि उसमें बैठनेपर वह जाघो और नाभितक पहुच जाय। पानीका तापमान ६४° से ६८° (फा०) तक हो। स्नान करनेवालेको

पैरोको बाहर निकालकर पीठके बल बैठ जाना चाहिए और तौलिया भिगोकर पूरेको ऊपर-नीचे, दाए-बाए रगड़ना शुरू कर देना चाहिए। जबतक शरीर ठंडा न हो जाय यह क्रिया जारी रखनी चाहिए। आरभमे पाचसे दस मिनटतकका स्नान काफी होता है, पीछे कुछ बढा देना चाहिए।[1] निर्बलो

---

[1]पंद्रह मिनटसे अधिक समयतक यह स्नान नहीं लेना चाहिये और इतने समयतक भी वे ही स्नान ले सकते हैं, जो मोटे हों।—संपादक

और बच्चोका स्नान कुछ ही मिनटोका (एकसे पाच मिनटतकका) होना चाहिए। पैर और शरीरका ऊपरी भाग ठडा नही किया जाना चाहिए; क्योकि इन स्थानोमे रक्तकी कमी होती है। जाडेके दिनोमे स्नान करते समय इन हिस्सोको ऊनी कबलसे ढक लेना चाहिए। स्नानके बाद शरीरको तत्काल गर्म करना आवश्यक होता है। इसके लिए खुली हवामें व्यायाम करना या टहलना सर्वोत्तम होता है। जो कमजोर या अधिक बीमार है उन्हे बिस्तरपर लिटाकर खूब ढक देना चाहिए।

कटिस्नान प्रतिदिन एक या दो बार और अधिक-से-अधिक तीन बारतक किया जा सकता है। समय और पानीका तापमान रोगीकी अवस्थाके अनुसार होना चाहिए। कुछ अवस्थाओंमें कटिस्नानके बदले मेहनस्नान करना ठीक होता है और कुछमें दोनो।

मेहनस्नान

मेहन (उपस्थ) स्नान स्त्री-रोगोमें विशेष लाभदायक होता है। इसके लिए टबमें एक पाटा या स्टूल—जो लगभग एक बालिश्त ऊचा हो—डालकर उसकी सतहके पासतक पानी भर देते है। पाटेका ऊपरी हिस्सा सूखा रखा जाता है। पाटेपर बैठ जानेपर छोटे गमछे या रूमालसे जितना पानी उठ सकता है उठाकर मेहन या उपस्थ और उदरको हौले-हौले धोया जाता है। पहले एक-दो मिनट उदरको धो लेते है तब मेहन या उपस्थ (जननेंद्रिय) को धोते है। इसमें जननेंद्रियके बाहरका अगला चमडा ही धोया जाता है, भीतरका हिस्सा नही। आगे-पीछे कडाईसे रगड़ना नही चाहिए, केवल धोना चाहिए। यह कार्य पाच मिनटसे लेकर बीस मिनटतक किया जा सकता है। इसके बाद गर्दनसे नितबतकके हिस्सेको ऊपर-नीचे धीरे-धीरे दो-तीन मिनटतक गीले कपडेसे रगडना या मलवाना चाहिए। शरीरका ऊपरवाला हिस्सा और पैर सूखे रहेगे। इनमे व्यायामद्वारा या कपडा लपेटकर शीघ्र गर्मी पहुचानेका प्रयत्न होना चाहिये। मासिक स्रावके समय स्नान बद रखना चाहिए। अगर स्राव

असाधारण हो तो स्नान कराया जा सकता है, पर उसमें रोगीकी अवस्था-का विशेष रूपसे विचार करना पडता है। स्राव साधारणत दो-तीन दिन और अधिक-से-अधिक चार दिन चलता है। अगर इससे अधिक हो तो समझना चाहिए कि अवस्था असाधारण है।

मेहनस्नानके काममें आनेवाले पानीका तापमान प्राकृतिक होना चाहिए। विशेष अवस्थामें अधिक तापवाला भी लिया जाता है। स्नानका समय रोगीकी उम्र और दशाके अनुसार दस मिनटसे एक घटे[1] तक हो सकता है। जाडेके दिनोमें कमरा भरसक ठडा न रहे। पानी अधिक ठडा रहे तो लाभदायक ही होता है, पर वर्दाश्तके भीतर ही होना चाहिए। गर्म देशोमें यूरोप-जैसा ठडा पानी नही मिल सकता, फिर भी जितना ठडा मिले उसीसे काम चलाया जाय।

मेहनस्नानके लिए अगर ऊपर लिखे प्रकारका टव न मिले तो दूसरे प्रकारके टवसे भी काम चल जाता है। वह इतना वडा होना चाहिए कि मजेमें पाटेपर वैठा जा सके और वीस-पचीस सेर पानी अट सके। कम पानी लेनेपर वह तुरत ही गर्म हो जाता है जिससे स्नान उतना प्रभावकारी नही हो पाता।

पुरुषोको मेहन (जननेंद्रिय) के अग्रभागका चमडा धोना चाहिए। वाए हाथकी तर्जनी और अगूठेसे चमडेका अगला हिस्सा पकडकर आगे हलके हाथो खीचे रहना चाहिए और रूमालसे पानी उठा-उठाकर धोना चाहिए।

अगर शरीरमें भीतर कही प्रदाह या विगलन होता हो या जीर्ण रोग तीव्रमें परिवर्तित हो रहा हो तो एक-दो वार स्नान करनेके वाद ही प्रदाह घर्पणके स्थानपर या उसके आस-पास पहुंच जाता है। यह कोई वुरा लक्षण नही है। वहा उत्ताप मालूम होनेपर कुछ चिंता न कर स्नान जारी

---

[1] मेहनस्नानका बीस मिनटमें ही सारा लाभ मिल जाता है। इससे अधिक समय लगानेकी शायद ही कभी जरूरत होती हो—संपादक

रखना चाहिए। यदि पानी पाटेके दो-तीन अगुल ऊपरतक रखा जाय जिसमें नितबका कुछ हिस्सा पानीमे रहे तो प्रभाव और जल्द देख पडता है। इस हालतमे पानीका तापमान ५०° से ६६° (फारेनहाइट) तक होना चाहिए और सब क्रियाए ज्यो-की-त्यो होती है।

बहुतोंको यह बात विचित्र-सी मालूम होगी कि स्नानके लिए एक विशेष स्थान क्यों चुना गया है। बात यह है कि इस स्नानके लिए दूसरा कोई भाग इतना उपयुक्त होता ही नही। शरीरकी बहुत-सी प्रमुख नाडियोका, जो मुख्यत सुषुम्ना और इडावात नाडीकी शाखाए है, वही अत होता है। इन दोनोका सबध मेरुदड और मस्तिष्कसे होनेके कारण मेहनके अग्रभागद्वारा सारे नाडी-सस्थानको प्रभावित किया जा सकता है। शरीररूपी वृक्षका मूल यही है। इसे ठडे जलसे धोनेपर भीतरके विकारकी गर्मी तो समाप्त हो ही जाती है, नाडिया भी सशक्त होती है। इस प्रकार इसके द्वारा सारे शरीरकी जीव-शक्ति उद्‍बुद्ध हो जाती है और शरीर अपना कार्य समुचित रूपमे करने योग्य हो जाता है। अपवाद वही होता है जहा नश्तर आदिके कारण नाडियोका सबध विच्छिन्न हो गया होता है।

यह बात विशेष रूपसे ध्यान देनेकी है कि यह मेहन-स्नान केवल उन लोगोके लिए है जो अस्वस्थ है। डाक्टरोकी चिकित्सामे होनेवाली परेशानियोपर ध्यान देते हुए इस निश्चित रूपसे नीरोग करनेवाले, सरल मेहन-स्नानको लोग अवश्य तरजीह देंगे। स्वस्थ व्यक्तियोके लिए इसका कोई उपयोग नही।

मेहनस्नानका रहस्य समझनेके लिए प्रकृतिमे चलनेवाले समीकरणकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। यह भौतिक पदार्थोंतक ही सीमित नही है, बाह्य परिस्थितिके अनुसार मानव-शरीरके तापमानमें भी अतर होता रहता है। विद्युत्-प्रवाहकी तरह भीतरकी गर्मी बाहर और बाहरकी भीतर पहुचती रहती है। इसके कारण तनाव भी आया करता है। ज्वरकी ही हालत ले लीजिए। इसका जोर बढनेपर मनुष्य-

की परेशानी बढ़नेके साथ ही रोगके लक्षण भी गभीर होते है। जि
प्रकार तूफान ऊमस और परेशानीका कारण होता है उसी तरह शरी
अदर विजानीय द्रव्यका लदाव भी होता है। इसलिए समीकरण
प्रयत्न सर्वथा उपयुक्त और स्वाभाविक है। ऊचे तापमानका
तापमानके साथ समीकरण होनेके बाद जो फाजिल पड़े उसे कम क
आवश्यक होता है। इसी उद्देश्यसे ठडे पानीसे मेहनस्नान
सिद्धांत रखा गया है। अगर इसके द्वारा अभीष्ट फलकी प्रा
न हो तो समझना चाहिए कि शरीरमें अब जीव-शक्ति नही
गई है।

अगर मशीनमें जग लगनेकी तरह शरीरमें विजातीय द्रव्य भर ज
तो इसके फलस्वरूप पाचन-क्रिया मद पड़ जाती है और आहारसे शरीर
पोषकतत्वकी प्राप्ति नही होती जिससे स्वास्थ्य दिनोदिन गिरता ज
है और कार्य करनेके योग्य शरीरको बनाए रखनेके लिए अधिक अ
उत्तेजक आहारकी जरूरत महसूस होती है, पर इसका परिणाम उल
ही हुआ करता है—पाचन-शक्ति और भी क्षीण होती जाती है।

अगर शरीरकी जीवशक्ति बढाना अभीष्ट है तो पाचन-श
बढानेका उपाय करना आवश्यक है। मेरी जानकारीमें सर्वोत्तम उप
प्राकृतिक आहारके साथ उपर्युक्त ठंड लानेवाले स्नान ही है। अ
शरीरकी स्थिति सभलने योग्य है तो बिलकुल खराब हुआ पाचन भी
उपायसे अन्य उपचारोकी अपेक्षा कम समयमें ही सुधर जाता है।

ये स्नान विजातीय द्रव्यसे उत्पन्न ज्वरके तापको कम कर देते है जिस
रोगकी प्रगति रुक जाती है। जिस प्रकार वाष्पको उसके पूर्वरूप जल
परिवर्तित करनेके लिए ठडसे स्पर्श कराना पडता है उसी प्रकार विजाती
द्रव्यसे उत्पन्न होनेवाली गर्मीको, जिससे रोग आरभ होता है, कम करने
लिए विपरीत परिस्थिति उत्पन्न करना—ठंडद्वारा उसे शात कर
आवश्यक होता है। ये स्नान इसी उद्देश्यकी पूर्ति करते है। जैसे मशी
एक ही स्थलसे चालित और आवश्यकतानुसार द्रुततर तथा मदतर

जा सकती है वैसे ही मनुष्यकी शक्ति भी एक ही स्थलसे संचालित होती है। ठीक वही स्थल मेहन-स्नानके लिए चुना गया है।

इस उपचारसे सारे शरीरकी शक्ति बढ जाती है और यदि नाडियों-के सबंधमें कोई गडबड़ी नही हुई है तो किसी एक अगके दूसरे अंगकी अपेक्षा अधिक उत्तेजित होनेकी सभावना नही रहती। बहुतेरे इस शक्ति-वृद्धिका ठीक-ठीक अनुमान नही कर पाते। तबाकू पीनेवाले इन स्नानोके बाद उसे छोड़ देते है और साधारणतः यह खयाल होता है कि उनकी पाचन-शक्ति कम हो गई है; पर बात ठीक उलटी होती है। शक्ति घट जानेके कारण आमाशय पहले निकोटीनका प्रतिरोध नही करता था, अब वह इस कार्यके लिए काफी सशक्त हो जाता है। शरीर-के अवयवोंको मल बाहर निकालनेकी पूरी शक्ति प्राप्त हो जाती है और विजातीय द्रव्य मलमार्गोसे स्वाभाविक रूपमें बाहर निकल जाता है।

मेहनस्नानके अलावा उदरपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगानेसे भी बाहरी गर्मी शात हो जाती है और विजातीय द्रव्य भी छिन्न-भिन्न हो जाता है। चोट और घावमें भी यह पट्टी बहुत लाभदायक होती है।

किसीको यह न मान लेना चाहिए कि प्रत्येक रोगी इन उपचारोसे नीरोग हो ही जायगा। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इन उप-चारोसे सभी रोग दूर किए जा सकते है, पर सभी रोगी नीरोग नही किए जा सकते। शरीरकी जीवशक्ति कम पड जानेके कारण जिनकी पाचनशक्ति बिलकुल जवाब दे चुकी है उनको इन उपचारोसे अन्य उपचारोकी अपेक्षा अधिक लाभ होगा, पर वे पूर्णत. नीरोग नही हो सकेंगे।

रोगका रूप गंभीर होनेकी हालतमे इन पक्तियोके आधारपर चिकित्साकार्यमें प्रवृत्त हो जाना वडी भूल होगी। अवस्था देखकर ही स्नान आदिके सबधमें कुछ निश्चय किया जा सकता है इसलिए इस विषयके विशेषज्ञकी सलाहसे ही कुछ करना ठीक होता है।

हम क्या खायें-पीयें ?

गलत खानपान और उचित रूपमें पाचन न होनेके कारण ही शरीरमें विजातीय द्रव्य बनता और रोगोको जन्म देता है। इसलिए यदि हमें रोगोसे छुटकारा पाना हो तो हम क्या खायें, क्या पीयें—इस सवालपर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

मनुष्यका प्रधान भोजन शुद्ध वायु है। यदि गदी गैससे भरी हवामें मनुष्यको रख दिया जाय तो वह ज्यादा देर नही जी सकता; लेकिन गलत भोजनका प्रभाव 'धीरे-धीरे पडता है और उसका बुरा नतीजा देरसे सामने आता है।

पाचनके सबधमें लोग बडे भ्रममें रहते है। देखा जाता है कि एक आदमी थोडा खाकर भी मोटा होता जाता है और दूसरा खूब खाकर भी दुबला बना रहता है। दोनो अपने पाचनको ठीक समझते है, पर वास्तवमें पहलेका भोजन शरीरमें कब्जकी तरह रुकता है और दूसरेका भोजन शरीरका पोषण किए बिना ही बाहर निकल जाता है। इससे यह समझमें आ सकता है कि यक्ष्माके रोगीको खूब पुष्टिकर भोजन भी क्यो कोई लाभ नही करता एव नाडी-दौर्बल्यसे पीडित मोटे व्यक्तिको खानेकी इच्छा क्यो नही होती।

जो भोजन जितना जल्द पचता है वह उतना ही हमारी जीवशक्तिको बढाता है। भोजन दुष्पाच्य होनेपर पाचन-प्रणालीको अधिक समयतक काम करना पडता है। सब जानते है कि मास, मछली, अडे, शराब, कोको, काफी, चाय आदि दुष्पाच्य खान-पानकी गिनतीमें है। कभी ऐसा भोजन करना ही पड़े और हम चाहते हों कि हमारी पाचन-शक्ति न बिगड़े तो हमें उसके पचनेतक कोई दूसरी चीज नही खानी चाहिए। दो भोजनोके बीचके आवश्यक उपवासका महत्त्व हम नही समझते।

कुदरत अक्सर हमें उपवासकी प्रेरणा देती है, पर हम उसकी बात नही सुनते। प्रकृतिके भरोसे रहनेवाला हर प्राणी उपवास करता रहता है। भलीभाति खा लेनेके बाद साप हफ्तो नही खाते। हिरन और बारहसिंघे भी कई बार विशेषकर जाडोमे महीनों बहुत थोडा खाकर बसर करते हैं। मनुष्य जाडेमे ठडके डरसे बहुत अधिक खाता है, लेकिन जाड़ेमे आवश्यक गर्मी न मिलनेके कारण भोजन कठिनाईसे पचता है, अत. गर्मीमें जितना भोजन आसानीसे पचता है, जाडेमें उतना कठिनाईसे हजम होता है। जाडेमें बनैले पशु घरेलू पशुओकी अपेक्षा कम खुराक पाते हैं, तब भी वे तदुरुस्त रहते हैं और पालतू पशु उन दिनो ठडसे परेशान रहते हैं। इसका कारण उनका अधिक भोजन ही है।

बाहर शुद्ध वायुमे बैठकर खानेपर भोजन जल्द पचता है; क्योंकि उसमे शुद्ध हवा मिलती रहती है जो स्वय मनुष्यकी बडी खुराक है।

अधिक आसानीसे पचनेवाला भोजन अधिक पोषण देता है। साथ ही ऐसा भोजन कभी आवश्यकतासे अधिक खाया भी नही जा सकता। जो खाद्य अपनी स्वाभाविक दशामें स्वादिष्ट लगते और हमें अपनी ओर आकृष्ट करते है वे सुपाच्य होते है और उन्हीसे हमें भरपूर जीवशक्ति मिलती है।

खाद्य पदार्थोको पकाने, भूनने, तलने या उनमे नमक, मसाला या खट्टा-मिट्ठा डालकर उनकी शक्ल और स्वाद बदल देनेसे उनकी सुपाच्यता तो जाती ही रहती है, उनकी जीव-शक्ति बढानेकी ताकत भी नष्ट हो जाती है। पकाए खाद्योमें वही आसानीसे पचते हैं जो सादगीसे पकाए जाते हैं और नमक-मसाले कम-से-कम डाले जाते हैं।

ठोस खाद्य, जिन्हे चबाकर खाया जा सकता है, रसदार बनाकर खानेसे दुष्पाच्य हो जाते हैं। तरल चीजोका हमेशा प्रयोग करते रहनेसे पेट बडा हो जाता है और पाचनमे गडबडी पैदा होती है।

देखते ही घृणा उत्पन्न करनेवाले मास आदि चाहे जितने स्वादिष्ट क्यो न लगे, स्वास्थ्यविनाशक होते हैं। बैल-गायको देखते ही क्या किसी-

की उन्हे काट खानेकी इच्छा होती है ? न बकरे या भेड़का कच्चा मास कोई खा सकता है। हमारी घ्राणशक्ति, रसनेंद्रिय एव नैसर्गिक बुद्धिको जो खाद्य अनुकूल नही पडते उन्हें कितना ही पकाया-बनाया जाय, वे कभी स्वास्थ्यप्रद नही हो सकते।

जो फल-तरकारियां ज्यादा पकी नही होती या विकासकी पूर्णता-तक नही पहुची होती वे आसानीसे पचती है और ज्यादा ताकत देती है, पर लोगोकी यह गलत धारणा है कि कच्ची चीजें अस्वास्थ्यकर होती है; क्योकि उनके उपयोगसे दस्त आने लगते है, आव पड जाता है। हमेशा मांस खानेवाला पहली बार जब कच्चा सेब या कोई कच्चा फल खाता है तो कभी-कभी उसका पेट चलने लगता है। शीघ्र पचनेवाले फलके लिए पैदा हुए पाचक रसकी वजहसे धीरे-धीरे पचनेवाले मास आदिमें सड़न पैदा हो जाती है, जिसकी वजहसे दस्त शुरू हो जाते है। इस उभार-के फलस्वरूप शरीरसे बहुत-सा विजातीय द्रव्य शीघ्रतासे खारिज हो जाता है। मेरा अनुभव है कि इससे बहुत लाभ होता है।

पाठकोमेंसे अनेकने देखा होगा कि अपने मालिककी कृपासे बहुत मोटे हुए पालतू कुत्ते कभी-कभी घास खाते है। मासभक्षी कुत्तेको घास खानेकी जरूरत ? उसकी नैसर्गिक बुद्धि उसे बताती है कि गरिष्ठ भोजनके कारण थकी हुई पाचन-प्रणालीके लिए सुपाच्य घास बहुत लाभकर है।

पाचनकी विकृतिवाले रोगियोंके लिए कच्चे (गद्दर) फल अधिक लाभदायक होते है। पाचनप्रणाली सुधरनेपर ही पके फल खाने चाहिए। इसी तरह रोटीकी अपेक्षा कच्चा अन्न जल्द पचता है; क्योकि उसे खूब चबाना पडता है। पकाकर बनाई हुई चीजोमें चोकरदार आटेकी रोटी अधिक सुपाच्य है। चोकर निकाल दिए जानेके बाद गेहूके भीतरका बचा हुआ भाग बड़ी कठिनाईसे पचता है। चोकरके अभावमे वह कब्ज भी करता है।

घोड़ोंको भूसीसहित जई आसानीसे पचती है, भूसी निकाल देनेपर

वह मुश्किलसे हजम होती है। जईके बदले गेहूं दीजिए तो उसमे जईकी अपेक्षा भूसी कम होनेके कारण वह और भी कठिनाईसे पचेगा। घोडों-को बिना भूसीकी जई दी गई तो वे मोटे तो अवश्य हुए, पर उन्हे कब्ज रहने लगा और वे निकम्मे हो गए। इससे यह सिद्ध होता है कि अच्छे पाचनके लिए अन्नके साथ उसकी भूसीका रहना आवश्यक है। अधिक भूसीसे पाचनमे आसानी होती है। कुदरत जिस रूपमें हमें जो खाद्य देती है उसी दशामे वह ठीक पाचनके योग्य होता है।

कुछ लोग कहते है कि हमें दाल बादी करती है। तरल रूपमे खाने-से ही दाल बादी करती है। अगर छिलकेसहित दाल केवल इतने पानी-में उबाली जाय कि वह सिर्फ फूल जाय और पानी न बचे तो उसे खाने-के समय खूब चबाना पडेगा और साधारणतः जितनी दाल लोग खाते हैं मुश्किलसे उसकी एक तिहाई खा सकेंगे। यह मात्रा और इस प्रकार बनाई हुई दाल बादी नही करेगी और अधिक शक्ति भी देगी।

पेटमे पहुच जानेपर भोजनमे खमीर उठता है, फिर वह पचता है; पर खाद्योको अप्राकृतिक रूपसे पकाने या उनमे चीनी, नमक मिला देनेसे खमीर उठनेमे देर लगती है और उन्हें देरतक आतोमे पड़े रहना पडता है जिससे उनमें जोरोंसे सड़न पैदा होती है। इससे आतोकी गर्मी बढ जाती है, मल सूख जाता है और उसका रग काला-सा हो जाता है।

भोजनका पाचन मुहमे ही आरभ हो जाता है। आमाशयमे पहु-चनेपर उसमें आमाशयिक रस मिलते हैं और उसमें एक प्रकारका खमीर पैदा होता है। छोटी आतमें पहुचनेपर उसमे क्लोम एव दूसरे पाचक रस मिलकर खमीरको और बढा देते है। पचनेके बाद बचे अशको आत, गुर्दे और रोमकूप शरीरसे बाहर कर देते है।

पशु जो कुछ खाता है वह शीघ्र पच जाता है और उसके मलमें भोजन-का कोई अनपचा अश नही मिलता; हड्डी खानेवाले पशुओंके मलमें हड्डीका कोई अश नही दिखाई देता, पर मनुष्यका भोजन कई बार

उसकी आतोमे हफ्ते-हफ्ते भर पडा सडता है। परिणामस्वरूप अपान-वायु एव अधोवायु खुलने लगती है और पसीनेमें दुर्गंध आने लगती है।

यदि मलका रग हल्का भूरा हो, वह मुलायम पर बधा हो एवं उसपर मामूली चिकनाई हो तो समझना चाहिए कि पाचन बिलकुल ठीक है। मलकी शक्ल गोल होनी चाहिए और उसके निकलनेके बाद आबदस्त लेनेकी जरूरत नही महसूस होनी चाहिए। पशुका मल ऐसा ही होता है और ऐसा ही मल स्वस्थ मनुष्यका होना चाहिए। मलमें किसी प्रकारकी दुर्गंध नहीं होनी चाहिए। यदि दुर्गंध हो तो समझना चाहिए कि पाचन स्वाभाविक नही है। जिनके मलमें दुर्गंध होती है उन्हें कब्ज रहने लगता है, मल आतोमें चिपक जाता है और आगे नही बढ़ पाता। उसकी शक्ल भी बदल जाती है, वायुका प्रकोप बढ जाता है और यह वायु सारे शरीरमे फैलने लगती है। त्वचा तथा हाथ-पैरोपर भी उसका असर हो जाता है। त्वचाका कार्य शिथिल हुआ तो वह त्वचाके निकट अधिकाधिक इकट्ठी हो जाती है और तब त्वचाका काम और भी बद हो जाता है और उसकी गर्मी कम हो जाती है। इस दशामें त्वचाके निकटकी रक्तवाहिनी नलिकाए विजातीय द्रव्यो-से रुध जाती है, वे रक्तको त्वचाके निकट नही पहुंचा पाती जिससे त्वचा-का रंग फीका, पीला मुर्झाया, मुर्देका-सा हो जाता है। त्वचाके पास ठड और भीतर मलकी गर्मी होती है अत॰ त्वचाके निकट विजातीय द्रव्य जमकर कडा हो जाता है जिससे शरीरकी स्वाभाविक आकृतिमें अतर पड जाता है। यही शरीर विजातीय द्रव्योसे लदा शरीर कहलाता है। उस मलके सिरकी ओर बढनेपर सिरदर्द तथा नाक, कान, आख और मस्तिष्कके अनेक रोग पैदा होते है। जो लोग बाहरी उपचारकी मददसे स्वस्थ होनेकी आशा करते है उन्हे नैराश्यके सिवा और कुछ हाथ नही लग सकता।

कुछ लोग यह कहते सुने जाते है कि मेरा पाचन बहुत बढिया है। मै सेरो यह-वह वस्तु खा जाता हू, शराब कई गिलास चढा जाता हू, पर

मुझे कभी अपचकी शिकायत नही हुई। इसका मतलब यह है कि ऐसे लोगोमें कुदरतकी आवाज बेजान हो गई है। बढिया पाचनवालोको जरा-सा ज्यादा खा लेनेपर डकारे आने लगती हैं, गला जलने लगता है, सुस्ती छा जाती है, पर पुराने अपचवाले खाये ही जाते हैं। उनके शरीरसे भोजन अनपचा ही निकल जाता है, उन्हे भोजन कोई लाभ नही पहुचाता।

भिन्न-भिन्न खाद्योसे हमारी पाचन एव अभिशोषणकी शक्तिके अनुसार ही शक्ति मिलती है। मांस, शराव, अडे, मिठाई और चाटसे चोकरदार आटेकी रोटी, ताजे फल, कच्ची तरकारियों एव बिना घी, नमक, मसालोकी उबली तरकारियोमे पाचनके योग्य अश निश्चित रूपसे अधिक रहता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे मास, शराव आदिमे भी वे तत्त्व मिलते है जिनसे मनुष्यका शरीर बना है, पर इसका यह अर्थ कदापि नही है कि उनके तत्त्व हमारे शरीरके ग्रहण करने योग्य है। यो तो कई प्रकारके विषोमें भी हमारे शरीरमें मौजूद कुछ-न-कुछ तत्त्व पाए जाते है, पर वे विष हमारे खाने योग्य तो नही होते। इसी तरह उपर्युक्त पदार्थ भी एक प्रकारसे विष ही समझे जाने चाहिए।

हमारा शरीर अन्न एव फल-तरकारीसे सारी आवश्यक शक्ति प्राप्त कर सकता है। गेहूकी रोटीसे उसे वे चीजे मिल सकती है जिन्हे विज्ञान शरीरके लिए आवश्यक मानता है, पर डाक्टर तो कुछ और ही खानेको बतलाते है और लोग उन्हीका अनुसरण करते है। परि-णामस्वरूप रोगो और रोगियोकी सख्या बढती जाती है।

कुदरतके नियम तोडनेकी सजा कमजोरी, रोग और कष्टके रूपमे मिले बिना नही रहती। यह पत्र पढिए और प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक खाद्यका असर समझिए। "होनूलूके लोग कुछ जडे, मौसमी फल और केला खाते थे और पेयके रूपमे केवल जल पीते रहे। फलस्वरूप उनका बदन कद्दावर होता था और वह स्वास्थ्य एव शक्तिसे पूर्ण रहता था। अग्रेजोने आकर यहाके निवासियोको मास खाना और शराव पीना

सिखला दिया। अब हालत यह है कि यहां रोगोका राज्य है। प्राय' लोगोको चर्म-रोग होते रहते हैं। विशेषत. सूजाक, गर्मी और कोढके रोगियोकी सख्या बढ रही है।" होनूलूलू उष्ण कटिबंधमें होनेके कारण वहाके लोगोपर अप्राकृतिक खाद्यका असर शीघ्र प्रकट हो गया। ठडी जगहमे यह असर धीरे-धीरे दिखाई देता है।

मनुष्यका प्राकृतिक आहार

केवल दो अगो—फुप्फुस और आमाशयके सहारे हम लोग अपना शरीर कायम रखते है । चमडेके जरिये किसी द्रव्यको अदर पहुचाना प्रकृतिके विरुद्ध है और इसलिए उसका असर भी हमेशा बुरा ही हुआ करता है। इन दोनो अगोके लिए एक-एक प्रहरी है—फुप्फुसके लिए नाक और आमाशयके लिए जीभ; पर दुर्भाग्यकी बात यह है कि इन इद्रियोमे एक भी ऐसी नही है जो भ्रष्टतासे अपनेको पूर्ण रूपसे दूर रख सके। पहाडकी स्वच्छ हवा फुप्फुसका सर्वोत्तम आहार है और इस हवामे सास लेनेपर नाककी पूरी-पूरी सतुष्टि हो जाती है। इस प्रकारकी स्वच्छ हवामें रहनेवालेके लिए धुएसे भरे कमरेमें कुछ ही घटे रहना असभव-सा हो जायगा—उसकी नाक हर एक सासपर उसे सावधान करती रहेगी, पर अगर उसे ऐसे स्थानमे प्रायः रहना पडे तो चेतावनी-का स्वर मद पडता जायगा और आगे चलकर एक दिन वह बिलकुल वद हो जायगा। इस विकृत हवामें सास लेते-लेते जब नाक अभ्यस्त हो जायगी तब वही उसे अच्छी मालूम होने लगेगी। हम लोग हर मिनट १६से२० बारतक सास लिया करते है, इससे विकार बराबर अदर पहुचता रहता है और उसका बुरा असर भी जल्द ही प्रकट होने लगता है। इस प्रकार नाकके हमारा साथ छोड देनेपर हमारी समझ हमारे मार्ग-प्रदर्शनका कार्य-भार ग्रहण कर लेती है।

रसनाका हाल तो और बुरा है। यह तो हमारी शैशवावस्थामें ही भ्रष्टताका शिकार हो जाती है, इसलिए इसका कभी विश्वास नही किया जा सकता। हम जैसी आदत बना लेते है उसीका यह समर्थन करने लगती है। मुख्य बात यह है कि शरीरको उपयुक्त पोषण मिलना चाहिए। अप्राकृतिक आहारमें कुछ पदार्थ ऐसे होते है जो शरीरके लिए

विजातीय होते है और शरीरमे पहुचकर रोग उत्पन्न करते है। तव प्रश्न यह होता है कि हमारा प्राकृतिक आहार क्या है ?

जीभका तो भरोसा ही नही किया जा सकता, इसलिए हमें परीक्षण-से प्राप्त निष्कर्षके ही आधारपर इसका निश्चय करना पडेगा। यह प्रश्न वैज्ञानिक है इसलिए इसे हल भी वैज्ञानिक विधिसे ही करना पड़ेगा—विशेपसे सामान्यकी ओर जाना पडेगा। परीक्षणका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि पूरे क्षेत्रका परिचय प्राप्त करना किसी व्यक्तिके लिए सभव नही है, इसलिए हम सारे जीवधारियोपर विचार न कर केवल उन्हीके सवधमें विचार करेगे जो इस विपयके लिहाजसे मनुप्यके निकट पडते है।

जीवधारियोको अपना अस्तित्व वनाए रखनेके लिए पोपण अनि-वार्य रूपमें आवश्यक होता है। यह पोषण भी प्रत्येक जातिका भिन्न-भिन्न हुआ करता है। समुद्रतटकी नमकवाली भूमिपर उगनेवाला पौधा देशके भीतरी भागमें नही पनप सकता और रेतीली जमीनका पौधा उद्यानमे लगानेपर मुरझा जाता है। जीवधारियोमे भी यही वात और इतने स्पष्ट रूपमें देखी जाती है कि उनके आहारके आधारपर उनका वर्गीकरण सरलतासे किया जा सकता है।

साधारणत. लोग मासाहारी और शाकाहारी—इन्ही दो भेदोंसे परिचित है, पर यह विभाग ऊपरी है। विषयकी छानवीन करनेपर पता चलेगा कि मांसाहारी कीटाहारियोसे भिन्न है। शाकाहारियो-के भी दो उपभेद होते है—तृणाहारी और फलाहारी। कुछ जीवोका आहार मास और शाकादि—दोनो प्रकारके पदार्थ है। इसके साथ ही हमे उन अगोंपर भी ध्यान देना चाहिए जो पोपण-ग्रहणके कार्यमें सहायक होते हैं। आहारका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ये हमें ऐसा अच्छा सूत्र प्रदान करते है कि हम अस्थिपजर देखकर आसानीसे कह सकते हैं कि यह प्राणी किस श्रेणीका है। हमें दातो, पाचन-प्रणाली और आहार-की ओर प्रवृत्त करनेवाली ज्ञानेद्रियोपर भी विचार करना पडेगा और

यह भी देखना होगा कि कोई विशेष जीव अपने बच्चेका पालन कैसे करता है। इस प्रकार परीक्षणके लिए हमारे सामने चार विषय प्रस्तुत होते है ।

दात तीन श्रेणियोमे विभक्त किए जाते है—काटनेवाले, पकडनेवाले और चबाने या पीसनेवाले। मासाहारी जीवोके काटनेवाले दातो (आगेके दात) का अच्छा विकास नही होता; क्योकि वे उनका विशेष उपयोग नही कर पाते। पकडनेवाले दात काफी लबे होते है, अन्य दातोसे वे बहुत आगे निकले होते है, दूसरे जबडेमें उनके ठीक बैठ जानेके लिए खाली जगह रहती है और वे नुकीले, चिकने और कुछ टेढे होते है। उनसे चबानेका काम नही लिया जा सकता, पर शिकार पकडनेके लिए वे बडे उपयोगी होते है। पीछेके दात मास चबानेके काममे आते है। इनकी सतह छोटी-छोटी नोकोसे भरी होती है जो ऊपर-नीचे एक दूसरेसे न मिलकर अगल-बगल ठीक-ठीक बैठ जाती है जिससे चबाते वक्त मासके रेशे अलग-अलग हो जाते है। मासाहारी जीवोका जबडा अगल-बगल नही हटता जिससे वे अपना आहार पीस नही सकते, केवल चबा सकते है। दात भी पीसने योग्य नही बने होते। कुत्ता रोटीके टुकडोको चबाकर नही खा सकता, उन्हे यो ही निगल जाता है।

तृणाहारी जीवोके काटनेवाले दातोका विकास इस रूपमें हुआ होता है कि वे घास-पात मजेमे काट सकें। इनके पकडनेवाले दात अधिक नही बढे होते और पीसनेवाले दात तृण और घास पीसनेके लिए काफी चौडे होते है।

मनुष्य—फलाहारी प्राणी

फलाहारी जीवोकी जातिया अधिक नही है। वनमानुस ही हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण जाति है। इन जीवोके दातोका विकास एक-सा होता है और सबकी ऊचाई भी लगभग समान होती है, सिर्फ कुक्कुरदंत औरोसे जरा आगे निकले होते है, पर वे मासाहारी जीवोके दातकी

तरह काममें नही लाए जा सकते। वे शुडाकार होते है, पर नोक भोथरी होती है और वे चिकने भी नही होते जिससे शिकार पकडनेके काम नही आ सकते। वे वडे मजबूत होते है और वनमानुस तो उनसे आश्चर्यजनक काम कर डालते है। इन प्राणियोंके पीसनेवाले दातो-पर रुचक (इनामेल) का आवरण होता है और नीचेका जवड़ा चारों ओर घूम सकनेके कारण वे चक्कीकी नाई काम कर सकते है। पीसनेवाले दातोमें किसीके नोकदार न होनेसे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि उनमें मास चवानेके लिए एक भी दात नही है। यह वात विशेष रूपसे ध्यान देनेकी है; क्योकि उभयाहारी (शाक-मासाहारी) प्राणीको (केवल शूकर ऐसा प्राणी है) नुकीले और चौडे अर्थात् चवाने और पीसनेवाले दोनो प्रकारके दात होते है। शूकरको कुक्कुरदत होते हैं और आगेके काटनेवाले दात फलाहारी प्राणियोंके-से होते है।

अव देखना यह है कि मनुष्यके दात इन श्रेणियोमेंसे किसके सदृश है। यह आसानीसे देखा जा सकता है कि वे फलाहारी जीवोके-से होते है, कुक्कुरदत तो उतने वडे भी नही होते जितने फलाहारियोके होते है, वे आगेकी ओर भी विशेष रूपसे नही वढे होते। कहा जाता है कि वडे न होते हुए भी कुक्कुरदत तो है ही, इसलिए मांस भी मनुष्यका आहार हो सकता है, पर यह दलील तो तव मानी जा सकती जव मनुष्यके दात भी वही कार्य कर सकते जो मांसाहारी जीवोके करते हैं और साथ ही शूकरकी तरह पीछेकी ओर मास चवानेवाले दात होते। प्राय. यह दलील भी पेश की जाती है कि दातोके विचारसे मनुष्य न तो मासाहारी है और न तृणाहारी, वह दोनोके वीचमें है इसलिए दोनो ही है। यह स्थापना भी तर्कके आधारपर कभी टिक नही सकती।

अव परीक्षणके दूसरे विषय पाचन-प्रणालीकी ओर ध्यान दे। आखेटपर जीवन-यापन करनेवाले जानवरोका आमाशय छोटा, करीव-करीव गोल होता है और आतें शरीर—मुहसे पूछकी जडतक—की लवाई-से तिगुनीसे पांचगुनीतक होती है। तृणाहारी, विशेषकर पागुर करने-

वाले जानवरोका आमाशय वडा और कई भागोमें बंटा होता है। आतो-की लवाई शरीरकी लबाईसे बीससे अट्ठाईस गुनीतक होती है। फला-हारी जीवका आमाशय मासाहारीके आमाशयसे कुछ चौडा होता है और उसका कुछ हिस्सा पक्वाशयमें मिला रहता है जो दूसरा आमाशय कहा जा सकता है। आतोकी लबाई शरीरसे दससे बारह गुनीतक होती है। शरीररचना-संबधी पुस्तकोमे प्राय यह उल्लेख मिलता है कि मनुष्यकी आतें शरीरसे तीनसे पांच गुनीतक लंबी होती हैं, इसलिए वे मासाहारके अधिक उपयुक्त है। यह तो प्रकृतिपर एक गहरा आरोप हुआ। उसने आते तो मासाहारीकी बना दी, पर दात वैसे नही बनाए; पर बात ऐसी नही है। लबाई मस्तकसे तलवेतककी ले ली गई है, लेनी चाहिए थी मुहसे रीढके छोरतककी। मनुष्यकी आतें अट्ठारहसे अट्ठाईस फुटतक लबी होती है और शरीरकी लबाई—सिरसे रीढ़के छोरतक—डेढसे ढाई फुटतक। शरीरकी लबाईसे आतोकी लबाईमें भाग देनेपर भागफल वही दस या ग्यारह आएगा जो फलाहारी जीवोके सबंधमें ऊपर दिया गया है। इस प्रकार भी हम इसी निष्कर्षपर पहुचते है कि मनुष्य फलाहारी प्राणी है। अब परीक्षणके तीसरे विषय आहारका ज्ञान कराने और उसकी ओर प्रवृत्त करनेवाली इद्रियोकी ओर ध्यान दीजिए। घ्राण और आस्वादके ही द्वारा जीवधारी आहारकी ओर आकृष्ट होकर खानेमे प्रवृत्त होते है। शिकारकी गंध मिलनेपर आखेट करनेवाले जीवकी आंखे चमकने लगती है, उत्साहके साथ वह उसके मार्गका अनुसरण करता है, उसपर उछलकर हमला करता है और उसका गर्म खून बडे चावसे पीता है, इन सभी क्रियाओमें उसे बडा आनद मिलता है। इसके विपरीत, तृणाहारी पशु दूसरेके पाससे चुपचाप निकल जायगा। विशेष अवस्थामे वह हमला भी कर सकता है, पर उसकी घ्राणेद्रिय उसे धोखा देकर मास नही खिला सकती। अगर उसके प्राकृतिक खाद्यपर खून छिडक दिया जाय तो वह उसका स्पर्शतक नही करेगा। उसकी दृष्टि और घ्राणेद्रिय उसको घास-पातकी ही ओर ले जाती है और उसीसे

उसके स्वादकी सतुष्टि भी होती है । यही बात फलाहारी जीवके सबध-मे भी देख पडती है—उसकी इद्रिया वृक्षोमे लगे और खेतमें उत्पन्न फलोंकी ही ओर उसे ले जाती है।

मनुष्यकी दृष्टि और घ्राणेंद्रिय उसे किसी बैलको मारनेके लिए प्रेरित नही करती। जिस बच्चेने पशुवधके विषयमें कुछ नही सुना है वह, अगर मास खाता हो तो भी, किसी मोटे-ताजे बकरे या बैलको देख-कर उसका मास खानेके लिए कभी लालायित नही होगा। पकाकर मसालोंके जरिये जायकेदार बनाए बिना हम उसे खानेका खयाल भी कर ही नही सकते। प्रकृतित ऐसा विचार हमारे मनमे आएगा ही नहीं।

वधका विचार ही घृणोत्पादक है। कच्चा मास न तो आखे देखना पसद करती है और न नाक सूघना। वधस्थान नगरसे अधिकाधिक दूर क्यो हटाए जा रहे है ? मास बिना ढके ले जानेका क्यो निषेध है ? आखो और नाकको इतना बुरा मालूम होनेवाला पदार्थ क्या प्राकृतिक खाद्य हो सकता है ? अगर ये इद्रिया बिलकुल शून्य न हो गई हो तो आकर्षण उत्पन्न करनेके लिए तरह-तरहके मसाले मिलाए जाते है। इसके विपरीत फलोकी सुगध कितनी आकर्षक और आनददायक होती है ! देखनेपर मुहसे सचमुच लार टपक जाती है। अन्नोमें भी गध होती है, हाला कि पकनेके कारण वह बहुत कुछ कम पड गई होती है। कच्चा रहनेपर भी उसका स्वाद आनददायक होता है। अन्नकी फसल काटने और पकानेमें मनमे किसी तरहका विकर्षण नहीं होता और ग्रामीणोको जो सुखी और सतुष्ट कहा जाता है वह भी अकारण नही है। इससे भी हम इसी निष्कर्षपर पहुचते है कि मनुष्य फलाहारी प्राणी है।

परीक्षणका चौथा विषय है वंश-रक्षण। जन्म लेनेपर सभी जीवोंको ऐसा आहार मिलना चाहिए जिससे वे जल्द बढ सकें। नवजात शिशुके लिए माताका दूध सर्वोत्तम होता है, पर देखा जाता है कि बहुत-सी माताए इस पवित्र कार्यको करनेमें समर्थ नही होतीं, क्योकि उनका अग यह पोषण

प्रस्तुत करने योग्य होता ही नही। कृत्रिम खाद्य किसी बातमे प्राकृतिक खाद्यके समान न होनेके कारण बच्चे अपने जीवनके आरभमे ही ज्ञानेद्रिय-सबधी सस्कारसे वंचित रह जाते है। तथाकथित उच्च घरानेकी स्त्रियोमें, जिनका मुख्य आहार मास है, यही बात देखी जाती है। वे दूध पिलानेके लिए देहातसे धाय मगाती है जहा बहुत कम मास खाया जाता है; पर देहातसे आनेवाली स्त्री भी उस परिवारमें अधिक मास खानेके कारण बच्चेको दूध पिलाने योग्य नही रह जाती। समुद्रयात्रामे मास अधिक खाया जाता है, पर दूध पिलानेवाली स्त्रियोको अधिक मास न देकर जईकी लपसी दी जाती है जिसमे उसका दूध सूखने न पाए। इससे भी हम इसी परिणामपर पहुचते है कि मनुष्य फलाहारी जीव है।

अगर हमारी यह स्थापना सही है तो यह भी मानना पडेगा कि मनुष्य अपने प्राकृतिक आहारसे बहुत दूर भटक गया है। क्या दूसरे जीव भी अपना प्राकृतिक आहार छोड सकते है? अगर छोडे तो इसका परिणाम क्या होगा?

हम प्राय देखते है कि बिल्लियो और कुत्तोको शाकाहारकी आदत डाली जाती है? क्या शाकाहारीके मास खानेकी बात सुनी जाती है? एक जगह मैंने एक विचित्र बात देखी। एक व्यक्तिने एक हिरन पाला था, जिसकी उस घरके कुत्तेसे दोस्ती हो गई। वह कुत्तेको दिया जानेवाला मासका शोरबा चाटने लग गया। पहले तो वह उससे भडकता था, पर पीछे उसे उसमें रस मिलने लगा और फिर तो वह अपना प्राकृतिक आहार छोड़कर मासतक खाने लगा, पर इस अप्राकृतिक आहारका परिणाम शीघ्र ही प्रकट होने लगा—वह बीमार पडने लगा और एक सालका होनेके पहले ही चल बसा।

पिंजडेमे रखे हुए बनमानुसोंको भी मास खानेकी आदत डाली जा सकती है, पर इससे वे एक-दो सालके अदर ही क्षयग्रस्त होकर मर जाते हैं। कुछ लोग इसका कारण जलवायुका असर मानते है, पर चूकि गर्म देशोके और निवासी यहा मजेमे रहते है, इससे मानना पड़ता है कि इसका

कारण जलवायु न होकर अप्राकृतिक भोजन ही है। हालके प्रयोगोसे भी यही बात सिद्ध हुई है।

इन बातोसे यह भलीभाति प्रमाणित हो जाता है कि जानवर अपने प्राकृतिक आहारका परित्याग कर सकते है। फिर अधिकाश मनुष्य ऐसा करें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही है। तरह-तरहके रोगोके रूपमें इसका परिणाम भी स्पष्टत. देख पड़ता है।

ऐसा शायद ही कोई होगा जिसे चिकित्सककी आवश्यकता न पडी हो। वार्द्धक्यसे भी विरला ही कोई मरता है। ऐसे भी कम ही लोग होगे जिनके शरीरमें विजातीय द्रव्य एकत्र न हो। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ग्राममे रहनेवाले, जो प्राय. शाकाहारी होते है, प्राकृतिक नियमोका भली-भाति पालन न करते हुए भी शहरवालोंसे कही अच्छे होते है। स्वच्छ हवाका भी कुछ प्रभाव होता ही है, पर मुख्यता भोजनकी ही होती है। यह सत्य है कि स्वास्थ्य खराब होनेके और भी कारण होते है, पर पशु-जगत्से तुलना करनेपर खाद्य पदार्थ ही मूल कारण ठहरता है। अस्त-बलमे रखे जानेवाले पशु बड़ी अस्वास्थ्यकर स्थितिमें रहते है। वे बरा-बर मलसे निकली गैससे भरी हवामें सास लेते है और शारीरिक परिश्रम भी नही करते। ऐसी हालतमें यह मानना पडेगा कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नही रह सकता, और वे वस्तुत. पूर्णरूपसे स्वस्थ होते भी नही, फिर भी वे मनुष्योकी अपेक्षा, जो अपनी देख-भाल कर सकनेकी स्थिति-में होते है, कम ही रोगग्रस्त हुआ करते है। ऐसी हालतमें खराबीका कारण आहारके अतिरिक्त और क्या माना जाय ?

मनुष्यके सबधमें दो बाते कही जाती है—एक तो यह कि उच्चतर सघटनके परिणामस्वरूप मनुष्य निम्नस्तरके जीवोकी स्थितिका भागी नही है और दूसरी यह कि अज्ञातकालसे मास खाते आनेके कारण मनुष्यका शरीर, डार्विनके सिद्धातानुसार, मास खाने योग्य अवस्थामें परिणत हो गया है। कुछ लोगोका खयाल है कि प्रौढ लोग बिना खतरेके अपने वर्तमान भोजनका परित्याग नही कर सकते। वास्तविक परिणामका

निश्चय प्रयोगसे ही किया जा सकता है। इधर कई परिवारोंमे बच्चे निरामिष आहारपर रखे गए है और उनकी जो प्रगति देखी गई है वह निरामिष आहारके ही पक्षका समर्थन करती है। इन बच्चोकी शारीरिक और मानसिक—स्वभाव, विचार, प्रवृत्ति आदिकी—उन्नति सर्वथा सतोष-जनक रूपमें हुई है।

इस स्थलपर नैतिकताके सबधमें भी कुछ कहना आवश्यक जान पडता है। युवकोकी अनैतिकता आजकल चर्चाका मुख्य विषय बन गई है। सभी धर्माचार्य, दार्शनिक और आचारशास्त्री इद्रियासक्तिको ही नैतिकताका प्रधान शत्रु मानते है, इसलिए इद्रियदमनके तरह-तरहके कठोर उपाय—दीर्घ उपवास, कठोर शारीरिक नियम आदि—काममें लाए जाते है; पर जिस प्रकार कुशल सेनानायक शत्रुसेनापर उसके व्यूहबद्ध होनेके पूर्व ही आक्रमण कर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार नैतिकताके इस शत्रु—इद्रियासक्ति—को सबल होनेके पहले ही पराभूत किया जा सकता है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सबसे अच्छा साधन यह है कि शैशवावस्था-से ही अनुत्तेजक, प्राकृतिक आहार दिया जाय। प्रयोगसे यह बात सिद्ध हो चुकी है, इसलिये इसके विशेष महत्त्वपूर्ण होनेमें सदेहका कोई कारण नही।

विषयवासनासे मुक्ति और इस मुक्तिसे मिलनेवाली शक्ति हृदयकी शिक्षाका सर्वोत्तम आधार है। प्रत्येक मनोवैज्ञानिकको यह बात ज्ञात है कि मानसिक कार्यों और प्रौढ विवेकके लिए सतोषकी वृत्ति सर्वाधिक अनुकूल होती है और यह वृत्ति निरामिष आहारसे ही विशेष रूपसे प्राप्त हो सकती है। जो लोग प्राकृतिक नियमोके अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे है उनके जीवनसे इस बातकी सत्यता प्रमाणित की जा सकनी है। यह बात भी विशेष रूपसे ध्यान देनेकी है कि बहुतसे व्यक्तियोको भीषण रोगसे बाध्य होकर निरामिषभोजी बनना पड़ा है। औषधका प्रयोग किए बिना नीरोग करनेवाली इस पद्धतिमे अनुत्तेजक आहार ही प्राकृतिक आहार माना गया है और पूर्ण आरोग्यके लिए वही अनिवार्य

रूपमें आवश्यक है। इस प्रकारका आहार रखनेपर आरोग्य-लाभमे समय भी अपेक्षाकृत कम ही लगता है। जो मास-मदिराका त्याग करनेका साहस नही करते उनके नीरोग होनेमें समय अधिक लगता है, क्योंकि इस प्रकारके आहारद्वारा वे नया विजातीय द्रव्य भीतर पहुचाते जाते है जिसे फिर बाहर निकालना पडता है। इस तरह रोग उत्पन्न होनेवाली स्थिति बराबर बनी रहती है। आजकी बहुत-सी बीमारियोका मुख्य कारण उत्तेजक और मासयुक्त आहार ही है।

हमारा भोजन और पेय

तब आप ब्योरेवार जानना चाहेंगे कि हमे क्या खाना और पीना चाहिए। पेयके सबधमें निश्चय करनेके लिए हमे पुन परीक्षणके क्षेत्रमे उतरना पड़ेगा। मनुष्यके सिवा ऐसा कोई जीव नही है जो प्यास बुझाने-के लिए पानीके अलावा और कोई तरल पदार्थ पसद करता हो। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि जानवर हमेशा बहता हुआ जल ढूढते है और धूप खाए हुए तथा ककरीली जमीनपर बहनेवाले जलको चट्टानसे निकले हुए ताजे जलकी अपेक्षा अधिक पसद करते है। जो जीवधारी रसदार फल खाते है उन्हे पानीकी कम ही जरूरत पड़ती है। अगर मनुष्य भी फल-तरकारिया अधिक खाय तो उसे प्यास बहुत कम लगेगी। फिर भी उसे पीनेकी जरूरत पडे ही तो प्राकृतिक पेय जल ही है। लोग प्राय. जलके साथ फलका रस और चीनी मिलाकर आवश्यकतासे अधिक पी जाया करते है। यह लाभदायक न होकर हानिकारक ही हुआ करता है। रोगसे मुक्ति पाने वा स्वास्थ्य-रक्षणके विचारसे हमें प्राकृतिक पेय—जल—से ही हमेशा अपनी प्यास बुझानी चाहिए।

अब प्रश्न होता है कि हम खाएं क्या? प्रकृति फल खानेका आदेश देती है इसलिए वही हमारा सर्वोत्तम आहार है। वे सभी फल, अन्न, कंद-मूल जो हमारी दृष्टि, घ्राण और स्वादके लिए आकर्षक है, हमारा

खाद्य हो सकते है। ये सभी चीजे प्राय. सभी प्रकारके जलवायुमे प्रचुरता-से मिल जाती है। अत्यधिक ठडे प्रदेशमे ये प्राप्य नही है, इसलिए वह मानवनिवासके उपयुक्त नही समझा जाता। जो वहा रहते हैं उनका शारीरिक और मानसिक विकास समुचित रूपमे नही हो पाता।

प्रकृतिने जो चीजे दी है उन्हे उनके प्राकृतिक रूपमे ही ग्रहण करना चाहिए। स्वास्थ्यकी गिरी अवस्था, विशेषकर दातोकी खराबीके कारण यह उतना व्यावहारिक नही हो सकता, पर मिर्च-मसाले, चीनी आदिसे तो परहेज करना ही चाहिए।

आजकल भोजन बहुत गलत तरीकेसे तैयार किया जाता है। उबालनेके लिए जो पानी काममें लाया जाता है वह फेक दिया जाता है और पोषकतत्त्वोसे रहित तरकारिया आदि थालमे परसी जाती है। तरकारियोमे बहुत कम पानी डालना चाहिए और उनका पानी कभी फेंकना नही चाहिए। और चीजोंके सबधमें भी इस बातका खयाल रखना चाहिए कि पोषक तत्त्व नष्ट न हो और जायकेदार बनानेके लिए वे अप्राकृतिक और हानिकारक न बना दी जाय।

रोगियोका आहार स्वस्थ लोगोंके आहारसे बिलकुल भिन्न होता है। जिस प्रकार जख्मी हाथसे काम नही किया जा सकता उसी प्रकार कमजोर आमाशय पाचन-कार्य नही कर सकता। वह स्वय ही यह बतला देता है कि वह क्या पचा सकता है। खट्टी डकार, आमाशयका दर्द, वायु या और प्रकारकी गडबडी इस बातकी सूचक है कि या तो आहार उपयुक्त नही है या उसकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक रही है। अगर ध्यान दे तो रोगी स्वय इस बातका निश्चय कर सकता है कि उसे क्या और कितना अनुकूल होगा। अगर खाना खूब चबा-चबाकर खाया जाय तो चोकरदार आटेकी रोटी बहुत अच्छी होती है। लारका मिश्रण अच्छी तरह हुए बिना वह गलेके नीचे उतर भी नही सकती, जिससे रोगी उसे अधिक मात्रामें खा भी नही सकता। खाद्य पदार्थका चुनाव और

सयम रोगीके लिए वडे महत्त्वकी वातें हैं। सयमसे काम न लेनेपर अच्छे-से-अच्छा पथ्य भी हानिकारक हो जायगा।

जईकी पतली लपसी रोगियोंके लिए वहुत उपयुक्त होती है। इसमें जरा-सा नमक या थोड़ा कच्चा दूध मिला दिया जा सकता है। दूध हमेशा कच्चा और ठंडा पीना चाहिए। पहले स्वाद और गंध देखकर निश्चय कर लेना चाहिए कि दूध पीने योग्य है या नही। ऐसा मत समझिए कि वह उबालनेसे ठीक हो जाएगा। उबाला हुआ दूध पचनेमें कठिन होता है, क्योकि उसका खमीर देरसे वनता है और अस्वास्थ्यकर तत्त्व उवालनेसे दूर भी नही होते, ज्यो-के-त्यों वने रह जाते हैं; पोपकतत्त्व भी उसमें कम ही रहता है और वह शरीरका वल न वढाकर उसे केवल तगडा वनाता है। भोजनके समय ताजे फल खाए जा सकते हैं। हरी तरकारीके साथ चावल या वार्ली भी दी जा सकती है। स्वस्थ व्यक्तियोकी तो कोई वात ही नहीं उनके लिए अनेकानेक खाद्य पदार्थ प्रचुर परिमाणमें प्राप्य है।

कही गलतफहमी न हो इसलिए हम यहां पुन. कह देना चाहते है कि जो लोग किसी वड़े रोगसे ग्रस्त हैं, विशेपकर जिनका पाचन वहुत खराव हो गया है, उन्हे वहुत सादा और खूव चवाया जानेवाला पदार्थ खाना चाहिए। ऐसे लोगोंके लिए सवसे अच्छी चीज चोकरदार आटेकी रोटी और फल हैं। उन्हें तो पूर्ण सुधार न हो जानेतक स्वादकी ओर ध्यान ही नही देना चाहिए।

कुछ लोग पूछ वैठते हैं—क्या यह स्वादिष्ट होता है? पर मै पूछता हू खानेमें स्वाद या आनद आता कहासे है? रसनेंद्रियके उत्तेजनसे ही स्वादकी अनुभूति होती है। इसमें कभी-कभी वृद्धिकर अधिक आनंद प्राप्त किया जा सकता है, पर इसकी वार-वार आवृत्ति होनेसे हम उसके आदी हो जाते है और तव उससे अधिक आनंद नही मिलता। इस प्रकार अधिक आनद देनेवाली चीजें भी वादमें उसी श्रेणीमे आ जाती है जिस श्रेणीमें पहले सादी चीजें हुआ करती हैं। वस्तुतः स्वादकी वृद्धिकी दृष्टिसे खाद्य पदार्थको उत्तेजक वनानेसे कोई लाभ नही हो सकता।

इस स्थलपर मैं पुनः स्मरण दिला देना उचित समझता हू कि अप्राकृतिक आहारके ही कारण शरीरमे विजातीय द्रव्य एकत्र हुआ करता हैं। अगर पाचन खराब न हो और सयमसे काम लिया जाय तो प्राकृतिक आहारसे शरीरमे विजातीय द्रव्य रह ही नही सकता। यदि स्वास्थ्य-सबधी और बातोपर भी हम ध्यान देते रहे तो प्राकृतिक आहारसे हम निश्चय ही बराबर स्वस्थ बने रहेगे और अगर सभी लोग प्राकृतिक आहार-का सिद्धात बरतने लगे तो इस धरापर ही स्वर्ग उतर आए।

भाग ३

नाड़ियों तथा मस्तिष्कके रोग

रोगोंके मूलत. एक होनेका सिद्धात मानसिक तथा नाड़ी-रोगोपर भी लागू होता है। वर्तमान युग ठीक ही नाडी-रोगोका युग कहा जाता है, क्योकि ये रोग सर्वत्र अनगिनत रूपोमें नजर आ रहे है। इन रोगोका नामकरण तथा इनके रूप और कारणका निश्चय करनेके लिए वहुत अधिक प्रयत्न किया जा रहा है जिसमें इनके उपचारका कोई तरीका मालूम किया जा सके।

इन कठिन नाडी-रोगोकी वृद्धिके साथ-साथ इन रोगोंके कुछ वाह्य लक्षण भी प्रत्यक्ष होने लगे है, पर इन लक्षणोके सहारे रोगोका वास्तविक रूप समझनेमे कोई सहायता नही मिलती। फिर भी अगर नाड़ी-रोगवाले-की अवस्थाकी जाच की जाय तो भीतर अशातिके कुछ चिह्न अवश्य देख पड़ेंगे। रोगीको अंदर कुछ परेशानी-सी मालूम होती रहती है, पर वह उस परेशानीको समझ नही पाता, उसकी व्याख्या नही कर सकता, उसे उसका कारण भी ज्ञात नही होता और वह इस प्रकारकी कोई गड़वड़ी होनेकी वात भी स्वीकार नही करता।

किसीको हम वहुत वकवाद करते देखते है तो कोई विलकुल मौन रहता है, किसीको अनिद्राकी शिकायत है तो कोई विना विश्राम किए लगातार काम ही करता रहता है, कोई आलसियोका सरदार वना वैठा है तो कोई अपनेको विलकुल वेकार समझ और दुनियासे असतुष्ट हो आत्महत्याकी भावना लिए फिरता है, कही किसी लखपतीको भविष्यकी चिंताए सताती रहती है—जो कभी उसका पिड नही छोडती—तो कोई अकारण ही भयसे कापता रहता है, किसीका कोई अग या सारा शरीर ही वेकार है तो कुछ लोगोमें उन्मादके परस्पर-विरोधी लक्षण देख पड़ते

हैं। ये सभी रोग लोगोको अल्पाधिक अपनी शक्तिका उपयोग करनेसे वचित कर देते हैं—किसीका अपने अगोंपर ही अधिकार नही रह जाता तो किसीका अपने विचारो, इच्छा और शब्दोपर काबू नही रहता। साराश यह कि इन रोगोके रूप इतने भिन्न होते है कि हजारो रोगियोका परीक्षण करनेपर भी किन्ही दोमे एक-जैसे बाह्य लक्षण नही देख पडते। इन उलझनमें डालनेवाले लक्षणोके बीच यदि चिकित्सकोंको कारण, नामकरण और उपचारविधिका निश्चय करनेके लिए कोई स्पष्ट आधार न मिले तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही है। नाडियोको कुछ कालके लिए पूर्णत निःशक्त कर देनेमें समर्थ होनेपर भी औषधोद्वारा रोगमुक्त या अवस्थामें सुधार करनेमें अभीतक कोई सफलता नही मिल सकी हैं। यह खयाल बिलकुल गलत है कि औषधोके जरिए आरोग्य लाभ होता है। सच तो यह है कि शरीर ही अल्पाधिक सक्रियताके साथ हानिकारक पदार्थोंको बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहता है।

एक हालतमे विषको बाहर निकालनेके लिए शरीरमे अधिक सक्रियता देख पडती है। यह अवस्था तब उत्पन्न होती है जब औषध इतनी कम मात्रामे दी जाती है कि वह शरीरको पूर्णत. निश्चेष्ट करनेमें समर्थ नही होती। एलोपैथीकी विषैली दवाए बडी मात्रामें देनेपर शरीरमें निश्चेष्ट-ताके चिह्न अवश्य देख पडते हैं, पर इनसे तीव्र रोगके रूपमें आरोग्यलाभके लिए चलनेवाले शरीरके प्रयत्नके साथ जीर्ण रोगके बाह्य लक्षणोका भी कुछ कालके लिए अत हो जाता है। इस प्रकार इस पद्धतिमें रोगके लक्षण गायब होकर फिर-फिर प्रकट होते रहते हैं। तेज विषवाली दवाकी मात्रा अधिक होनेपर तो शरीर इस कदर निश्चेष्ट हो जाता है कि कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। कम मात्रा होनेपर निश्चेष्टता मृत्युका कारण भले ही न हो, पर शरीरके लिए हानिकारक तो होती ही है।

यह तो नि सकोच रूपसे कहा जा सकता है कि नाडी-सबधी बहुतसे रोग उन विषैली दवाओके ही कारण होते हैं जो छोटे-छोटे रोगोको दूर करने-की गरजसे दी जाती हैं। दवाकी मात्रा स्वल्प होनेपर शरीर निश्चेष्ट

होनेके वजाय इस विषको वाहर निकालनेके लिए दूने जोरके साथ प्रयत्न करने लगता है, पर यह वढी हुई सक्रियता आगे आनेवाली निश्चेष्टताका पूर्वरूप ही हुआ करती है।

नाड़ी-रोग

जहातक नाडी-रोगोसे मुक्ति दिलानेका सवध है, इस वातसे इनकार नही किया जा सकता कि वहुप्रशसित प्रचलित औषधोपचार-पद्धति इस कार्यमें सर्वथा असमर्थ है; इसके अनुयायियोने इन रोगोंके उपचारमें सहायक होनेमें अपनी पूर्ण असमर्थता प्रकट की है। जलवायुका परिवर्तन, यात्रा आदिके द्वारा ध्यान वटाना या इस प्रकारके अन्य लाभदायक उपाय सुझाए जाते हैं। अगर इन उपायोद्वारा कुछ क्षणिक लाभ हो जाय, तो भी यह निश्चित है कि चिकित्सकोको इन रोगोके कारण, स्वरूप आदिका जरा भी ज्ञान नही होता।

हमारे शरीरमें दो तरहकी नाडियां हैं—एक तो वे हे जो इच्छाद्वारा नियन्त्रित होती है, और दूसरी वे हे जो श्वास-प्रश्वास, पाचन और रक्त-सचलनका नियमन करती हैं। वहुतसे लोगोको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मानसिक और नाडियोंके रोग भी और रोगोंकी तरह विजातीय द्रव्यके भारसे ही उत्पन्न होते हैं। शरीरकी सावारण क्रियामें रुकावट पडने या दर्द होनेपर हमें पहले-पहल रोगका ज्ञान होता है, पर यह ज्ञान रोगकी परिर्वाद्धत अवस्थामें होता है। विजातीय द्रव्य अग-विशेपमें एकत्र होकर उसकी सावारण क्रियामें तो वाधक होता ही है, वह उस अगसे सवद्ध नाडियोकी क्रियामें भी वाधक होता है। नाडियोपर उसका प्रभाव होनेपर ही हमें रोगका ज्ञान हुआ करता है। ऊपर-ऊपर परीक्षा करने-वालोकी दृष्टि केवल इच्छासे सचलित होनेवाली नाड़ियो या उन रोगोकी ओर होती है जिनका सवध इन नाडियोंसे नियन्त्रित होनेवाले अगोंसे होता है।

श्वास-प्रश्वास, रक्तसचलन और पाचनमें वाधक होनेवाली खरावी

बहुत धीरे-धीरे प्रत्यक्ष होती है। इस खराबीका भी नाडियोपर असर होता है और वे हमे रोगका ज्ञान कराया करती है। ये नाडिया सीधे इच्छाद्वारा नियत्रित नही होती, पर इन्हीकी साधारण क्रियापर वृक्क, फुप्फुस, हृदय, आमाशय, मूत्राशय आदि अगोकी क्रिया अवलबित है। अगर इन अगोसे सवद्ध नाडियोपर विजातीय द्रव्यका भार न होता और उसके कारण इनकी क्रियामें बाधा न पडती तो इन अगोके रोगोका हमे पता ही न चल पाता। इसलिए इन अगोके रोगोके साथ इनका सचालन करनेवाली नाडियोका रुग्ण होना बिलकुल अनिवार्य है। इस प्रकार पाचनक्रियाकी खराबीका अर्थ उसका सचालन करनेवाली नाडियोकी भी खराबी है।

पाचनक्रियाका साधारण अवस्थामें होना शरीरके स्वस्थ होनेकी पहली शर्त है। विजातीय द्रव्य या तो माता-पितासे प्राप्त होता है या पाचनक्रियाके अव्यवस्थित होनेसे शरीरमें एकत्र होता है। इसलिए प्रत्येक रोग और परिणामत· सभी नाडी-रोग या तो पाचनकी खराबीके कारण होते है या माता-पितासे प्राप्त होते है। रोग चाहे जो भी हो, वह इन्ही दोमेंसे किसी एक कारणसे होता है। शरीरमे जीवशक्ति मौजूद रहनेपर वह तीव्र रोगके द्वारा इस विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है, शक्ति शेष न होनेपर जीर्ण रोग प्रकट होते है। ये रोग बराबर बने रहते है, अधिक-से-अधिक यही होता है कि उनका रूप बदल जाता है और उनकी चरम परिणति मानसिक और नाडी-रोगोंके रूपमे हो जाया करती है। इन रोगोंके लक्षण चाहे जो भी हो वे जीर्ण (प्रक्षिप्त) शारीरिक रोग ही होते है। नाडी-रोगोमे भी अन्य रोगोकी तरह ठड या बढी हुई गर्मी देख पडती है और ये दोनो ही अवस्थाए शरीरके ज्वरग्रस्त होनेका परिणाम है।

इस बातका निश्चय हो जानेपर कि नाड़ीरोग भी जीर्ण (प्रक्षिप्त) ज्वरके ही सूचक है, हम इस नतीजेपर पहुचते है कि इनका कारण भी वही है जो मसूरिका, आरक्त ज्वर, रोहिणी, उपदश आदि रोगोका है और

उपचार भी वही है जो उन रोगोका है। यह बात बहुतसे नाड़ी-रोगग्रस्त लोगोके सफल उपचारसे प्रमाणित भी हो चुकी है।

रोगका समुचित उपचार तो तभी हो सकता है जब उसका वास्तविक कारण और स्वरूप ठीक-ठीक समझमें आ जाय। जो नायक सेनाकी स्थिति-से भलीभाति परिचित है वही उसका सचालन कर सकता है, जो अपरि-चित है वह उसकी पराजयका ही कारण होगा। जो लोग शरीरकी अवस्थासे परिचित हुए बिना अग-विशेषकी चिकित्सामें विशेषज्ञ होनेका दावा करते है वे अपने चिकित्साशास्त्रकी हँसी कराते है। जिन लोगोको सारे शरीरका और प्राकृतिक क्रियाओकी एकसूत्रताका ज्ञान है वे ही इस रहस्यको और सचालक नियमोको समझ सकते है। प्रकृति एक ही पदार्थको विभिन्न रूपोमें हमारे सामने प्रस्तुत करती रहती है जो तापके उसी प्रकार परिणाम होते है जिस प्रकार एक ही पदार्थ जलके वाष्प आदि विभिन्न रूप।

औपधोपचार-पद्धति न तो नाडीरोगोका उपचार कर सकती है न उनका निदान ही। कभी-कभी तो चिकित्सक नाडीरोगोका अस्तित्वतक माननेको तैयार नही होते। जिन रोगियोने औपधोपचारकोंसे निराश होकर मेरी पद्धतिके सहारे रोगसे मुक्ति पाई है वे ही उनकी अयो-ग्यताके प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने बहुतसे रोगियोको बिलकुल स्वस्थ और रोगको सिर्फ वहम बतलाया था; पर आकृति-विज्ञानके सहारे विजा-तीय द्रव्यकी विद्यमानता स्पष्टत. देखी जा रही थी। इन सभी रोगियोने मेरे उपचारसे लाभ उठाया और विजातीय द्रव्य जितना शीघ्रतासे निकला उतनी ही शीघ्रतासे वे नीरोग भी हुए। आकृति-विज्ञानके द्वारा बहुत दिन पहले ही नाडी-रोगके पूर्व रूपका पता चल जाता है। पृष्ठभागमें विजातीय द्रव्यका एकत्र होना नाडी-रोगका विशेप रूपसे कारण हुआ करता है।

मानसिक रोग

मानसिक रोगोमें भी नाडी-रोगवाली ही बात होती है। औपधोप-चारक इन रोगोंके सबधमें कुछ-का-कुछ समझ लेते है। मस्तिष्कके विकृत

होनेका कारण वह नही हुआ करता जो प्राय· वतलाया जाता है, वल्कि एक-मात्र कारण विजातीय द्रव्यका भार होता है जो वर्षोंसे जमा होता रहता है। मानसिक रोग और तथाकथित वृद्धिशील स्तभ (प्रोगेसिव पैरेलाइसिस) अतिम और असाध्य रूप हुआ करते हैं। अप्राकृतिक जीवनके परिणामस्वरूप पाचनके खराव हो जानेपर विजातीय द्रव्य अज्ञात रूपमें क्रमश· एकत्र होता रहता है। सभी लोगोका जीवन एक-सा ही अप्राकृतिक नही होता, इसलिए मानसिक रोग सवको नही होते; इनका होना विजातीय द्रव्यकी वृद्धि और परिमाणपर निर्भर है। मानसिक रोग तभी होते है जब विजातीय द्रव्य वहुत वढ गया हो और पृष्ठभागकी ओरसे मस्तिष्क उससे आक्रात हो गया हो। वढती हुई सभ्यता इन रोगोका मुख्य कारण है, क्योकि लोग प्राकृतिक नियमोका अधिकाधिक उल्लघन करने लगे है। मुख्य दोष प्रचलित औपधोपचार-पद्धतिका है जिसके सिद्धात प्राकृतिक नियमोके विलकुल उलटे पडते हैं। पानी स्वास्थ्यके लिए हानिकारक समझा जाता है और उसके वदले शराव, सोडावाटर, लेमोनेड आदि पीनेकी राय दी जाती है। लगातार सिगरेट पीते रहकर मुह चिमनी वना लिया जाता है और पेट तो शरावका पीपा ही वन जाता है। हवा और प्रकाशसे रहित कमरे और ठसाठस भरे हुए कारखाने भी कुछ कम हानिकर नही होते।

देहातमे लोग प्रकृतिके सम्पर्कमें रहते है, मैदानोमें काम करते है और औषधोपचार-पद्धतिके नियमोसे वहुत कुछ अनभिज्ञ रहते हैं, इसलिए वहा मानसिक रोग शायद ही कभी देखनेमें आता है; अगर होता भी है तो केवल शरावियोकी सतानोको। इस प्रकारके वच्चोको विजातीय द्रव्य माता-पितासे ही प्राप्त होता है जो मस्तिष्कको विकृत कर देता है या और किसी भयकर रोगका कारण होता है। वच्चोकी शारीरिक अवस्था मा-वापके ही अनुरूप हुआ करती है।

मादक द्रव्योका पाचन-शक्तिपर इतना अधिक जोर पड़ता है कि और किसी कार्यके लिए शरीरमें शक्ति ही नही वचती। मद्यपोमें

क्लान्ति और तन्द्रा देख पडनेका यही कारण होता है। पाचनके समय बने हुए खमीरकी गैसका मस्तिष्कपर दवाव पड़नेसे वह विकृत हो जाया करता है। नशेके समय हुए गर्भाधानसे उत्पन्न वच्चेकी अगर नई अवस्थामें ही मृत्यु न हो जाय तो आगे चलकर उसमे उन्मादके लक्षण प्रकट होने लगते है।

माता-पितासे मिले या अपने कार्योंसे एकत्र हुए विजातीय द्रव्यसे जो मानसिक रोग उत्पन्न होता है उसके मूलमें पाचनकी खरावी अवश्य होती है। इस प्रकार और रोगोकी तरह उसका भी आरंभ उदरमें ही होता है।

मनुष्यका जीवन जितना सादा और प्राकृतिक होगा उतना ही वह सुखी और स्वस्थ होगा। गुलामीके दिनोमें हब्शी रूखा-सूखा खाकर भरपूर मेहनत करते थे, इसलिए वे मानसिक रोगोसे वचे रहते थे, पर अव आजाद हो जाने और रहन-सहनका स्तर ऊंचा हो जानेपर उन्होंने सभ्यताके विषका पान कर लिया है और वे उसके परिणामोंके भागी भी हो रहे है।

पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोको मानसिक रोग कम होते है, क्योंकि स्त्रिया अधिक सयमसे रहती है और मादक द्रव्यो तथा तम्वाकूका व्यवहार भी कम ही करती है। उनके उन्मादका कारण वहुत कुछ माता-पितासे प्राप्त विजातीय द्रव्य ही हुआ करता है।

मानसिक रोगमें प्राय: देखा जाता है कि रोगके पहले या रोग होनेके समय शरीर और मस्तिष्ककी स्फूर्ति वढ जाया करती है। इस रोगका विशेषज्ञ होनेका दावा करनेवाला औपधोपचारक इसका कारण नही वतला सकता। शरीर और विशेपकर मस्तिष्कमें वढनेवाले विजातीय द्रव्यका भार मस्तिष्क और नाडियोके केन्द्रपर पडनेपर उसकी प्रतिक्रिया भारग्रस्त अगोकी वढी हुई स्फूर्तिमे प्रकट होती है। शरीर और मस्तिष्क विना विश्राम किए एक कामके वाद दूसरे काममें सलग्न होते रहते है, पर रोगीको कभी सुख और सतोप नही प्राप्त होता। यह असाधारण स्थिति वाल्यावस्थामें विशेप गुणके रूपमे प्रत्यक्ष होती है—पर वाल्या-

वस्थाकी यह विशेषता युवावस्थामे शायद ही वनी रहती है और अंतमें यही मानसिक रोगका रूप धारण कर लेती है।

पृष्ठभागमे विजातीय द्रव्यका भार वढ जानेपर उदरकी नाडियो, सुषुम्ना तथा इडावात नाडीपर इसका विशेष प्रभाव पडता है और यही मानसिक रोगका मुख्य कारण हुआ करता है। ज्वरके अन्तर्लीन रहनेसे रोग जीर्णावस्थामे पहुच जाता है और अतमे मानसिक रोगके रूपमे प्रकट होता है। तीव्र रोगद्वारा विजातीय द्रव्यके निकल जानेपर मानसिक रोग बीच-बीचमें गायब भी हो जाया करता है, पर भार बढनेपर फिर वह मौजूद हो जाता है।

वृद्धिशील स्तंभ

वृद्धिशील स्तभ (प्रोग्रेसिव पैरेलाइसिस) मानसिक रोगका ही परि-वर्द्धित रूप है। औषधोपचारकोंका यह कहना कि यह रोग वली और स्वस्थ लोगोको ही हुआ करता है, उनके अज्ञानका ही परिचायक होता है। इस प्रकारका कठिन रोग कभी एकाएक हो ही नही सकता। आकृति-विज्ञानकी सहायतासे इसका पूर्वरूप वर्षों पहले देखा जा सकता है।

मानसिक रोगका कारण विजातीय द्रव्य ही होता है, इसलिए इस रोगसे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय विजातीय द्रव्यका निष्कासन है। वहुतसे रोगी इस प्रकार अच्छे किए जा चुके है। हां, यदि विजातीय द्रव्यका स्थान ऐसा हो कि उसका निकाला जाना सभव न हो तो रोगको असाध्य ही समझना चाहिए। मानसिक रोग भी यक्ष्माकी तरह रोगका चरम रूप है, इसलिए समय रहते गडबडी ठीक करनेपर ही आरोग्यलाभ संभव होता है।

आजकल वहुतसे मानसिक रोग असाध्य माने जाते है, पर यह निरा-भ्रम है। मैंने एक ऐसे ही रोगीको नीरोग किया है। एक आदमीको उपदंशके वाद वृद्धिशील स्तभका कठिन रोग हो गया था। उसका पाचन वहुत दिनोसे विकारग्रस्त था जो मानसिक उत्तेजना और कारवारकी

चिन्ताके कारण दिनोदिन खराव ही होता गया। चिकित्सकोकी रायसे उसने सोडा आदि पीना शुरू किया, पर इससे उसकी हालत सुधरनेके वजाय और वुरी हो गई। नैराश्यकी हालतमे एक विशेपज्ञकी रायसे उसे पागलखानेमें रखनेका निश्चय हुआ। अतिम उपायके रूपमें मेरी पद्धतिकी आजमाइशकी वात ठहरी। उपचार आरभ होते समय वह न तो स्वय कुछ कहता था और न प्रश्नोका उत्तर देता था। उसकी शारीरिक इच्छाए भी नि.शेष हो गई थी। ठड लानेवाले स्थानो और प्राकृतिक आहारके द्वारा तीन ही दिन वाद उसके पाचनमें सुवारके लक्षण देख पडने लगे। एक सप्ताहमें तो उसके होश-हवास वहुत कुछ ठीक हो गए और दो मासके अदर ही वह विल्कुल नीरोग हो गया। इससे भी रोगोंके मूलत. एक होनेकी वात विलकुल स्पष्ट हो जाती है।

क्षय तथा अन्य फुप्फुसीय रोग

क्षय वर्तमान युगका सबसे भयकर रोग है। यह न तो पेशेका खयाल करता है और न अवस्थाका; जो इसके चगुलमे फँस जाता है उसका फिर त्राण नही होता। औषधोपचारकोके लिए तो यह एक पहेली बना हुआ है और उनकी अक्ल काम नही कर रही है।

फुप्फुसीय क्षय जितने रूपो और अवस्थाओमे फैला हुआ है वैसा शायद ही कोई रोग फैला हो। इसके बाहरी लक्षणोमें इतनी विभिन्नता देख पडती है कि दो रोगियोमे शायद ही एक-जैसे लक्षण देख पडे। कोई सास लेनेमे कष्ट होनेकी शिकायत करता है तो कोई सिरमे दर्द होनेकी, कोई पाचन खराब होनेकी बात कहता है तो किसीको मरनेके पद्रह दिन पहले-तक कुछ पता ही नही चलता और एकाएक फुप्फुसोमें जलन शुरू हो जाती है, किसीको कोई शिकायत नही जान पड़ती और अचानक तीव्रगतिसे बढने-वाले क्षयसे आक्रात होकर कालका ग्रास बन जाता है, किसी-किसीकी समझमे दातोके गलनेका रोग होता है, पर दरअसल वह होता है क्षय ही। फुप्फुसोंके आक्रात होनेपर कुछ लोगोके कधोमे दर्द होता है और किसीकी आखो या कानोमे तकलीफ होती है, पर असल रोग छिपा ही रहता है। ओष्ठका रोग, ग्रसनिका और कठका प्रतिश्याय तथा पीनस—सभी मूलतः क्षय ही होते है। कुछ लोगोके पैरोमे रोग होता है, पैरोमें खुले फोडे होते हैं और कुछ लोगोको चर्मरोग होता है। इस प्रकार जो लोग आकृति-विज्ञानसे अनभिज्ञ है वे रोगका मूल कारण न समझकर धोखा खाया करते है।

क्षयके रोगियोमे एक विशेष बात यह देखी जाती है कि वे दिनमे ही नही, रातमे सोते समय भी मुह खुला रखते है। इसका कारण भीतरका बढा हुआ ताप होता है जिसे शात करनेके लिए बाहरकी ठडी हवा तेजीसे ग्रहण करना आवश्यक हुआ करता है।

शरीरमें प्रवाहित होनेवाले रक्तको हवाकी सहायतासे साफ करते रहना फुप्फुसोका ही काम है। जव उनपर विजातीय द्रव्यका भार वढ जाता है और वे यह कार्य सम्यक् रूपमें नही कर पाते तव मैल वाहर न निकलकर शरीरमे ही रह जाता है और इस प्रकार मलके एकत्र होते रहनेसे पहलेसे मौजूद विजातीय द्रव्यका परिमाण वहुत वढ जाता है। फुप्फुसोका उससे अधिक सवध होनेके कारण सवसे अधिक क्षति उन्हीको पहुचती है। परिणाम यह होता है कि रक्तकी हालत और भी खराव हो जाती है और वह शरीरके अदर शुष्क और क्षय करनेवाली गर्मी उत्पन्न कर देता है। इस वढे हुए आतरिक तापके कारण फुप्फुसोका प्रदाह और गलना जीर्ण-रूप धारण कर लेता है। इस सडे हुए अशको लोग गलित जीववस्तु या ततु (टिसु) कहते है और यही खासीके साथ कफके रूपमें निकला करता है।

क्षयवाले रोगोंसे आज लोगोका डरना उचित ही है। औषधोपचार-पद्धतिके अनुयायी जवतक यह असाध्य रूप नही धारण कर लेता तवतक रक्तकी या यत्रद्वारा हृदयकी जाच कर इसका ठीक-ठीक निदान नही कर पाते। जिस रोगकी पहचान वर्षो पहले हो सकती है उसका इन चिकित्सकोको, निदानकी पद्धति ठीक न होनेके कारण, कुछ पता ही नही चल पाता।

ट्यूवरक्यूलिनद्वारा फुप्फुसोको रोगमुक्त करनेका इनका प्रयत्न वैसा ही निष्फल होता है जैसा हालमें ही नश्तर लगाकर रोगजन्य गड्ढे दूर करनेका प्रयत्न हुआ है। इनके पास ऐसा कोई उपाय नही जिसका अवलवनकर फुप्फुसोका विकृत या नष्ट होना रोका जा सके। हा, मेरी पद्धतिसे यह ध्वसकार्य जिस मार्गसे वर्षोसे धीरे-धीरे आगे वढता रहा है उसी मार्गसे पीछे लौटनेके लिए वाध्य किया जा सकता है। फुप्फुसीय रोगोंके उपचारमें सवसे मुख्य वात आरंभिक अवस्थामें ठीक समयपर उनकी पहचान है जो आकृति-विज्ञानके द्वारा वर्षो पहले क्या, वचपनमें ही हो सकती है। इस प्रकार क्षयरोगकी दृष्टिसे इस निदान-पद्धतिका विशेष महत्त्व है। इन चिकित्सकोंके लिए तो समयपर रोगकी पहचान

हो जानेका भी कोई महत्त्व नही है, क्योकि वे क्षयरोगको, चाहे वह आरभिक अवस्थामे हो या वढी हुई अवस्थामे, कभी अच्छा कर ही नही सकते। रोगकी आरभिक अवस्था ऐसी होती भी नही कि रोगीको उसका जरा भी आभास हो सके, इसलिए क्षयकी ओर उसकी प्रवृत्ति होनेका उसे विश्वास दिलाना बहुत मुश्किल होता है। मैंने अपने घरकी एक अल्पवयस्क परिचारिकासे, जो देखनेमे तदुरुस्त जान पडती थी, सद्भावनासे प्रेरित होकर कहा कि तुम्हे क्षयका रोग है, मेरी उपचार-विधिका प्रयोग करो अन्यथा यह एक वर्षमे घातक सिद्ध हो सकता है। परिचारिकाको मेरी वात अच्छी नही लगी और उसने विश्वास दिलाते हुए कहा कि मैं पूर्णत. स्वस्थ हूं, किसी तरहके उपचारकी जरूरत नही है। मैं चुप रह गया और उसकी मृत्युके चार महीने पहले फिर वही चेतावनी दी। दुर्भाग्यवश उसने पुनः वही उत्तर दिया। तीन महीने बाद उसने चारपाई पकड ली और एक ही मास बाद आस्कदित या प्लुतक्षय (गैलपिग कजप्शन) ने उसका अत कर दिया।

फुप्फुसीय रोग किसी पूर्वरोगकी, जो दूर न किया जाकर दवाके जरिए दबा दिया गया होता है, चरम परिणति है। यौन रोग ही अधिकांश फुप्फुसीय रोगोके कारण होते है। बच्चोमें भी इन्हीके कारण क्षयकी पूर्व-प्रवृत्ति प्रस्तुत हो जाती है। पिताके शरीरमें जो विजातीय द्रव्य जीर्णावस्था-मे मौजूद रहता है वही सतानमें पहुच जाता है और गडमाला (स्क्राफुला) या क्षयका कारण होता है। पिताके शुक्रमे उसके सारे गुण-दोष सूक्ष्म रूपमें मौजूद रहते और सतानको प्राप्त हो जाते है। मैंने गडमालावाले सभी रोगियोको आगे चलकर क्षयसे आक्रात होते देखा है। इस प्रकार पूर्ववर्ती रोग परवर्तीका आरभिक रूप हुआ करता है और गडमालाकी स्थितिमें ही इसकी पहचान कर ली जा सकती है जब कि शरीरमे विजातीय द्रव्यको वाहर निकालकर मर्मांगोकी रक्षा करनेकी पर्याप्त शक्ति मौजूद होती है। दिनोदिन यह शक्ति क्षीण होती जाती है और जब शरीर क्षय-ग्रस्त हो जाता है तो वह विजातीय द्रव्यकी विनाशक्रियासे मर्मांगोकी रक्षा

करनेमें असमर्थ हो जाता है। जो लोग वस्तुतः स्वस्थ है वे अस्थायी-रूपमें विजातीय द्रव्यके शरीरमें एकत्र हो जानेपर भी कभी क्षयसे आक्रात नही हो सकते चाहे जितनी बडी संख्यामें क्षयके कीटाणु उनके शरीरमें क्यो न प्रविष्ट हो जाय। क्षयकी वृद्धिके लिए भीतर ध्वंसक तापका होना आवश्यक है। क्षयके कीटाणु इस असाधारण तीव्र ज्वरकी अवस्थामे ही बढते भी है। इस प्रकारका असाधारण ज्वर तभी होता है जब या तो पीढी-दर-पीढी विजातीय द्रव्य प्राप्त होता रहा हो या व्यक्तिने गलत तरीकेसे जीवन व्यतीत कर अपना शरीर जर्जर कर डाला हो।

जाननेकी विशेष बात यह है कि और रोगोकी ही तरह फुप्फुसीय रोगोका भी उद्गमस्थान उदर या अशक्त पाचनाग ही होता है। यह बात अवश्य है कि बहुतोको रोग पितासे ही प्राप्त हुआ होता है, पर यह नही माना जा सकता कि विजातीय द्रव्य फुफ्फुसोको सीधे आक्रांत कर लेगा। वास्तविक स्थिति यह होती है कि और अगोंके मुकाबलेमें फुप्फुसोका विकास नही हुआ होता और वे कमजोर और नाजुक रहते है जिससे उनमे निरोधकी शक्ति अधिक नही आ पाती और विजातीय द्रव्यके एकत्र होनेका स्थान बन जाते हैं। पाचनकी खराबीके कारण एकत्र होनेवाला विजातीय द्रव्य भीतरके तनावके कारण वही एकत्र होता है जहा निरोध कम होता है, इसलिए जिन लोगोमें फुप्फुसीय रोगोकी ओर पैतृक प्रवृत्ति है उन्हे इस बातका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए कि शरीरमें नया विजातीय द्रव्य एकत्र न होने पाए।

भोजनमें परिवर्तन होनेके कारण पाचनशक्ति क्षीण हो जानेपर गर्म देशोंके वनमानुस यूरोपके चिड़ियाखानोमें जल्द ही क्षयग्रस्त होकर मर जाते हैं। अबतक इसका सारा दोष ठडी आबहवाके मत्थे मढ़ा जाता रहा है। इस बातमे सत्यका अंश इतना ही है कि ठंडे देशोंमे पाचनकी क्रिया जरा मद गतिसे हुआ करती है, विशेषकर उस हालतमें जब प्राणीको प्रकृतिद्वारा निर्धारित आहार प्राप्त नही होता। इस प्रकार दो बातें उनके प्रतिकूल पड़ती हैं। वनमानुसोंके उनके निवासस्थान उष्ण प्रदेशसे हटाए

जानेपर मैं उनके स्वास्थ्यकी विभिन्न अवस्थाओको ध्यानसे देखता रहा हू और अपने निदानके सहारे इस निष्कर्षपर पहुचा हू कि पहले उनका पाचन ही खराब होता है और उसके बाद ही और खराबिया पहुचती है। मनुष्योके सबधमें भी यही बात होती है; अतर सिर्फ यह होता है कि उनके आदी हो जानेके कारण परिस्थितिया और अनुकूल हो जाती हैं।

क्षयके रोगियोमें मैंने देखा है कि उनका शरीर चुने हुए अच्छे आहारसे भी पोषण प्राप्त करनेकी अवस्थामें नही होता, क्योकि भीतरकी तेज गर्मी-से वह बिलकुल सूख जाता है। पोषण खाद्य पदार्थोंके कृत्रिम सयोग या केंद्रीकरणपर नही बल्कि अगोकी पचानेकी शक्तिपर निर्भर है। जिनका रोगियोसे सपर्क है वे अच्छी तरह जानते है कि पाचन-शक्तिमें कितना अंतर पड़ता है। अगर शरीरमे विजातीय द्रव्य पहलेसे ही बहुत भरा हो तो फुप्फुसोके लिए विशेष रूपसे खतरा रहता है; क्योकि उसे सिरकी ओर बढनेके लिए फुप्फुसोसे होकर ही जाना पडेगा। यदि एक बार विजातीय द्रव्य वहा जमा हो जाय तो फिर वे जमावके लिए स्थायी स्थान हो जाते है और तब सिरकी ओर उसका बढ़ना रुक जाता है।

फुप्फुसोका गलना आरभ होनेपर सबसे पहले शीर्षभागका नाश होता है। कारण यह है कि विजातीय द्रव्य खमीरके रूपमें परिणत होनेपर हमेशा ऊपरकी ओर बढता है। फुप्फुसोंके ऊपरका हिस्सा कंधोमे समाप्त होता है। जब खमीरकी क्रिया आरभ होती है तो खमीर बननेवाला पदार्थ ऊपर छोरतक बढनेकी कोशिश करता है, पर कधोकी रोकके कारण आगे नही बढ पाता। इसी कारण इन स्थलोको सबसे अधिक क्षति पहुचती है। कधोंमें सूई चुभनेकी-सी पीडा होनेका यही कारण है जिसका अनुभव फुप्फुसोका नाश होनेके पहले क्षयके रोगियोको हुआ करता है।

आंतरिक व्रणग्रंथिका कारण और उपचार

यक्ष्मिकीय व्रणग्रथि (टचूवर कुलर नोड्यूल)की उत्पत्ति भी ठीक उसी प्रकार होती है जिस प्रकार अर्श, कर्कटिकाकी गाठो, फोड़े या छोटी-से-छोटी फोडियोकी होती है। स्वस्थ शरीरकी त्वचा आर्द्र होती है; इसके विपरीत जो शरीर जीर्णरोगसे ग्रस्त होता है उसकी त्वचा प्राय. शुष्क और निष्क्रिय होती है। पहले प्रकारके शरीरमें विकृत द्रव्यको वाहर निकालनेके लिए जीवशक्ति पर्याप्त मात्रामें मौजूद रहती है, पर दूसरे प्रकारके शरीरमें इस शक्तिका अभाव होता है जिससे विकृत द्रव्य, जिसका वाहर निकलना आवश्यक है, शरीरमें एकत्र होता रहकर रोगकी प्रवृत्ति ला दिया करता है। लोगोके शरीरमें, विशेपकर नितंव, गर्दन, हाथ-पैर आदिमें प्रायः फोड़ा निकलता रहता है। फोड़ेके कारण शरीरमें वड़ी वेचैनी रहती है, पर उसके फूटकर वह जानेपर वेचैनीसे छुटकारा मिल जाता है और शरीरमे नयापन या कम-से-कम हलकापन और ताजगी अवश्य मालूम होती है। अव जरा इस फोडेके मूल कारणपर विचार कीजिए।

जहां फोडा निकलनेवाला होता है वहां कुछ दिन, वल्कि हफ्तों पहलेसे कड़ापन मालूम होता है और वह भाग लाल भी हो जाता है। उसका आकार दिनोदिन वढता जाता है, सूजन हो आती है और अतमें त्वचाके नीचे ठोस और कड़ी गांठ वन जाती है जिसमें वड़ी पीडा और जलन भी होती है। उस जगहकी त्वचा तन जाती है और उस अंगका सचालन करनेपर वहुत कष्ट होता है। जव फोड़ा चरम परिणति-की अवस्थामें पहुचता है तो वह मुलायम पडने लगता है और अंतमें भीतर-का पदार्थ चमडेमें मुह वनाकर वाहर निकल पड़ता है। इस प्रकार एकत्र विजातीय द्रव्य, जिसने फोड़ेकी उत्पत्ति की थी, सीवे-सीवे शरीरसे वाहर

निकल जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विकृत द्रव्यको बाहर निकालनेकी शरीरकी नैसर्गिक क्रियाके अतिरिक्त और कुछ नही है।

प्रश्न यह होता है कि हम प्रत्येक व्यक्तिके शरीरमे इसी प्रकारकी क्रिया होते क्यो नही देखते ? पसीना सबको नही आता, किसीको आता है किसीको नही आता। वही हालत इसकी भी है। यह शरीरकी जीव-शक्तिपर निर्भर है। जिस शरीरमे जीवशक्तिका भंडार मौजूद है और सारा विजातीय द्रव्य मलमार्गोसे नही निकल पाता वह फोडेके रूपमे उसे बाहर निकालता है। अगर शरीरमें इस प्रकारकी अवस्था उत्पन्न करनेके लिए आवश्यक जीवशक्ति नही है, दवा, अप्राकृतिक जीवन आदिके कारण या उभारकी स्थितिमे शक्तिका ह्रास हो गया है तो विजातीय द्रव्य एकत्र होता रहकर फोडेकी तरह क्षुद्र ग्रथिका रूप ग्रहण कर लेता है और शरीर फोडेका रूप देनेके लिए उसे त्वचामे नही ला पाता। वह स्थान कडा पड जाता है और उसमे कोई तकलीफ नही होती, हला कि उसकी प्रक्रिया चलती रहती है। इस रूपमे यह फोड़ा न होकर व्रणग्रथि (नोड्यूल) के रूपमे रहता है। यह व्रणग्रंथि एक प्रकारसे अविकसित फोड़ा या एक स्थानपर पिंडीभूत विजातीय द्रव्य है। जो प्राय शरीरमे बद पडा रहता है। अगर शरीरमे जीवशक्ति शेष है तो यह ग्रथि त्वचामें अवश्य आ जायगी। गर्दन या शरीरके अन्य अंगोमे इस प्रकारकी ग्रथियां स्पष्ट रूपमें मालूम की जा सकती है। अगर जीवशक्ति पर्याप्त न हो तो ये ग्रथिया शरीरके भीतरी अगोमें बन जाती है। अगर हम किसी प्रकार शरीरकी जीवशक्ति बढा लें तो इन ग्रथियोमे शीघ्र ही परिवर्तन होता देख पडेगा।

जलचिकित्साका प्रयोग करनेपर प्राय. फोड़े निकलते देखे जाते है। आरोग्यलाभके इस तरीकेसे शरीर उस क्रियाको पुन. आरंभ करने योग्य हो जाता है जो बद हो गई होती है। फोड़े इसी क्रियाके परिणाम होते है। अगर शरीरकी शक्ति और अधिक बढाई जा सके तो ये व्रणग्रथिया गल-पचकर समाप्त हो जायगी। यदि मेरे स्नानोकी विधिसे शारीरिक क्रियाको

तीव्र करके इस बिखरे हुए विजातीय द्रव्यको मलमार्गोंसे निकाला जा सके और साथ ही इस बातका ध्यान रखा जाय कि कोई नया विजातीय द्रव्य भोजनादिके द्वारा शरीरमें प्रवेश न करे, तो ये कष्ट देनेवाले फोडे कभी उत्पन्न ही न हो, क्योकि ये ग्रथिया जिस प्रकार बनती है उसी प्रकार अंदर ही छिन्न-भिन्न भी हो जाती है। जलचिकित्साकी पुरानी विधि ग्रथियोको छिन्न-भिन्न करनेमें तो समर्थ होती थी पर विजातीय द्रव्यको बाहर नही निकाल पाती थी; फल यह होता था कि शरीरमें जीवशक्ति मौजूद होनेपर फोडे निकल आते थे, पर मेरी विधिसे फोडे पैदा होनेकी स्थिति ही नही आ पाती, विजातीय द्रव्य प्राकृतिक ढगपर और अधिक शीघ्रतासे बाहर निकल जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आतरिक व्रणग्रंथि अविकसित फोडा होती है और उन्ही कारणोसे उत्पन्न होती है जिन कारणोंसे और तरहके फोडे उत्पन्न होते है। शरीरके विभिन्न भागोमे ग्रथि बननेका कारण उन भागोमें विजातीय द्रव्यका एकत्र होना ही है।

सभी प्रकारकी व्रणग्रथियोका कारण और रूप स्पष्ट हो जानेपर उनके उपचारकी विधि भी स्पष्ट हो जाती है। रोगको दूर करनेके लिए नश्तर लगाना जो प्रचलित औषधोपचार-पद्धतिमें बताया गया है, रोग दूर करनेका सबसे खराब तरीका है। इस विधिसे लक्षण तो दूर हो जाते है, पर मूल कारण बना रहता है। शरीरकी जीवशक्ति बढाकर ही, जिसमे शरीर विजातीय द्रव्यको बाहर निकालने योग्य हो जाता है, व्रणग्रथियोंसे छुटकारा पाया जा सकता है। जीवशक्तिकी विशेषता होनेपर, चूनेका रूप धारण कर लेनेपर भी, ये ग्रथियां अपने पूर्व मार्गसे लौटनेके लिए बाध्य कर छिन्न-भिन्न की जा सकती है और शरीरसे बाहर निकाली भी जा सकती है। हा, इसके लिए दीर्घकालतक मेरी विधिसे उपचार करना आवश्यक होगा।

खमीर बननेकी क्रियासे उत्पन्न विजातीय द्रव्यकी गति हमेशा एक ही दिशामें नही होती। कभी तो वह ऊपर बढकर फुप्फुसोंके सिरको

आक्रांत करता है और कभी बीचसे या सामने बढकर दमा, जुकाम और श्वासनलिकामे प्रदाह उत्पन्न करता है। हृद्रोगवाले व्यक्तियोकी श्वास-नलिकामें प्रदाह अवश्य होता है भले ही वह उतना प्रकट न हो। अगर विजातीय द्रव्य फुप्फुसोमें अधिक दिनोतक रुका रह जाय तो उनमें तथा फुप्फुसावरणमे प्रदाह उत्पन्न कर देता है। यह शरीरका विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका ज्वरमूलक प्रयत्न है; पर यदि उपचार सावधानीसे न हो तो मृत्यु हो जानेकी संभावना रहती है। अगर मेरी विधि काममें लाई जाय तो उससे खतरा दूर हो जाता है, क्योंकि ठंड लानेवाले स्नानों-द्वारा रोगपर बडी आसानीसे काबू कर लिया जाता है और आरोग्यलाभ बड़ी शीघ्रतासे होता है।

फुप्फुसोंके प्रत्येक रोगमें उनके अंदर तापकी मात्रा बहुत अधिक होती ह। श्वास लेनेके साथ ही वे हवाको ओषजन और नोषजनमें विभक्त कर देते हैं। ओषजत तो आंशिक रूपमें शरीरमें ही रह जाता है, पर नोषजन शरीरकी गदगी वाष्पके रूपमें लेकर बाहर निकल जाता है। इस प्रकार फुप्फुसोमें जलनेकी क्रिया बराबर चलती रहती है। स्वयं इस क्रियासे बहुत अधिक ताप उत्पन्न होता है, इसपर यदि फुप्फुसोमें विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाय या खमीर बनने लगे तो तापकी मात्राका और अधिक हो जाना स्वाभाविक ही है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, दंडाणु (बेसिलस) विजातीय द्रव्यके खमीरसे ही उत्पन्न होते हें और तापकी एक विशेष मात्रा होनेपर ही उनकी वृद्धि होती है। क्षय आदि रोगोमें तापमान बहुत अधिक रहता है, इसलिए क्षयके दंडाणुओके बढने योग्य अवस्था मौजूद रहती है। औषधविज्ञानको यह बात ज्ञात होते हुए भी वह मूल बातकी ओर ध्यान न देकर दडाणुओको अप्राकृतिक ढगसे नष्ट करनेका प्रयत्न करता है।

यही नही, औषधविज्ञान प्रत्येक रोगके लिए एक विशेष दडाणु मानकर उसकी व्याख्या करनेका प्रयत्न करता है। यह बात भुला दी जाती है कि जिस प्रकार जलवायुमें अतर पडनेपर एक ही जातिके पौधों और पक्षियोके

रूप-रगमें अंतर हो जाता है। उसी प्रकार तापकी मात्रामे भिन्नता होनेपर इन दंडाणुओंके आकार-प्रकारमें भी अतर हो जाता है।

मेरी विधिसे पूर्णत. परिचित लोगोंके लिए क्षयरोगके उपचारका ढंग निकालना उतना कठिन न होगा। शरीरको पहली अवस्थामे लानेके लिए आतरिक तापका नियत्रण और जीवशक्तिकी वृद्धि आवश्यक है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आहारादिके नियत्रणके साथ मेरेद्वारा प्रवर्तित स्नान परमावश्यक है। कठिनाई केवल स्नानोको सही क्रममें चलानेमें होती है। शरीरका असाधारण ताप बहुत दिनोतक घटनेका नाम ही नही लेता, इसलिए स्नानकाल और स्नानोका क्रम रोगीकी अवस्थाका पूर्णरूपसे विचार करके निर्धारित करना चाहिए। रोगीको ताजी शुष्क वायुमें रखना चाहिए। इससे आरोग्य-लाभमे बडी सहायता मिलती है। धूप-स्नान भी विशेष लाभदायक होता है।

फुप्फुसीय रोगोंका प्राकृतिक उपचार

क्षयरोगमे 'टच्यूबरक्यूलिन' का टीका देनेका मै कट्टर विरोधी हू। इसकी तथाकथित प्रभावकारिताकी बडी आसानीसे व्याख्या की जा सकती है। विजातीय द्रव्यपर इस विषैले पदार्थके टीकेका असर गुधे आटेमें खमीर मिलाने-जैसा (खमीर या ज्वर पैदा करनेवाला) होता है। इससे विजातीय द्रव्यसे बने हुए खमीरकी मौलिक अवस्थामें परिवर्तन हो जाता है और उसीके हिसाबसे शरीरके तापमानमें भी फर्क पड जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि यक्ष्माके दडाणु (बेसिलस), जिनकी वृद्धि पूर्व तापमानमे ही समुचित रूपसे हो सकती है, एक दूसरी ही अवस्थामे पहुच जाते है, जिसे लोग साधारणत. 'विलोप' कहा करते है, पर दरअसल विजातीय द्रव्य न तो कभी वाहर निकलता है और न रोगका मूल कारण ही दूर हो पाता है। टीका मिथ्योपचार है और हमेशा वही रहेगा। इसका स्वास्थ्यपर होनेवाला विनाशकारी प्रभाव कभी-न-कभी अवश्य प्रकट होता है। इसके आविष्कारपर जो असीम हर्ष प्रकट किया जा रहा था वह कुछ ही महीनोके पश्चात् नैराश्यमे परिवर्तित हो गया है और लोग, यहातक कि स्वतत्र विचार रखनेवाले एलोपैथ भी इस टीकेकी घोर निंदा करने लगे है। आज तो टच्यूबरक्युलिनके टीकेमे ऐतिहासिक दृष्टिसे भी कोई दिलचस्पी नही रह गई है। इससे इस वातका एक और प्रमाण मिल जाता है कि किसी तरहका टीका लगाना सबसे वडा अनाडीपन है।

अगर मेरी विधिसे कुछ लवे अर्सेतक सावधानीके साथ उपचार किया जाय तो वर्द्धित क्षयसे भी मुक्ति मिल सकती है। रोग यदि वहुत वढ गया हो तो कठिनाई हो सकती है, पर इससे कम-से-कम इतना तो हो ही सकता है कि रोगीकी अवस्था असह्य न होकर अतिम समयतक सह्य बनी

रहे। क्षयके रोगीका नीरोग होना एकमात्र उसकी जीवशक्ति और पाचनांगके सुधारयोग्य अवस्थामे होनेपर निर्भर है। अगर पाचनशक्ति बढाकर साधारण रूपमें लाई जा सके तो रोगी थोड़े ही दिनोंमें आश्चर्य-जनक रूपमें आरोग्यलाभ करने लगेगा, इसमें असफल होनेपर रोगके दूर होनेकी सभावना नही रहेगी। मैंने क्षयके कई रोगियोंको बहुत थोडे समयमे नीरोग किया है। इसका कारण यही था कि उनका पाचन सुधारयोग्य अवस्थामें था। इसके विपरीत पूयवाले रोगियोमें मैंने देखा है कि यक्ष्मिकाओ (टयुबर्क्यूल) को परावर्तित करनेमें वर्षों लग जाते है और जब-जब यक्ष्मिकाका विघटन हुआ उभारकी दारुण अवस्था प्रस्तुत हो गई। यह अवस्था खतरनाक तो नही थी, पर कष्टकर अवश्य थी। मेरी पद्धतिसे आतरिक ज्वरका नियमन हो जाता है और यदि उसे काबूमें रखते हुए विजातीय द्रव्य परावर्तित किया जाय तो रोग धीरे-धीरे दूर हो जाता है।

अगर शरीरमे पर्याप्त शक्ति हो तो मेहनस्नान विजातीय द्रव्यको फुप्फुस और उदरसे हटानेका सबसे अच्छा साधन है। वाष्पस्नान भी इसमें सहायक होता है, पर गर्मीके मौसिममें वाष्पस्नान न कराकर धूप-स्नान कराना अच्छा होता है। भोजनमें सावधानी और ताजी हवा तो अनिवार्य है ही। अगर रोग बहुत बढ गया हो तो मेहनस्नान बहुत उत्तेजक होता है इसलिए ऐसे रोगीको हल्का कटिस्नान कराना अच्छा होता है। पानीका तापमान ८१° से ८६° (फा०) तक हो और पानी स्नान करते समय कवोतक पहुच जाय। आरंभमें स्नान केवल पाच मिनटका हो और बाद-में अवस्थाके अनुसार समय बढाया जाय। स्नान दिनमें कई बार कराया जाय और शरीरमें कुछ बल आ जानेपर मेहनस्नान कराया जाय। ऐसा भी हो सकता है कि जीवशक्ति और शारीरिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेवाली क्षमता आरोग्य प्रदान करने योग्य मात्रामें न हो, फिर भी स्नानोंसे अवस्था-का कुछ तो उपशमन हो ही जायगा। अगर पाचन सुधार योग्य अवस्थामें हुआ तो आरोग्यलाभकी भी आशा की जा सकती है।

तीस वर्षकी एक महिलाने, जिसका रोग काफी बढ गया था, मेरी चिकित्सा आरभ की। वह लगभग सर्वदा, विशेषकर सोते समय, मुंहसे ही सास लिया करती थी। उसकी माता इसी रोगसे मरी थी और संतानोको इस रोगकी प्रवृत्ति उसीसे प्राप्त हुई थी। वाल्यावस्थामें यह महिला तथा उसके भाई-बहन गडमाला (स्काफुला) के शिकार हो चुके थे। २० वर्षकी अवस्थामें उसका चेहरा गोल और भरा हुआ था और गालोपर अस्वस्थतासूचक लालिमा थी जो जाडेके दिनोमें नीलिमामे परिवर्तित हो जाती थी। तीसकी अवस्था होनेके पूर्व ही उसका मोटापन जाता रहा और कपोलोंका वर्ण तथा शरीरकी अवस्था बहुत कुछ साधारण हो गई, पर इसके पश्चात् कुछ ही दिनोंमें यक्ष्माकी वृत्ति स्पष्ट होने लगी। कब्ज और अतिसार बारी-बारीसे रहने लगे और मलके रग और गधसे यह स्पष्ट हो गया कि पाचन विकृत हो गया है; सिर और दांतोमें तो प्राय. दर्द होता ही था, शरीरमें भी, विशेषकर सीने और कंधोंमें, चिलक हुआ करतो थी। यह दर्द फुप्फुसोंकी विनाश-क्रिया चलते समय ही होता है और उनके अशत. नष्ट हो जानेपर बंद हो जाता है। मासिक स्राव भी कष्टके साथ और अनियमित रूपमें होता था—कभी-कभी महीनों रुका रहता और फिर प्राय: होता रहता। इन सबके साथ अशक्तता, असतोष और नैराश्य तो बना ही रहता। मेरे आकृतिविज्ञानसे अपरिचित व्यक्ति उसे पूर्णतः स्वस्थ मानता। सुदर लाल रंग और भरा चेहरा किसी भी अनभिज्ञ व्यक्तिको धोखा देनेके लिए काफी थे। इस स्त्रीने अपनी अवस्था गभीर समझकर ही मेरी चिकित्सा आरभ की। मैंने उसे ठड लानेवाले स्नान तथा वाष्पस्नान करने, उत्तेजक आहारसे परहेज करने और अधिक-से-अधिक खुले स्थानमें रहनेकी राय दी। इस उपचार-से छ. ही महीनोमे उसकी हालत इस कदर सुधर गई कि वह जहा सीढ़िया चढने और थोडा-सा चलनेमे लस्त हो जाती थी वहा दूरतक चलना भी उसे कुछ नही मालूम होता था। उसका पाचन ठीक हो गया, सिरदर्द जाता रहा और मनमे सतोष और स्थिरता आ गई। यह सब इस कारण

हुआ कि विजातीय द्रव्य उदरकी ओर लौट आया। चिकित्साके प्रथम वर्षमें यक्ष्मिकाओंके विघटित होते समय दो वार उभार (क्राइसिस) प्रस्तुत हुआ जो लगभग दो-दो सप्ताह रहा। इस कालमे उसे कुछ निर्वलता जान पडी जो आरोग्यलाभकी प्रतिक्रियाकी सूचक थी। दूसरे वर्षमें उसकी हालत वहुत सुवर गई। इसमें भी दो वार उभार देख पडा। इस प्रकार लगभग दो वर्षोंमे वह विलकुल नीरोग हो गई।

चालीस वर्षके एक यक्ष्मीको चिकित्सकोने दक्षिण इटलीमे रहनेकी राय दी। रोग जीर्ण था इसलिए उसका उष्ण प्रदेशमें रहना उसके जीवनको एक वर्षके अंदर ही समाप्त कर देना होता। चार ही सप्ताहके उपचारके वाद उसकी हालत सुवरने लगी। उसके मूत्राशय और आतोमें जुकामके कारण सूजन हो आई। नौ वर्ष पहले यह रोग काफी अर्सेतक रह चुका था। हा, इस वार उसका रूप उतना उग्र नही था और जल्द ही अच्छा भी हो गया। शरीरकी शक्ति वढनेपर दवासे दवाए हुए रोग तीव्र रूपमें प्रकट होने लगे। उसको सूजाक भी था जो कई वार दवाया जा चुका था। यह दो सप्ताहमें ही विलकुल अच्छा हो गया। नियमित रूपसे उपचार चलाते रहनेपर एक सालमें वह पूर्णत. नीरोग हो गया।

दांतों और अस्थियोंका क्षय

इस रोगके वहुसख्यक रोगी मेरी चिकित्सासे अच्छे हो चुके है। लगभग सभी रोगियोको वाल्यावस्थामें अस्थिविकृति (रिकेट) थी जो परवर्ती रोग-क्षय—का पूर्व लक्षण है। शैशवावस्थामें ही उनकी हड्डिया नरम, क्षयशील और आसानीसे टूट जानेवाली थी। युवावस्थामें प्रवेश करनेपर या इसके कुछ पूर्व ही क्षय प्रकट हुआ—हाथ-पैरकी हड्डिया पूययुक्त होकर स्पजकी तरह फूलने लगी और सवियोका भी आकार वढ गया। कुछके हाथ या पैर काटे जा चुके थे और चिकित्सकोने रोग असाध्य कहकर जवाव दे दिया था। मेरा उपचार शुरू करनेपर रोगका परावर्तन आरभ हो गया पर कटे हुए अगोंके सवधमें लाचारी थी, उनको पूर्वरूप

प्रदान करना सभव नही था । मेरी समझमे शस्त्रोंका प्रयोग आरोग्यलाभ-का सबसे निकृष्ट उपाय है । इससे कभी कोई रोग या उसका कारण दूर नही होता । रोग तो तभी दूर होता है जब वह आनेवाले मार्गसे परावर्तित कर दिया जाय ।

एक लडकेके पैर घुटनेतक पूयमय हो गए थे । डाक्टरोने उन्हे कटवाकर अलग कर देनेकी राय दी, पर मेरे स्नानो और अनुत्तेजक आहारसे चार सप्ताहमे ही घाव भरने और चमडा आने लगा । छ मासमें उसके पैर अच्छे हो गए, सिर्फ दो-तीन छोटे-छोटे जख्म रह गए जो दो मासमें अच्छे हुए । उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया और मुखपर मुर्दनीकी जगह जीवन और उत्साह झलक मारने लगा । एक और लडकेके घुटनोमें क्षय आरंभ हो गया था और उसे भी डाक्टरोने पैर कटवा डालनेकी राय दी थी । नौ मासमे उसका विजातीय द्रव्य पैरोसे हटाकर उसके मूल-स्थान—उदर—मे पहुचाया गया जहासे वह जाघके एक फोडेसे निकलकर बाहर हुआ और लडका बिल्कुल चगा हो गया ।

दमा

पैंसठ वर्षकी एक स्त्री दमेसे इस कदर परेशान थी कि उसके चिकित्सकोने जिनकी दवाओसे उसकी हालत, विशेषकर पाचनशक्ति बहुत खराब हो गई थी, अतिम उपायके रूपमे उसे दक्षिणी प्रान्तमे रहनेकी राय दी । उनके पास इस बढे हुए दमेको अच्छा करनेका कोई उपाय नही रह गया था । सांस लेनेमे उसे इतना कष्ट होता कि वह दस कदम भी नही चल सकती थी । यह तो सभी लोग जानते है कि उष्णतर स्थानमें जानेके लिए कहनेका अर्थ चिकित्सकका यह कहना होता है कि 'आपके लिए अब हमारे पास कोई उपाय नही है ; कोशिश कर देखिए, शायद प्रकृति आपकी कुछ सहायता कर दे ।' उसके शरीरमे विजातीय द्रव्यका ऊपरसे दबाव अधिक था । मेरे उपचारसे कुछ ही दिनोमें दबाव कम पड गया और पाचन भी सुधर गया । पसीनेके रूपमे विजातीय द्रव्य काफी निकलता रहा । वह ठंड

लानेवाले स्नान बराबर और कभी-कभी वाष्पस्नान भी करती थी। कुछ ही दिनोमें उसके रोगका परावर्तन हो गया। आरोग्यलाभ करते समय वे सभी लक्षण प्रकट होते रहे जो रोगकी प्रगतिके समय हो चुके थे। विजातीय द्रव्यके बाहर हो जानेपर वह तीन मासमे ही नीरोग हो गई।

साठ वर्षके एक सज्जनको कई वर्षोंसे दमा था और उनके चिकित्सकोने उन्हें जवाब दे दिया था। दवा खाते-खाते वे बिलकुल नि शक्त हो गए थे। उपचारके आरभिक कालमें ही स्नानोंसे उनको आराम मालूम होने लगा, और चूकि यह आराम स्नान करते समय या उसके थोडी देर बाद-तक ही मालूम होता था इसलिए वे दिनमें कई बार, जितनी बार मैंने कहा था उससे कही ज्यादा, स्नान करने लगे। खासीसे उनको नीद नहीं आती थी इसलिए वे रातमें भी आधे घंटेका स्नान करते और एक घटेतक, जब-तक ताप बढनेके कारण खासी परेशान न करने लगती, आरामसे सोते। प्रत्येक स्नानसे उनकी शक्ति बढ जाती जिससे खासीके जरिए काफी गदगी बाहर निकला करती और यही उनको आराम मिलनेका कारण होता। हर महीने उनकी शक्ति बढती गई और कुछ ही महीनोमें उनके मृतवत् शरीरमें जान आ गई। एक ही वर्षकी चिकित्सासे वे पूर्णत नीरोग हो गए और आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि उनकी गंजी खोपडीपर बाल भी निकल आए जो बुढ़ापेके कारण सफेद थे।

वृक् रोग (ल्युपस)

मेरी उपचार-पद्धतिसे इस रोगके अनगिनत रोगियोके नीरोग होनेसे यह बात भलीभाति स्पष्ट हो जाती है कि इस रोगके संबंधमें भी मेरा रोगों-की एकतावाला सिद्धांत सत्य है। इस रोगका एक उदाहरण दे रहा हू जो बहुत दिलचस्प है।

एकतालीस वर्षकी एक महिला इस रोगसे आक्रात थी। जीवनके दूसरे वर्षमें टीका लगनेके पूर्वतक वह पूर्णत स्वस्थ थी, उसी समयसे उसका

कष्ट आरंभ हुआ। टीका लगनेपर उसकी त्वचाका स्फोट आरंभ हुआ जो अच्छा नहीं हुआ और दसवें वर्षमें वृक्करोग (मुखस्फोट) का रूप धारण कर लिया। वह तीस सालसे अधिक इस रोगसे पीडित रही। उसने बहुतसे विशेषज्ञोंसे भी राय ली, पर किसीसे कुछ सहायता नहीं मिली। उसकी शक्लकी तरफ देखनेसे भय मालूम होता था, वह जिधर जाती लोग घृणासे अपना मुंह फेर लेते। डाक्टरोंके रोग असाध्य कह देनेपर असहायावस्थामें वह मेरे पास आई। विजातीय द्रव्यका स्थान ऐसा नहीं था कि वहांसे उसको हटाना कठिन होता। मेरे आश्वासन देनेपर उसने उपचार शुरू किया और पद्रह दिनोंके अदर ही शक्लमें इतना परिवर्तन हो गया कि अब वह घृणास्पद नहीं रही। उसकी पाचनक्रिया भी, जिसकी ओर अभीतक ध्यान नहीं दिया गया था, बहुत कुछ सुधर गई। परिणाम यह हुआ कि उसके सारे शरीरसे विजातीय द्रव्य निकल गया और त्वचाका रूप साधारण हो गया। आरोग्य-लाभमें कम समय लगनेका कारण यह था कि विजातीय द्रव्य आगेके ही भागमें एकत्र हुआ था; पीठमें या बाईं ओर एकत्र होनेपर समय अधिक लगता है जिससे रोगी अधीर होने लगता है।

यौन रोग क्यों और कैसे होते हैं ?

सकोच छोड़िए, झूठी लज्जाको दूर भगाइए, क्योकि ये मनुष्यको बुरी तरह धोखा देनेवाले पर्देमात्र हैं। ये ऐसे पर्दे है जिनके पीछे, दृष्टिसे परे, बुराई अपने सारे घृणित भ्रष्टाचारोंके साथ अकुरित और पल्लवित होती है जो ज्ञान और व्यवहारबुद्धिके प्रकाशमे मुरझाकर अवश्य नष्ट हो जायगी। अगर मानवजातिके गुप्त रोगोका उल्लेख करना है तो खुल्लमखुल्ला और विना कुछ छिपाए करना चाहिए। यौन रोगोसे होने-वाली वुराइया इतनी व्यापक और अधिक है कि अगर मै उनके सबंधमें मौन रह जाऊ तो यह एक पाप ही होगा, क्योकि मुझे अपनी पद्धतिसे इन रोगोंके उपचारमें पूरी-पूरी सफलता प्राप्त हुई है। इन रोगोंके स्वरूपके सबंधमें जो अज्ञान फैला हुआ है उसके और विशेषकर औषधोपचारके कारण लोगोकी बहुत अधिक दुर्दशा हो रही है। सिर्फ इस कारणसे इस सबंधमें खुल्लमखुल्ला कहना आवश्यक हो गया है। यौन रोग पहलेसे अब बहुत बढ गए है, विशेषत उपदंश, जिसके हर साल लाखों आदमी शिकार हुआ करते है, सबसे अधिक दुर्दशाका कारण होता है।

प्राकृतिक पद्धतिके अलावा और जो पद्धतिया उपदंशके उपचारमें बरती जाती है वे सब बेकार साबित होती है। अधिक-से-अधिक यही होता है कि पारा या इस तरहकी और कोई चीज शरीरमें लगानेपर रोग कुछ दिनो-के लिए अतर्लीन हो जाता है, बाहर नही दिखाई देता जिसे दुर्भाग्यवश "आरोग्यलाभ" कहा जाता है और बेचारा रोगी भी ऐसा ही समझता है। यही बात अवर्णनीय अपकारका कारण हुआ करती है, क्योकि बहुतसे रोगी चिकित्सकके यह कह देनेपर कि अब रोग नही रहा, विवाह कर लेते है; पर विवाहजन्य दुष्परिणामोसे शीघ्र ही उनको पता चल जाता है कि उन्हे कैसा धोखा दिया गया है। शरीरमें अदृश्य रूपमें वर्तमान उपदंश

रोगवाले पुरुषसे सहवासके कारण पत्नीका स्वास्थ्य और जीवन खतरेमे पड जाता है। यौनसंबधमें अभावपूर्तिके तौरपर दोनोमें परस्पर कुछ अंशमे आदान-प्रदान होता है। अगर स्त्रीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही है तो अतर्लीन उपदश शीघ्र ही उसके शरीरमे पहुच जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह किसी-न-किसी रोगका शिकार हो जाती है। इस विवाहसे उत्पन्न बच्चे हमेशा अयोग्य रहते हैं, उनका उचित विकास कभी नही हो पाता। इसी कारण मै उपदशकी अतर्लीन अवस्थाको तीव्र अवस्थाकी अपेक्षा अधिक खतरनाक मानता हू, क्योंकि तीव्र अवस्थामे रोगीके शरीरपर ऐसे चिह्न वर्तमान होते है जो वास्तविक स्थितिका पूरा पता दे देते है।

औषधोपचारक उपदंशके अतर्लीन अवस्थामें होनेकी बात स्वीकार तो करते है, पर इसका निश्चय वे तब कर पाते है जब रोग लगातार कुछ कालतक अदृश्य रूपमे रहनेपर पुन. तीव्र रूपमें प्रकट होता है; इनकार करनेकी स्थितिमें न होनेपर लाचार होकर ही वे स्वीकार करते है। अगर स्थितिसे यह बात स्पष्ट न हो जाती तो औषध-विज्ञान रोगकी अंतर्लीन अवस्था माननेको कभी तैयार न होता।

अगर उपदश पुन. तीव्र रूपमे प्रकट न हो तो भी आकृति-विज्ञानके सहारे उसके अंतर्लीन रूपका फौरन पता चल जाता है। इसी प्रकार इसके सहारे यौन रोगकी प्रवृत्तिका भी बहुत पहले ही निश्चय कर उससे छुटकारा दिलाया जा सकता है। मै यौन रोगों—प्रदर, सूजाक, उपदश आदि —की तफसीलमे उतरना नही चाहता। उनके विभिन्न नामोसे हम लोगोको कोई खास मतलब नही, क्योकि सबका एक ही सामान्य कारण है। उनका रूपगत अतर व्यक्तिविशेषकी रोगप्रवृत्तिकी मात्रा यानी विजातीय द्रव्यकी स्थितिपर निर्भर है।

प्रकृतिने मैथुन और मलत्यागको जो एक इद्रियसे अशत. संबद्ध किया है वह कोई सयोगकी बात नही है। शरीर मलको इन्ही मार्गोंकी ओर ले जानेका प्रयत्न करता है। इस कारण इस भागमें विजातीय द्रव्य और

जगहोंसे अधिक जमा पाया जाता है। स्त्रियोमें यह वात स्पष्ट रूपमें देखी जा सकती है, इसलिए यौन-समागमके लिहाजसे यह वडे महत्त्वकी है। त्वचामें शोषणकी शक्ति होनेके कारण इस तेज स्रावका लेप आदिकी तरह शरीरमें पहुच जाना अनिवार्य है। इस प्रकार स्त्रीमे वर्तमान विकृत द्रव्य पुरुषमे और पुरुषमेंका स्त्रीमे पहुँच जाया करता है। अगर पुरुषमे विजातीय द्रव्यका दवाव अपेक्षाकृत अधिक रहा तो वह स्त्रीके शरीरमे मिलकर उसे पहलेकी अपेक्षा अधिक रोगी वना देगा।

एक वात और है जिसकी कुछ विस्तारके साथ व्याख्या करना आवश्यक है। यौनप्रवृत्ति एक ऐसा विपय है जो है तो सार्वजनिक, पर संतोपजनक रूपमें उसकी व्याख्या नही की गई है, इसलिए वहुत कुछ अस्पष्ट ही वना हुआ है। औपधविज्ञानसे इस प्रवृत्तिपर विशेष प्रकाश नही पड़ता, इसकी साधारण अवस्थापर उससे भी कम और इसे असाधारण रूप देनेवाले कारणोपर तो और भी कम प्रकाश पड़ता है; फिर भी पाठ्यग्रंथोमें कहा गया है कि शरीरमें आत्मरक्षणके वाद प्रजननकी प्रवृत्ति ही सवसे अधिक वलवती होती है। जीवनमें महत्त्वकी दृष्टिसे द्वितीय स्थान ग्रहण करने-वाले विषयको अप्राकृतिक, भोडी और कुत्सित वस्तुके समान घृणित समझ-कर उसपर विचार न करनेका कारण समझमें नही आता। और प्रवृत्तियो-की तरह ही यौनप्रवृत्ति भी शरीरमें विजातीय द्रव्यके अभाव या आधिक्य-के कारण साधारण और असाधारण हुआ करती है। यौनप्रवृत्तिके रूपसे स्वास्थ्यकी अवस्था विशेपकर रोगकी सुप्त अवस्थाका और अंगोपर रहन-सहनके तरीकेके पडनेवाले प्रभावका ठीक-ठीक पता चल जाता है। विजातीय द्रव्यका भार वढ जानेपर ही साधारण अवस्था असाधारण रूपमें परिणत होती है जिसके परिणामस्वरूप नाड़ियां उत्तेजित हो जाती हैं। यह दवाव यौनेन्द्रियको भी प्रभावित करता है जिससे यौनप्रवृत्ति वढ़ जाती है और इसके साथ ही पुंस्त्वकी मात्रा क्रमश. कम पड़ती जाती है। साधारण यौनप्रवृत्तिमें क्षुब्ध करनेवाली कामुकता या विचार नही आता, पर प्रवृत्तिका यह साधारण रूप स्वस्थ व्यक्तियोंमें ही रहता है और आहार

अनुत्तेजक और रहन-सहन प्राकृतिक होनेपर ही कायम रह सकता है। शरीरमे विजातीय द्रव्यका भार बढ जाने या रोगकी अतर्लीन या जीर्ण अवस्था आरभ होनेपर ही प्रवृत्ति असाधारण हुआ करती है।

जिस व्यक्तिका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा होगा वही यौन रोगोका शिकार होगा। इस प्रकार सूजाक, उपदश आदिके विषके शरीरमें पहुं-चनेपर एकमे रोगका सक्रमण होने और दूसरेमें न होनेका कारण स्पष्ट हो जाता है। मुझे ऐसी कई घटनाओका पता है जिनमें खतरेका रूप समान रहनेपर भी एकमें तो रोगका संक्रमण हो गया, पर दूसरेपर कोई असर नही हुआ। मुझे एक ऐसी स्त्रीका पता है जिसका सबध एक ही पुरुषके साथ बहुत दिनोतक रहा और उस पुरुषका भी किसी अन्य स्त्रीसे सबंध नही था। उस पुरुषके अन्यत्र चले जानेपर स्त्रीका सबध एक अन्य पुरुषसे हुआ। इन दोनो पुरुषोमे कोई भी रुग्ण नही था और किसी अन्य स्त्रीसे सबध भी नही था, फिर भी दूसरा पुरुष कुछ ही दिनोंमे उपदशका शिकार हो गया और तब भी स्त्रीपर इसका कोई असर नही हुआ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, एक व्यक्तिकी यौनेद्रियमें एकत्र विजातीय द्रव्य सहवास होनेपर दूसरेमें सीधे पहुच जाता है और मैदेके घोलमें खमीर मिलाये जानेकी तरह दूसरे व्यक्तिके द्रव्यपर असरकर खमीर पैदा कर देता है, विशेषकर उस हालतमें जब परस्पर आदान-प्रदानकी क्रियाद्वारा समीकरण होनेपर शरीरपर शाति और बल प्रदान करनेवाला असर होता है। इस क्रियासे शरीरकी जीवशक्ति इस कदर बढ जाती है कि वह उत्तेजित होकर सूजाक, उपदश आदि यौन रोगोंके रूपमे उभारकी अवस्था (क्रायसिस) उत्पन्न कर एकत्र विजातीय द्रव्यको बाहर निका-लनेका प्रयत्न करने लगती है। इन बातोसे प्राय होनेवाली उन घटनाओ-पर भी प्रकाश पडता है जिनमे कोई पुरुष अपनी पत्नीके साथ बहुत दिनों-तक यौनसबध रखनेके अनतर दूसरी स्वस्थ स्त्रीके साथ संयोगवश संपर्क हो जानेपर उपदशसे आक्रात हो जाता है। आदान-प्रदानकी क्रियाद्वारा पति-पत्नी दोनोंके शरीरकी अभावपूर्ति हो जानेके कारण सहवासका

उनमेंसे किसीके शरीरपर कोई असर नही हो रहा था, पर इस नये सहवासमें समीकरणकी क्रिया नये सिरेसे आवश्यक हुई जिसका परिणाम रोगके रूपमें प्रकट हुआ।

मैंने इन घटनाओका उल्लेख सिर्फ यह दिखानेके लिए किया है कि किस प्रकार यौन रोगोकी उत्पत्ति हुआ करती है और सक्रामक द्रव्यके दूसरे शरीरमें पहुचनेपर उसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है। मैं किसी भी रूपमें अवैध सबधके पक्षमें नही हूं, पर यहां मुझे रोग, उसके स्वरूप, कारण और उपचारपर विचार करना है इसलिए उपर्युक्त उदाहरण देने पडे है जो दुर्भाग्यवश व्यापक रूपमें पाये जाते हैं।

———

यौन रोगोंका स्वरूप और उपचार

यौन रोगके संबधमें पहले जो कुछ कहा गया है उससे हम इसी नतीजे-पर पहुचते हैं कि ये रोग आरोग्यलाभके लिए शरीरद्वारा उत्पन्न आरोग्य-प्रद उभारकी अवस्थाके अतिरिक्त और कुछ नही है। इसलिए स्वास्थ्य-लाभके निमित्त रोगके मूल कारण—शरीरमें एकत्र विजातीय द्रव्य—से छुटकारा पाना आवश्यक है, और तब इस कारणसे उत्पन्न सारी बुराइयां क्रमशः दूर होती जायगी। औषधोपचारपद्धतिकी भूल बहुत वड़ी वुराई करनेवाली सिद्ध हो रही है। औषधोपचारक समझते हैं कि हम इजेक्शन और दवाओ (खतरनाक जहर)—यथा विभिन्न रूपोमे पारा, आयोडिन, आयोडाथड आव पोटैशियम, आयडोफार्म आदि—के जरिए रोगको दूर कर देंगे, पर वस्तुत. वे रोगसे मुक्ति पानेके शरीरके प्रयत्नको दबा भर देते हैं। स्वभावत. इसका प्रभाव शरीरकी शक्तिके लिए, जो इस प्रकारका उपचार न होनेपर आरोग्यलाभके लिए उभारकी अवस्था प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो सकती थी, वहुत बुरा होता है। शरीरमें विपके प्रविष्ट होनेपर शरीरकी सारी शक्ति अगोकी रक्षा करनेके लिए विषको निष्क्रिय बनानेके प्रयत्नमे लग जाती और शरीरको रोगमुक्त करनेके कार्यसे विरत हो जाती है।

औषधोपचारक जिसे आरोग्य कहते हैं वह रोगकी प्राकृतिक अवस्था-की अपेक्षा शरीरको कही अधिक नुकसान पहुचानेवाला होता है, पर इसका वास्तविक रूप छिपा ही रहता है, क्योंकि यह कष्टहीन, भ्रामक, पर अतर्लीन या जीर्ण अवस्थामें पहुच जानेपर प्रलोभन और कपटका जामा पहन लेता है। इस हालतमें पूर्ववर्ती तीव्र रोगका कोई लक्षण विद्यमान न होनेके कारण लोग दुर्भाग्यवश इसे वास्तविक आरोग्यलाभ मान लेते हैं। अकाट्य प्रमाणोका समर्थन प्राप्त होनेके कारण इस प्रकारकी भयंकर भूल करनेवाली पद्धतिपर मेरा यह दोषारोप सर्वथा न्याय्य है।

दवाओके जरिये रोगको दवानेसे स्थितिमें वस्तुतः कोई सुधार नही होता, केवल आरोग्यका नकली रूप नजर आता है जिसमें रोग वढकर और हानिकारक हो जाता है। अगर हम किसी ऐसे व्यक्तिकी जीवशक्ति, जिसके अंग दवाओंसे निर्वल कर दिये गये है, लौटानेमें (जिसमें वर्षों भी लग जा सकते है)—सफल हो जाय तो जो लक्षण दवा दिये गये है वे कुछ नरम रूपमें कुछ कालके लिए पुनः प्रकट हो सकते है। मैंने अपने उपचारमें यह वात अनगिनत वार स्पष्ट रूपमें देखी भी है। मेरे स्नानोंके प्रत्युत्तेजक प्रभावसे इन रोगोकी ऐसी रोकथाम हो जाती है कि उनका भयकर रूप बिलकुल जाता रहता है। आरोग्य प्रदान करनेवाली उभारकी अवस्थासे किसीको डरनेकी जरूरत नही है। यह अवस्था शरीरमें विजातीय द्रव्यके फैलाव और औपधोपचारका स्वाभाविक परिणाम है।

मेरी पद्धतिसे सारे यौन रोगो, यहातक कि उपदंशकी भी, जिससे लोग बहुत डरते है, भयकरता जाती रहती है। मेरा दावा है कि मेरी पद्धतिसे यह रोग, जो औपधोपचारसे कभी अच्छा नही हो सकता, और रोगोकीतरह ही जड़-मूलसे गायव हो जायगा और इसका ऐसा कोई भी अनिष्टकर प्रभाव नही होगा जिससे रोगीकी भावी सततिको डरनेकी जरूरत पड़े। मेरा कथन अक्षरश. सत्य है, इसमें जरा भी अतिरजना नही है। साथ ही मैं यह भी कहनेके लिए तैयार नही हूं कि उपदशका प्रत्येक रोगी अच्छा हो ही जायगा। केवल ऐसे ही रोगी नीरोग हो सकते है जिनका पाचन सुधारके योग्य होगा। उपचार वहुत दिनोतक चलनेकी हालतमें भी जीवशक्ति और विजातीय द्रव्यकी स्थितिके अनुसार आरोग्यकी सभावना स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होने लगती है।

यौन रोगका प्रकट होना इस वातका सूचक है कि शरीरमें एकत्र विजातीय द्रव्यकी मात्रा वहुत अधिक है या रोग प्रक्षिप्त रूपमें था। अगर यह अच्छा न किया जाय तो दमा, फुफ्फुसीय विकार, क्षय, कर्कटिका, हृद्रोग, शोथ, सधिवात आदि रोगोका आरंभिक रूप होता है। अगर रोग रोगीमें प्रकट न भी हो तो इस मिथ्या औपधोपचारका दुष्परिणाम रोगी-

की संतानमें अवश्य देख पडता है। बहुत-सी निर्दोष माताए अपने बच्चोमें फुफ्फुसीय विकार, क्षय, गडमाला, अस्थिविकृति आदि रोग प्रकट होते देखकर इनके कारणका अनुमान भी नही कर पाती; क्योंकि रोगके वास्तविक कारणका उन्हे जरा भी ज्ञान नही होता और इसमें वे अपना भी कोई दोष नही पाती। उन्हे अपने पतिके यौन रोगो और सतानपर पड़े हुए उनके प्रभावका जरा भी पता नही होता। बच्चोंके प्रति मा-बापका यह बहुत बड़ा दुष्कर्म है। अस्वस्थ और निर्बल सतान ऐसा आईना है जिसमें हमारे सिद्धातोसे परिचित व्यक्तियोको मा-बापके प्रजननकालिक स्वास्थ का रूप स्पष्ट रूपसे प्रतिबिंबित देख पडता है।

प्रदर और सूजाक-जैसे आम तौरसे होनेवाले यौन रोगोकी अवस्थाका परीक्षण करनेपर हमारे विजातीय द्रव्यसबंधी सिद्धातको एक नया समर्थन प्राप्त होता है। इसमें प्रदाह होनेके साथ-साथ शरीरसे विकृत या विजातीय द्रव्य पूयके रूपमें बाहर निकलता है। खमीरकी उत्पत्ति अर्थात् ज्वरीय क्रियासे अदरके अग भी साथ ही आक्रात होकर उत्तेजित और प्रदाहित हो जाते है, पर मनुष्यको इस बातका ज्ञान नही होता कि वह किस प्रकार इस प्रक्रियाको अगोके लिए अहानिकर बनावे। इस स्थितिमे यह प्रक्रिया अपने असली मानेमें आरोग्यप्रद उभारकी अवस्था होगी। विजातीय द्रव्य जितनी अधिक मात्रामें बाहर निकलेगा उतना ही अधिक शरीरपर इस सफाईका असर होगा। ध्यान देनेका मुख्य विषय स्रावको यथासभव कष्टरहित और शरीरके लिए कम-से-कम अशांत करनेवाला बनाना है, पर साथ ही शरीरके किसी कार्यके सम्यक् रूपमे होनेमें किसी तरहका हस्तक्षेप भी नही करना है। विशेप अवस्थाका खयाल रखते हुए मेरे स्नानोसे सतोषजनक फल प्राप्त किया जा सकता है। आरोग्य-लाभमें लगनेवाला समय स्वभावत. विजातीय द्रव्यकी मात्राके अनुपातमे ही होगा।

जरा उन दवाओकी ओर ध्यान दीजिए जिनका प्रयोग यौन रोगोमें किया जाता है। औषधोपचारक सीसे, पारे, जस्ते और आयडोफार्मका

क्षयकारक घोल इजेक्शन या पिचकारीद्वारा मूत्रनलिका या योनिमें प्रविष्ट कर शरीरके लिए हितकर सिद्ध होनेवाले उसके स्रावकारी प्रयत्नको वलात् रोक देते हैं। दवाओका रूप ही उनके प्रयत्नका भ्रष्ट रूप प्रमाणित करनेके लिए काफी है। आश्चर्यकी वात तो यह है कि अवतक किसीके मनमें यह प्रश्न नही उठा कि दवाके जरिये स्राव वद कर देनेपर यह पूय कहां जाता है। विना किसी सुनिश्चित कारणके प्रकृति कोई काम नही किया करती। प्राकृतिक प्रक्रियाओको प्राकृतिक उपायोसे ही सहायता दी जा सकती है, जीवनकी अवस्थाके प्रतिकूल, उलटी दिशामे जानेवाली दवाओंसे नही।

औपधविज्ञानकी इस भयकर भूलके ही परिणामस्वरूप आज सर्वत्र पागलखानो, रुग्णालयो तथा स्वास्थ्यगृहोकी वाढ-सी नजर आ रही है। अगर चिकित्सकोकी दवाएं वस्तुत. लाभदायक होती तो इन सस्थाओकी संख्यामे वृद्धि होनेके वजाय दिनोदिन कमी ही होती देख पडती।

इस विपयको समाप्त करनेके पूर्व मैं दो रोगियोके उपचारका उल्लेख करना चाहूगा। कुछ दिन पहले पचास वर्पके एक व्यक्तिने भीपण हृद्रोगके संवंधमें मेरी राय ली। मेरी पद्धतिसे उपचार करनेपर एक ही पक्षके वाद उसका पूर्ववर्ती वृक्क-विकार प्रकट हुआ। इसके दूर होनेपर सूजाकका आक्रमण हुआ जो उसे अठारह साल पहले हुआ था। इन दोनो रोगोका रूप पहले-जैसा उग्र नही था। एक ही सप्ताहमे सूजाक भी अच्छा हो गया और रोगीका स्वास्थ्य आश्चर्यजनक रूपमें सुधरने लगा और हृद्रोग तो जड़-मूलसे गायव हो ही गया। उपचार चलते समय रोगीने मुझे वतलाया कि पहले उसे सूजाक हुआ और दो प्राध्यापकोके औपधोपचारका उसपर अच्छा प्रभाव हुआ—सूजाकके सारे लक्षण जाते रहे। कुछ वर्पोंके वाद सूजाक फिर उपटा, पर दवाओंके जरिये उससे छुटकारा मिल गया। दो वर्प वाद उसे वृक्क-विकार हुआ जिससे उसे वडा कष्ट हुआ। आठ प्रसिद्ध चिकित्सकोकी रायसे उसने दवाओंके जोरसे इसे ऐसा दवाया कि सारे भयोत्पादक लक्षण जाते रहे; पर कुछ ही दिन वाद हृद्रोगका आरभ

हुआ जिसपर किसी दवाका जोर नही चला और शोथ होनेकी आशका होने लगी। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि सूजाक अच्छा नही हुआ, शरीरके अदर दवा भर दिया गया और वादमें होनेवाले वृक्क-विकारकी भी ठीक वही हालत हुई। वही हृद्रोगका कारण बन गया और यदि मेरा उपचार न होता तो उसकी चरम परिणति शोथके रूपमें होती। मेरी पद्धतिसे आरोग्य-लाभ करनेपर उसे इन रोगोमें परस्पर सबध होनेका पूरा-पूरा विश्वास हो गया।

अब उपदशके एक रोगीका उदाहरण लीजिए। श्री......ने, जिनकी अवस्था सैंतालीस वर्षकी थी, उपदशके संवधमें मेरी राय ली जिससे वे दस वर्षोंसे पीड़ित थे। उन्होने बतलाया कि मैंने सुप्रसिद्ध चिकित्सकोंकी रायके मुताबिक रोगका चार बार उपचार किया जिसमे पारेका लेप प्रयोगमे लाया गया था। उन्होंने पोटैशियम आयोडायडका भी सेवन किया था। इस प्रकारके उपचारोंके बावजूद उपदशके लक्षण बार-बार प्रकट होते रहे और मुह तथा पैरोमें बराबर घाव होते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि एलोपैथीके प्रति उनका सारा विश्वास जाता रहा। एक विशेष कारण यह भी था कि पारेके इस्तेमालके वाद उनका स्वास्थ्य पहले-जैसा नही रह गया, उनके मस्तिष्कपर दवाव या भार मालूम होने लगा जिससे उनकी स्मरण-शक्ति कुछ क्षीण हो गई। आकृति-विज्ञानके सहारे मैंने देखा कि उनके शरीरमे विजातीय द्रव्यकी मात्रा बहुत अधिक है। और इसके अलावा दवाओंके विषके चिह्न भी प्रकट हो रहे हैं। यह बिलकुल स्पष्ट था कि पारेके प्रयोगद्वारा उपदश प्रक्षिप्त कर दिया गया है। मैंने दो-तीन बार स्नान चलाने और सादा प्राकृतिक आहार ग्रहण करनेकी राय दी। परिणाम अनुकूल हुआ और छः मासमे ही उनकी हालत विलकुल बदल गई। उनका पाचन बहुत अच्छा हो गया और चेहरेपर स्वास्थ्य और ताजगीकी झलक दौड़ आई। कारण दूर हो जानेपर उपदश भी पूर्णत चला गया और वह फिर कभी नही आयेगा।

ध्वजभग या नपुसकता

नपुसकतासे वढकर वर्तमान पीढ़ीके पतनका परिचायक और कोई विषय नही है। औषधविज्ञान इस रोगकी कोई दवा अवतक नही निकाल सका है। इसके वास्तविक रूपसे परिचित न होनेके कारण इस रोगके सवधमें वह विलकुल निरुपाय या असमर्थ वना हुआ है। औषधोपचारकोको इस वातका पता नही है कि शरीरमें विजातीय द्रव्यका अधिक मात्रामें एकत्र होना ही रुग्णावस्थाका कारण हुआ करता है। अगर शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त किया जा सके तो नपुसकता भी दूर हो जा सकती है। इस प्रकारके वहुतसे रोगी नीरोग किये जा चुके है और यदि दृढ इच्छाशक्ति और समझदारीके साथ मेरा उपचार चलाया जाय तो सफलता अवश्य मिलेगी। कारण दूर कर दिये जानेपर यौन अगोमें आयी हुई हर तरहकी खरावी दूर की जा सकती है। इसी प्रकार यौन प्रवृत्ति भी साधारण अवस्थामे लाई जा सकती है जिससे रोगमुक्त व्यक्ति ऐसी अवस्थामें पहुच जाता है कि स्वाभाविक यौनजीवन व्यतीत कर सके। हम प्रायः देखते है कि ऊचे-से-ऊचे नैतिक सिद्धात भी हस्तमैथुन-जैसी अस्वाभाविक यौनप्रवृत्तिकी अधिकताको रोकनेमें असमर्थ होते है। स्त्रियोकी क्लीवताको हम लोग वध्यात्वके रूपमे जानते है। वध्यात्व यौन अंगोकी वुरी वनावट या असामान्यताके ही कारण नही होता, अगोकी स्पदन-हीनताके कारण भी हो सकता है।

पुरुषोकी यौन प्रवृत्ति स्त्रियोकी प्रवृत्तिसे विलकुल भिन्न हुआ करती है, इसलिए पुरुषोंकी क्लीवताका रूप भी भिन्न ही हुआ करता है। इसके होनेके वर्षो पूर्व ही प्रवल और असाधारण रूपमें वढी हुई यौन इच्छाके रूपमें, जो जीर्ण रोगका परिणाम है, इसका निश्चित लक्षण देखा जा सकता है। वच्चों और नवयुवकोमें जननेद्रियके जीर्ण प्रदाहके कारण वडी उत्तेजना होती है और यही व्यापक रूपमें फैली हुई वुराई—हस्तमैथुन—का कारण है। प्रौढोमें हम इस उत्ते-

जनाको अस्वाभाविक रूपमें बढी हुई मैथुनेच्छाके रूपमे देखते है जिससे मन न्यूनाधिक रूपमें अप्राकृतिक कामुकतापूर्ण विचारोमें संलग्न रहता है। इसके कारण युवकोमे स्त्रियोके सामने झेंपनेकी प्रवृत्ति वढने लगती है जो भयके रूपमें परिणत होकर नपुसकता ला देती है। आज बहुतसे प्रथित लोगोको जो हम अविवाहित पाते है उसका कारण स्त्रियोंके सामने झेंपनेकी प्रवृत्ति ही है जो क्लीबताका परिणाम है। वहुतेरे व्यक्ति अपनी युवावस्थामें ही मैथुनके अयोग्य हो जाते है और इसका कारण यही होता है कि वे हस्तमैथुनके कारण नामर्द हो गये होते है। क्या अधिकांश आत्म-हत्याए या आत्म-हत्याके प्रयत्न इस अवस्थाके परिणाम नही है?

कुछ दिन पहले तेईस वर्षका एक नवयुवक, जो एक बहुत बड़ी रियासतका उत्तराधिकारी है, मुझसे मिला। वह बारह वर्षकी ही अवस्थासे हस्तमैथुन करता रहा था और अब इस लतसे अपना पिंड छुड़ाना चाहता था। दिन-रात उसके दिमागमे यही धुन बनी रहती थी। वह अपनी शक्ति-भर इस प्रवृत्तिसे सघर्ष करता था, पर पराजित होकर अपनेको इस दुष्कर्म-के हवाले कर दिया करता था। उसने वहुतेरे उपाय किये, पर कोई लाभ नही हुआ। उसकी इच्छाशक्ति इसे रोकनेमें समर्थ नही हो सकी। कभी-कभी कुछ महीनोतक इसे रोकनेके प्रयत्नमे वह सफल भी हो जाता, पर फिर इस प्रवृत्तिसे अभिभूत होकर इस व्यसनमे और भी गर्क हो जाता। आतरिक असंतोषकी भावनासे उसका हृदय भर गया था, वह अपनेको दुनियामे विलकुल वेकार समझता था और आत्महत्याका विचार लिये घूमा करता था। उसके मां-बापने उसका व्याह करना चाहा, पर नामर्दी-के कारण शादीकी ओरसे उसका मन बिलकुल फिर गया था। अतिम उपाय-के रूपमे उसने मेरी पद्धतिका सहारा लेने और इससे लाभ न होनेकी हालतमे विवाह न करनेका दृढ निश्चय कर लिया।

आकृतिविज्ञानद्वारा उसकी परीक्षा करनेपर यह जान पडा कि उसकी नामर्दीका कारण मदाग्नि है जिससे छुटकारा पाना पहला काम था। अवस्था नई होनेके कारण शरीरकी प्रतिक्रिया जल्द होनेकी आशा थी,

इसलिए मैंने उसे अच्छा परिणाम होनेका आश्वासन दे दिया। उसने जी-जानसे मेरी पद्धतिका अनुसरण किया और कुछ ही महीनोंमें उसकी हालत बहुत सुधर गई। अनुत्तेजक आहारके सहयोगसे मेरे स्नान, जो रोगके मूल कारणपर आघात करते हैं, बहुत प्रभावकर सिद्ध हुए। लगभग तेरह मासमें नपुंसकता और हस्तमैथुनकी लत—दोनो, और रोगोकी ही तरह, आसानीसे दूर हो गयी।

मधुमेह, अश्मरी, परिसर्प, कामला तथा वृक्क, मूत्राशय, यकृत आदिके रोग और उनका उपचार

इतने रोगोको, जिनमे साधारण व्यक्तिको आरभनें कोई सामान्य बात नही देख पड़ेगी, एक श्रेणीमे रखना बिलकुल बेतुकी बात जान पड़ेगी। प्रचलित औषधोपचार-पद्धतिके चिकित्सकोंकी दृष्टिमे ये सभी अलग-अलग रोग है और सबका अलग-अलग विशेष उपचार है, पर मेरी पद्धति-के ताल(लेंस)के सहारे देखनेपर सामान्य मूल कारण और घनिष्ठ पार-स्परिक संबंध बिलकुल स्पष्ट हो जाएगा।

इन सभी रोगोंका मूल कारण विजातीय द्रव्यका शरीरमें एकत्र होना ही है और इस स्थलपर हमें विशेष रूपसे उसके ऐसे लदावपर विचार करना है जो शरीरसे मल निकालनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले अंगो—वृक्को और त्वचा—की क्रियाको प्रभावित करता है। आमाशयमें पाचन-की क्रिया चलते समय बननेवाली गैसके—जिसे आध्मान कहते है—कारणका विचार भी इसीके अतर्गत आता है।

मूत्रक्षय

यह गैस एक ओर तो पाचन-प्रणालीमें फैलकर और आंतोकी कृमि-वत् आकुंचन क्रियासे सहयोग कर खाद्यको आगेकी ओर ढकेलती है और दूसरी ओर उडने और फैलनेवाली भापके रूपमें होनेके कारण पाचन-प्रणालीके पर्देको सीधे पारकर सारे शरीर और रक्तमें प्रवेश कर जाती है। एक उदाहरणसे यह बात भलीभाति स्पष्ट हो जाएगी। पृथ्वीकी सतहपर जल समुद्रो, झीलो, नदियो आदिके रूपमें सीमित क्षेत्रोके अंदर

रहता है जिससे मानवशरीरकी रक्तनलिकाओंकी तरह ही पृथ्वीतलपर भी जल-प्रवाहक नलिका-सस्थान प्रस्तुत हो गया है। इन जलाशयोंके अलावा जल वाष्पके रूपमें भी पृथ्वी और वायुमडलमें व्याप्त होता रहता है। शरीरमें पहुचनेवाले खाद्य और पेयकी भी ठीक यही हालत होती है। प्रत्यक्षरूपमें तो वे विशेष भागो और अगोंमें ही पहुचते हैं, पर उनका कुछ अश वाष्पके रूपमें सारे शरीरमे व्याप्त हो जाता है। यही कारण है जिससे शराव पीनेपर उसका असर जल्द ही सारे शरीर, विशेप-कर मस्तिष्कपर दिखाई देने लगता है, हालां कि त्वचाके प्रकृत रूपमे कार्य करते रहनेपर गैसका कुछ अश पसीनेके रूपमें और सासके जरिए भी वाहर निकल जाता है। पसीना निकलने और न निकलनेपर भी गैस वाहर निकलती रहती है। हर एक आदमीके पसीनेकी गध भी अलग-अलग होती है। जीर्ण विजातीय द्रव्य घुला हो तो उसकी गध वुरी होती है। शरीरके अदर इस तरहकी गैसें मूत्रप्रणालियो (यूरेटर)से होकर मूत्रा-शयमें पहुंचती है। इस प्रकार स्वेद और मूत्र लगभग एक ही जैसे स्राव है। मूत्राशयके भरनेके साथ ही पेशाव करनेकी जरूरत महसूस होती है और यदि शरीरको हानिसे वचाना है तो इसमें देर भी नही करनी चाहिए।

यह विपय इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे यों ही चलता नही किया जा सकता। दुर्भाग्यवश लज्जा और आजकलके रीति-रिवाज इस संवध-मे हमें जैसा कार्य करना चाहिए वैसा नही करने देते। ऐसी हालतमें अगर मूत्राशय और वृक्कोमें कुछ मल, जिसे वाहर निकल जाना चाहिए था, रुका रह जाय तो कोई आश्चर्यकी वात नही है। अगर हम वच्चोको, जिनमें पदार्थोंका परिवर्तन प्रौढोकी अपेक्षा अधिक तीव्रताके साथ होता है और जीवशक्ति भी अधिक होती है, हानिकारक और शायद खतरनाक परिणामसे वचाना चाहते है तो उन्हे मलमूत्रके त्यागकी इच्छा पूरी करने-से कभी नही रोकना चाहिए। अगर मूत्राशयसे मूत्र ठीक समयपर वाहर न निकले तो शरीरके अन्य पदार्थोकी तरह ही उसमें परिवर्तन जारी रहकर खमीर वनने लगेगा। मूत्राशयका ताप वढ़ जानेसे मूत्रका तरल अश वाष्प

बन जाएगा और लवण शेष रह जाएगे। इससे वृक्कोंका स्राव मूत्राशयमे जानेसे रुक जायगा और उसमें भी परिवर्तन होगा। अगर मूत्राशय और आंतको खाली करनेकी इच्छा अविलंब पूरी नही हुई तो पीछे वह कम पड़ जाती है और तब अपने इच्छानुसार मलमूत्रको बाहर निकालना कठिन हो जाता है। इस हालतमें मूत्राशयमें जो मूत्र रहता है उसकी मात्रा कम पड जाती है; क्योकि उसका कुछ अंश किसी-न-किसी रूपमें शरीरमे पुनः पहुच जाता है—विकारकी क्रिया बराबर जारी रहनेके कारण मूत्र पुन वाष्पमें परिणत होकर पाचनक्रियाकी तरह सारे शरीर और रक्तमे पहुच जाता है। वाष्प बननेकी प्रक्रियामें लवण आदिके कण स्फट-के रूपमें मूत्राशय और वृक्कोमें रह जाते है जो पीछे—प्राय सब नही—बाहर निकल जाते है। अगर खुर्दबीनसे इन्हे देखा जाय तो अलग-अलग ये पीले रगके होते है, पर एक साथ मिले होनेपर कुछ लालिमा लिए हुए-से देख पड़ते है। अगर मूत्राशयका भार विशेप रूपसे बढ़ जाय तो यही प्रक्रिया अश्मरीका कारण हो जाती है।

अश्मरी

शरीरकी अवस्था असाधारण या अप्राकृतिक होनेपर ही अश्मरी-का निर्माण होता है। वह ठीक उसी प्रकार बनती है जिस प्रकार खारा पानी उबालनेपर नीचे लवण जम जाता है। वृक्कोमें रुका हुआ मूत्र वाष्प बन जाता है और बचे हुए कण आपसमे मिलकर स्फट-जैसे बन जाते है। अश्मरी बहुत छोटी होनेपर मूत्रके साथ मूत्र-प्रणालियोसे होकर मूत्राशयमे पहुंच जाती है और इसमे कोई कष्ट भी नही जान पडता, पर अगर अश्मरीका आकार बड़ा हो गया हो तो मूत्रप्रणालियोसे गुजरते समय वृक्कोमे भयकर शूल होता है—अश्मरीकी तेज और स्फट-जैसी सतह मूत्रप्रणालियोकी कलाको क्षुब्ध और क्षत कर देती है। मूत्राशयमें भी यही प्रक्रिया चलती है। अगर उदरमें विजातीय द्रव्य अधिक मात्रामें जमा हो जाय तो मूत्रमार्ग सकीर्ण हो जाता है और तब अश्मरीका बाहर

निकलना कठिन हो जाता है। इस हालतमें अश्मरी वडे डलेका रूप धारण कर लेती है और वरावर गतिशील रहनेके कारण गोल हो जाती है, पर उनकी बनावट स्फट-जैसी ही रहती है।

मूत्रके रुकनेपर अश्मरीका वनना कोई जरूरी नही है। ऐसा भी हो सकता है कि सारा मूत्र परिवर्तित होकर विजातीय द्रव्यके रूपमें जमा हो जाय। इस हालतमें यह व्रणग्रथि (नीडुल) या अन्य प्रकारके रोगका रूप धारण कर सकता है। कुछ दिन पहले मैंने एक लड़केका उपचार किया था जिसका सारा शरीर मटरके दानो-जैसी व्रणग्रथियोंसे भरा हुआ था। जुकाम होनेकी हालतमें उसे कई दिनोतक पेशाव नही उतरा था। मैंने उसे वतलाया कि अगर पेशाव रुकनेके कारण ये ग्रथिया वनी है तो उन्हें पुन. मूत्रके रूपमें परिवर्तित करना पडेगा। उपचार आरभ करनेपर उसे कई दिनोतक वहुत अधिक मात्रामें पेशाव होता रहा। ग्रथियोंके एका-एक गायव हो जानेसे उसकी माताको वडा आश्चर्य हुआ। वच्चेमें जीव-शक्ति अधिक होनेके कारण ग्रथिया पुन. पूर्व रूपमे परिवर्तित होकर अल्पकालमें ही वाहर निकल गयी।

अतिसार, कोष्ठवद्धता और मधुमेह

अतिसार और कोष्ठवद्धता भी शरीरमें विजातीय द्रव्यकी वृद्धिके ही परिणाम है। वही मूत्रस्राववाली हालत इनकी भी है; अतर सिर्फ यह है कि इनमें रुकावट सीधे नही जान पड़ती, त्वचाके असाधारण रग, परिसर्प, सिरदर्द, अर्वुद, अश्मरी आदिके द्वारा इनका पता चलता है। एक प्रकारसे ये अन्य रोगोंके आरंभिक रूप हुआ करते है।

मधुमेह, जो अतिसारसे वहुत कुछ मिलता है, आसानीसे पहचानमें आ जाता है। इसमें आतरिक ज्वरके कारण जो प्रदाह होता है और जिसके कारण मधुमेहके रोगीको कष्टदायक प्यास लगती है वह कोष्ठवद्धता न उत्पन्न कर या अश्मरी या अर्वुदका निर्माण न कर शरीरसे द्रव्यको तेजी-से वाहर कर देता है और रसोंको विकृत कर विभिन्न तत्त्वोंमें विभक्त कर

देता है। जो मूत्र बाहर निकलता है वह विकृत, खमीरके रूपमें और मीठा होता है। अश्मरी और मधुमेह एक ही जैसे रोग हैं, केवल इनके वाह्य रूपमें अतर होता है। इन रोगोसे ग्रस्त लोगोके लिए मेरे स्नान बहुत लाभदायक होते हैं। वे आंतरिक प्रदाहको दूर कर प्यासका शीघ्र ही अत कर देते है।

अश्मरी और मधुमेह—दोनो रोग एक ही विधिसे कारण दूर कर अच्छे किए गए है। अश्मरी छोटे-छोटे टुकडोमे विभक्त हो जाती है जो पेशावके साथ आसानीसे बाहर निकल जाते हैं। अश्मरीके रोगियोको स्नानोपचार चलाते समय बहुत अधिक पेशाब होता है जो उनके आश्चर्य-का कारण होता है। जो मूत्र वाष्प बनकर विजातीय द्रव्यके रूपमे शरीरमे एकत्र हो गया रहता है वही पूर्वरूप धारणकर अपने पुराने मार्गसे बाहर निकलता है। मुझे कुछ रोगी ऐसे मिले है जिन्हें स्नानोपचारके समय ही ठीक तरहसे पेशाव होता था। रोगका कारण दूर हो जानेपर मूत्राशय धीरे-धीरे अपनी साधारण अवस्थामें आ जाता है।

सम्राट् प्रथम विलियमके मूत्राशयमें बहुत बडी अश्मरी थी, फिर भी वह ९० वर्षकी अवस्थामे मरा। कारण यह था कि विजातीय द्रव्य ऐसे स्थानपर एकत्र हुआ था जहां वह अधिक हानिकारक नही सिद्ध हुआ। यह रोग उसके पुत्र सम्राट् फ्रेडरिकमें बहुत पहले और अधिक उग्र रूपमें प्रकट हुआ।

मूत्रक्षयकी अवस्थामें, जिसमे रक्त और सारे शरीरमें मूत्रमें पाए जानेवाले घुलनशील समिह (यूरिया) पाए जाते है, अश्मरी और मूत्रा-शयसबधी विकार आम तौरसे पाए जाते है। आकृति-निदानमें कुशल व्यक्तियोसे यह विकृति आरभिक अवस्थामें भी, जब कि रोगीको इसका ज्ञान नही होता, छिपी नही रह सकती। मेरे स्नानोंके सिवा और कोई उपचार रक्त और शरीरको उतनी शीघ्रतासे इनसे मुक्त नही कर सकता।

सोते समय मूत्रत्याग

सोते समय पेशाव उसी अवस्थामे हुआ करता है जब उदरपर विजा-तीय द्रव्यका भार अधिक होनेके कारण रोगी पेशाब रोकनेमें असमर्थ

होता है। मूत्राशयमें नासूर-सा हो जाता है जिसके जरिए पेशाब निकल जाया करता है। यह स्थिति प्रायः रोगको दवाओ या अप्राकृतिक उपचारके जरिए दवा देनेके कारण उत्पन्न होती है। इसके तथा आंतके नासूरके बहुतसे रोगी मेरे उपचारसे कुछ ही दिनोंमें आरोग्यलाभ कर चुके हैं। रोगके जीर्ण हो जाने या दवाओंके कारण क्षति पहुचनेकी हालतमें ही आरोग्यलाभमे अधिक समय लगनेकी सभावना रहती है।

मूत्राशयका प्रतिश्याय

मूत्राशयका प्रतिश्याय मूत्राशयके विषम विकार और अश्मरीकी आरंभिक तीव्र अवस्था है। इसमें मूत्राशयके साथ मूत्रप्रणालीमे भी प्रदाह होता है जिससे पेशाब उतरनेमें बहुत कष्ट होता है। मेरी पद्धतिसे यह अन्य तीव्र रोगोकी तरह ही बडी आसानीसे अच्छा किया जा सकता है, क्योंकि इसका भी वही कारण होता है जो अन्य रोगोका।

कुछ दिन पूर्व मैं एक रोगीको देखने गया जो पद्रह दिनोंसे इस रोगसे ग्रस्त था। उसकी पौरुपग्रथि सूज गयी थी और पेशाब उतरनेमें बड़ी तकलीफ हो रही थी। दस-दस मिनटपर मूत्राशयमें ऐंठन-जैसी वेदना होती थी और पेशाब उतरनेमें कठिनाईके साथ कष्ट भी बढता जा रहा था। उसके चिकित्सकने कैथेटर (पेशाब उतारनेकी नली) लगानेका प्रस्ताव किया जो पौरुपग्रथिकी सूजनका खयाल करते हुए असभवप्राय था। चिकित्सकने क्लोरोफार्मका प्रयोग करना चाहा, पर रोगीने अपनी असहमति प्रकटकर मुझे बुला भेजा। पहले ही स्नानसे दस-दस मिनटपर होनेवाली ऐंठन दूर हो गई और आधे घंटेतक स्नान चलानेपर विना किसी कष्टके पेशाब उतर गया। पंतालीस मिनटतक स्नान करनेके बाद रोगी सो गया। रात्रिकालमें बहुत अधिक पसीना निकला और पेशाब भी विना कष्टके अधिक मात्रामें हुआ। इस प्रकार कुछ ही दिनोमें मूत्राशयका प्रतिश्याय दूर हो गया।

यकृतविकार, पित्त-अश्मरी और कामला रोग

यकृत-विकार, पित्त-अश्मरी और कामला रोग मुख्यतः उन्ही लोगोको होते है जिनके दाहिने भागमे विजातीय द्रव्यका भार अधिक होता है। यकृतका स्राव—जिसे पित्त कहते है—पक्वाशय (डूडेनम) मे पहुचकर पाचनको प्रभावित और खमीरकी उत्पत्तिमे कमी करता है। दाहिनी ओर विजातीय द्रव्यका भार बढ़नेसे यकृतपर इसका असर पडता है और उसके स्रावमें बाधा पडती है। बाईं ओर भार बढनेपर जो पसीना निकलता है उसमे और दाहिनी ओरके भारके कारण निकलनेवाले पसीनेमें मात्राकी दृष्टिसे बहुत अतर होता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्यके भारके अनुसार ही पित्त-अश्मरीका निर्माण तथा यकृतमें काठिन्य होता है। ऐसे सभी रोगियोको पसीना कम निकलता है, उसमें बदबू होती है और पैर भी पसीजते हैं। पित्तका विश्लेषण और उसका वाष्प तथा खमीर बनना त्वचाके काले रगसे, जिसको 'यकृत-चिह्न' कहते है, बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। यही बहुतोमे बढकर कामला रोगका रूप धारण कर लेता है। मेरे उपचारसे यह रोग बहुत जल्द अच्छा हो जाता है।

पैरोंका पसीजना

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यकृतके विकारसे इस रोगका बहुत अधिक सबध है, इसलिए पैरोसे बहुत अधिक पसीना निकलनेपर वर्षो पहले यह सकेत मिल जाता है कि दाहिनी ओर विजातीय द्रव्यका भार बढ रहा है। यकृत और पित्ताशयका रोग बढनेपर पसीनेका निकलना बद हो जाता है और तब रोगीकी हालत और भी खराब हो जाती है; क्योकि पैरोसे जो मल और विकार पहले निकलता था वह अब शरीरमें ही रह जाता है और परिसर्प, कर्कटिका आदि अनेक रोगोके रूपमें प्रकट होता है जिन्हे दूर करना कठिन और समयसाध्य होता है। दवाओंके जरिए इस पसीनेको रोकनेसे रोगीके स्वास्थ्यको बहुत अधिक क्षति पहुंचती है। औषधोपचारका दुष्परिणाम बहुत दिनोतक प्रकट नही होता और किसी

वुरे रोगका रूप धारण करके ही प्रकट होता है। विकृत प्रस्वेदको दवाओके जरिए कृत्रिम रूपसे रोकना किसी वडे नगरकी मुख्य मल-प्रणालीको, जिसमें वहुत-सी छोटी-छोटी मलकी नालिया आकर मिलती है, रोकनेके समान है। यह सत्य है कि मुख्य मल-प्रणालीका मुह वद करके उससे निकलनेवाली वदवू वद कर दी जा सकती है, पर इससे सारे नगरकी हालत वहुत खराव हो जा सकती है—सव जगह महामारी उत्पन्न करनेवाली दुर्गंध भर जायगी। खेदकी वात है कि प्रचलित औषधविज्ञान इस रोगको दूर करनेके लिए क्रोमिक, सेलिसायलिक एसिड आदिका प्रयोग करनेकी राय देता है जो वहुत हानिकारक है। मेरी पद्धतिसे यह कष्टकर प्रस्वेद आप-ही-आप वद हो जाता है, क्योकि इसके मूल कारणका ही अत हो जाता है।

परिसर्प और अन्य चर्मरोग

चर्मरोगोका भी एक सामान्य कारण है, चाहे स्फोटका रूप जैसा भी हो। मुझे वहुसख्यक रोगियोंके उपचारमें सतोषजनक सफलता मिली है और वरावर इस मतकी पुष्टि हुई है कि पैर या शरीरके पसीनेको दवानेके ही कारण ये रोग वढे हुए रूपमें प्रकट हुए है। ये रोग अन्य दवाए हुए रोगोकी जीर्णावस्थाके सूचक होते है इसलिए इनके उपचारमे अधिक समय और समझदारी आवश्यक होती है। परिसर्प (हर्पीज) नामक रोग सूखा या स्राववाला भी होता है। सूखा अच्छा करना और कठिन होता है। वच्चोको यह रोग अकसर होता है जिसका कारण मातापितासे प्राप्त विजातीय द्रव्य या किसी रोगका, विशेपकर टीकेसे उत्पन्न रोगका दवाया जाना होता है। इन रोगोंके स्वरूपके स्पष्टीकरणके लिए केवल दो उदाहरण काफी होगे।

पहला रोगी दूसरी वार टीका लेनेके समयमे ही चर्मरोगसे ग्रस्त था और यह रोग सारे शरीरमें फैल गया था। उसको रातमें सोते समय दस्ताने पहनने पडते थे और हाथ भी वांध दिए जाते थे कि कही वदन न

खरोंच डाले। पाजामे और ओवरकोटके पाकेटोसे भी वह बराबर रगड़ा करता था। वह अपने साथियोके साथ खेलने न जाकर पढनेमे समय व्यतीत करनेका प्रयत्न करता था जिससे उसकी हालत और खराब होती जा रही थी। अवस्थाके साथ उसका रोग भी बढता ही गया। दिनोदिन उसका दिल बैठता गया और अवस्था यहांतक पहुच गई कि वह मृत्युकी कामना करने लगा। मेरी रायके मुताबिक उसने मेरा ठढ लानेवाला स्नान दो बार लेना शुरू किया और आहार भी सयत और अनुत्तेजक रखने लगा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही उसकी हालत सुधरने लगी और स्फोट भी ठीक होने लगा। कुछ ही दिनोमे उसका टीकेसे उत्पन्न चर्मरोग बिलकुल अच्छा हो गया।

दूसरा व्यक्ति भयकर पामा (एक्जिमा) से परेशान था। उसकी अवस्था चौबीस सालकी थी। सिर और गर्दन विशेष रूपसे आक्रात थे। लेप और दवाओसे उसे कोई लाभ नही हुआ जिससे औषधोपचार-पद्धति-मे उसका जरा भी विश्वास नही रह गया था। निदान करनेपर विजातीय द्रव्यका भार साम्नेकी ओर देख पडा। मेरी पद्धतिसे उपचार आरंभ करनेपर कुछ ही कालमें उसका पाचन ठीक हो गया और रोगकी हालतमे भी सुधार देख पडने लगा। तीसरे ही दिन स्राव बंद हो गया और सोलह दिनोमें स्फोटका नामोनिशान भी नही रह गया। इसी अरसेमे गलेकी मोटाई भी डेढ इच घट गई। विजातीय द्रव्य, जो गलेकी मोटाई और पामा या उकवथका कारण था, आंतो और वृक्कोके रास्ते काफी मात्रामे निकल गया।

हृद्रोग और शोथ

हृदयके रोगोकी सूची वहुत लवी है। प्रचलित औपधोपचार-पद्धतिके अनुयायी प्रत्येक रोगके विशेप लक्षणोके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे उनका उपचार किया करते है। इन रोगोका वर्गीकरण भी किया गया है—यथा,—हृदय और हृत्कपाटिकासवधी आगिक रोग और हृद्विकार-के लक्षण जो वहुत कुछ क्षणिक कारणोसे उत्पन्न हुआ करते है; किंतु अगर इन रोगोंके कारणोपर निष्पक्ष होकर विचार किया जाय और उनकी व्याख्याके लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओकी ओर ध्यान दिया जाय तो हम निश्चयपूर्वक इसी परिणामपर पहुचेगे कि सभी हृद्रोगोका मूल कारण हृदयपर विजातीय द्रव्यका एकत्र होना है। इसलिए इस कारणसे उत्पन्न होनेवाले रोगोका वर्गीकरण निरर्थक ही है। हृदयकी अवस्थापर—उसकी हानिकारक प्रभावोंके निरोधकी शक्तिके न्यूनाधिक विकासपर—ही किसी रोगका हलका या गंभीर होना निर्भर है। उदाहरणार्थ, अगर विजातीय द्रव्यका भार दाहिनी ओरकी अपेक्षा वायी ओर अधिक हो तो रोगके गभीर होनेकी सभावना अधिक रहेगी। अगर पैतृकरोग-प्रवृत्तिके कारण हृदयकी रचना दृढ न हो तो वह इस विजातीय द्रव्यके भारका निरोध नही कर सकेगा।

हृदयपर विजातीय द्रव्य जमा होनेपर इस लदावके साधारण लक्षण भी देख पडते है। हृदयका परिवेप्टन करनेवाले भागोपर ही यह लदाव, जो प्राय वसाके रूपमे होता है, नही लक्षित होता, हृदयकी पेशिया भी प्राय. इस द्रव्यको जज्व कर लेती और मोटी पड़ जाती है जिससे वे अपना कार्य साधारण रूपमें करनेमे असमर्थ हो जाती है। यह कोई जरूरी नही है कि हर हालतमें पेशियोका आकार वढ़े ही; प्राय ऐसा होता है कि इस विजातीय द्रव्यके भारके कारण पेशियोंके तन्तु (टिसु) कडे, घने और

तनावदार हो जाते है जिससे उनकी कार्य करनेकी शक्ति मद पड जाती है। प्राय. सभी लोग जानते है कि त्वचामे कही सूजन होनेपर सारे शरीर-को अपना कार्य करनेमे वाधा पडती है। हृदयके सबधमे भी यही वात होती है। पेशियोपरका विजातीय द्रव्यका लदाव उसकी क्रियाशीलताके ह्रासके रूपमें ही व्यक्त होता है। हृदयको अधिक श्रम करनेकी जरूरत पडनेपर—किसी तरहका आघात पहुचने, कोई अप्रत्याशित या उत्ते-जना उत्पन्न करनेवाली घटना घटित होने या शरीरका श्रम वहुत बढ जानेपर या यो कहिये कि हृदयकी ओर रक्तका प्रवाह साधारणसे अधिक हो जानेपर—हमें स्पष्ट रूपसे यह अनुभव हो जाता है कि हमारा यह अग ऐसे अवसरोका सामना करनेके योग्य नही है। ऐसी स्थितिमें हृदय-की बढी हुई धड़कन, चिंता, रक्तप्रवाहका रुक जाना, जड़ता, सांस लेने-मे कठिनाई आदि बाते देखी जा सकती हैं। साधारणतः इनके कारण अधिक कष्ट नही होता, कुछ अधिक या थोडी देरके लिए लस्त कर देनेवाली सुस्ती जान पड़ती है और ऐसा मालूम होता है जैसे कोई हृदयको दबा रहा हो।

हृत्कपाटिकामें भी इसी तरह खराबी आती है। विजातीय द्रव्यका भार बढ जानेपर यह अपना काम समुचित रूपमे नही कर पाती। लदावके कारण इसकी सतहका रूप बदल जाता है जिससे यह निलयके द्वारपर ठीक-ठीक नही बैठती। निलयके संबंधद्वारकी आकृतिमें अतर आ जानेपर भी हृदयमें खराबी आ सकती है। दोनो हालतोंमें कारण एक ही होता है।

हृदयकी नाड़ीसंवधी विकृति वस्तुतः बहुत वडा मौलिक 'आविष्कार' है। जैसा कि नाड़ीसंबधी रोगोके विषयमें पहले भी कहा जा चुका है, नाडियोके विकृत होनेपर ही कोई अंग रुग्ण हो सकता है। यह खयाल करना कि केवल अगविशेष रुग्ण और नाडियां पूर्ण रूपसे स्वस्थ अथवा नाड़िया विकारग्रस्त और सारा शरीर स्वस्थ हो सकता है, प्रकृति और प्राकृतिक नियमोको गलत रूपमें समझना होगा। मेरे लिए तो यह बिल-कुल अतीतकी बात है। आज हम निश्चयात्मक रूपमे जानते है कि सैकडों

बाह्य रूपोवाले हृदयके रोगोका एक ही सामान्य कारण होता है—शरीरमें विजातीय द्रव्यका अधिक मात्रामे एकत्र होना।

शोथ

अगर हृद्रोगका कारण दूर न किया जाय या शरीरके अदर अधिक विजातीय द्रव्य और दवाओंके जरिये विष पहुचाया जाय तो हालत और खराब हो जायगी, शोथ हो जायगा। शोथ उन पूर्वरोगोका चरम रूप हुआ करता है जो अच्छे नही किए गए होते। शोथमे शरीरमे पाया जाने-वाला जल विजातीय द्रव्यका ही परिवर्तित रूप हुआ करता है। यह रोग इस बातका द्योतक है कि शरीरकी अवस्था ऐसी नही रह गयी है कि वह शुद्ध रक्त उत्पन्न कर सके या जो रक्त विद्यमान है उसकी सफाई कर सके। परिणाम यह होता है कि जिन रसोसे रक्त बनना चाहिए था वे विजातीय द्रव्यके प्रभावसे खमीर बन जाते हैं और इस प्रकार उनका रूप परिवर्तित हो जाया करता है। और किसी रोगमें विजातीय द्रव्यका विभिन्न रूपोमें परिणत होना इतनी स्पष्टताके साथ नही देखा जा सकता। कुछ दिन हुए शोथका एक रोगी मुझे मिला था। उसका शरीर पानीसे इस कदर भर गया था कि वह ठीक रबरके फूले हुए नल-जैसा देख पड़ता था। भीतरकी ओरसे पानीका दबाव इतना अधिक था कि वह पैरोंके चर्मसे बराबर निकलता रहता था जिसका परिणाम यह होता था कि वह जहा बैठता वहांकी जमीन तर हो जाया करती थी। उसके सबवकी विशेष बात यह थी कि वह मक्खनका व्यापारी था और रोज बहुत-सा मक्खन नमूनेके तौरपर भेजा करता था। उसके पैरसे निकले हुए पानीसे मक्खनकी गध इस कदर आती थी कि उसका मूल कारण स्पष्ट होनेमे कोई सदेह नही रह जाता था। कुछ दिनोमें उसका आमाशय बिना रोटी या इस तरहकी किसी चीजके खाया हुआ मक्खन, जो नमूना भेजते समय चखकर देखना पडता था, पचानेमें अशक्त हो गया। मक्खनका अधिकांश न पचनेके कारण विजातीय द्रव्य बनने लगा। बायें पार्श्वके बल सोनेसे

यह द्रव्य उसी ओर एकत्र होने लगा। हृदयमे, उसके आस-पास और न्यूनाधिक रूपमे सारे शरीरमे मेद एकत्र हो गया। पहला परिणाम हृदयके विकारके रूपमे प्रकट हुआ जो वर्षों बना रहा। अतत. इस विजातीय द्रव्यकी विकृति जलके रूपमें प्रकट हुई।

हृदयका विकार सभी अवस्थाओंसे गुजर चुका था। पहले इसे धडकन, फिर हृदयकी नाड़ीका विकार और तब वसाजन्य अपकर्ष कहा गया। इनके अनतर हृत्कपाटिकाकी विकृतिकी अवस्था आई और उसके बाद हृदयके चारो ओरके अगोमे जल भर आया और अंतत. शोथ अपने असल रूपमे प्रकट हुआ। रोगी उपचारकी विभिन्न पद्धतियोका प्रयोग कर चुका था। अतमे मेरे पास आया जब कि उसका रोग भीषण रूप धारण कर चुका था और हालत बहुत खराब हो चुकी थी। उसमे मेरा उपचार ठीक तरहसे चलानेकी शक्ति भी नही रह गई थी। तरह-तरहकी दवाए और विष दिए जा चुके थे। रोगकी प्रत्येक अवस्थाको एक नया नाम देकर किसी-न-किसी नये उपचारका प्रयोग होता गया था।

शरीरमें जल एकत्र होनेका कारण उदरके तन्तुओका गलना है जो प्रायः बहुत धीरे-धीरे बढनेके कारण शीघ्र लक्षित नही होता। सांस लेनेमे कठिनाई और हृदयपर दबाव पडनेपर ही यह रोग स्पष्ट होता है। अगर रोगके विरुद्ध शरीरकी प्रतिक्रिया आरभ हो जाय और रोगीमें जीवशक्तिका प्रयोग करनेकी सामर्थ्य हो तो गलनेकी क्रिया तीव्र रोगका रूप धारण कर लेती है। रोग बहुत बढ जानेपर गलनेकी तप्त अवस्था रोगीको इतना निर्बल कर देती है कि रोग असाध्यप्राय हो जाता है। अगर रोगीमे इतनी जीवशक्ति शेष हो कि उसे प्रधानता प्राप्त हो सके तो वह प्रदाहका अत करनेमे समर्थ हो जायगा।

एक सज्जन वर्षोंसे इस रोगसे ग्रस्त थे। ऐलोपैथीसे उन्हे जरा भी लाभ नही हुआ था। सारा शरीर फूल गया था और पैर ठीक दूने हो गए थे। इतनेपर भी उनको केवल सांस लेनेमे कष्ट होने और पैरोंके भारीपनकी शिकायत थी। वे अभी मजेमे चल-फिर लेते थे। मैंने उनसे साफ-

साफ कह दिया कि रोग असाध्य हो गया है इसलिए मेरा उपचार शुरू न करें, पर उन्होने हठ किया और मेरे विरत करनेके प्रयत्न करते रहने-पर भी उन्होने उपचार आरभ कर दिया। कुछ हफ्तोतक आशासे अधिक हालत ठीक रही, ज्यादा पसीना और पेशाव आनेके कारण जलकी मात्रा शीघ्रतामे कम होती गयी जिससे उन्हें वडी प्रसन्नता हुई, पर अभी रोग-से उत्पन्न जल ही वाहर हुआ था, अव जल एकत्र होनेके कारणसे छुटकारा पानेका शरीरका कार्य शुरू हुआ। यह अदरकी गलनेकी क्रिया थी जिसकी ओर ध्यान नही गया था। इसे तीव्र अवस्थामें लानेपर ही रोगसे पिंड छूट सकता था। अगर शरीरमे पर्याप्त जीवशक्ति शेप होती तभी वह इस विकार-को उत्पन्न करनेवाले विजातीय द्रव्यको दूर कर सकता था अन्यथा आत-रिक ताप शरीरको खा जाता। उपचारका परिणाम पहला न होकर दूसरा ही हुआ जैसा कि मै पहले कह भी चुका था। तीसरे सप्ताहमें जीर्ण गलन-क्रियाका परिवर्तन दाहिने पैरमें प्रकट हुआ। उसमें प्रदाह वढता गया और अतमें घुटनेसे नीचे अगूठेतकके हिस्सेमें, जो दूसरे ही दिन काला पड गया था, चर्मस्फोट होकर खुला व्रण हो गया। गलनेकी क्रिया, जो भीतर चल रही थी, अव वाहर आ गयी और उनको असह्य पीडा होने लगी। चौथे सप्ताहमें काला पडा हुआ अग एक मोटे चर्मखडके रूपमें पृथक् हो गया और घाव भरने लगा। रोगीके शरीरका, जो अभी मोटा ही था, आंतरिक ताप वढने लगा जो इस वातका सूचक था कि विघ्वस-क्रियाका रूप-परिवर्तन अभी चल ही रहा है। पहला परिणाम तीव्र प्यासके रूपमें प्रकट हुआ। उपचारका प्रत्युत्तेजक प्रभाव विध्वस-क्रिया तथा आंतरिक तापका अत नही कर सका जो रोगीकी क्रमशः वढती हुई निर्वलतासे स्पष्ट था। अव रोगीमें स्नानोपचार चलानेकी भी शक्ति नही रही। उनतीसवें दिन वेहोशी आई और उसके दूसरे ही दिन उसका प्राणात हो गया।

एक और सज्जन इसी रोगमे वहुत दिनोसे ग्रस्त थे और उनका रोग भी गभीर था, पर कुशल यही थी कि उन्होने होमियोपैथी पद्धतिका सहारा

लिया था और बहुत कम मात्रामे दवा खाई थी। तीन ही हफ्तेमे शरीर-का मारा पानी निकल गया और चौथे सप्ताहमे शरीरके अंदर बहुत अधिक गर्मी मालूम हुई। दूसरे दिन उनके शरीरसे बड़ी बदबू निकली और पाखाना भी काला हुआ जो अतिसार या हैजेके मलके रगका था। यह तीन दिनोतक चलता रहा। परिवारवाले इसका कोई कारण नही बतला सके, क्योकि रोगीका आहार बहुत कम था। उनकी स्त्री घबडाई हुई मेरे पास आयी। मैंने उसे समझाया कि इस उभारके प्रकट होनेके कारण अब उनके लिए कोई खतरा नही रहा। उनका शरीर गलन-क्रियाका ही अंत करनेमें समर्थ नही हो गया था बल्कि विजातीय द्रव्यको बाहर करने योग्य भी हो गया था। पहले तो वे उभारके कारण बहुत दुर्बल और लस्त-से हो गए, पर जल्द ही आरोग्य लाभ करने लगे। अब वे ठीक वैसे ही स्वस्थ है जैसे बीस वर्ष पहले थे। उनके नीरोग हो जानेका कारण यह हुआ कि उनका शरीर विध्वस-क्रियाका जीर्णसे तीव्र अवस्थामे परिणत होना सहन करनेमे समर्थ था।

शोथ तभी अच्छा हो सकता है जब जलवाले भागसे आप-ही-आप खूब पसीना निकल सके। इसी हालतमे जल या अन्य विजातीय द्रव्यका नि.सरण होकर पाचन ठीक हो सकता है। जीवशक्ति कम हो जानेकी हालतमे शोथ असाध्य हो जाता है, क्योकि इस हालतमें शरीर विजातीय द्रव्यको बाहर नही निकाल सकता और पाचनका स्थायी रूपसे सुधार भी नही हो सकता। मेरे आकृतिविज्ञानके सहारे वर्षो पहले इस रोगके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं और उपचारद्वारा इसका असाध्य रूप ग्रहण करना रोका जा सकता है।

एक सज्जन चौबीस वर्षोसे बटाविया (जावा) में निर्यात व्यापारका कार-बार कर रहे थे। उनके कथनानुसार उनका स्वास्थ्य काफी अच्छा रहता था, सिर्फ कभी-कभी ज्वर हो जाता, आखें आ जाती और पैरोमे फोडे भी हो जाया करते थे। इन लक्षणोंसे यह स्पष्ट था कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था, विजातीय द्रव्य शरीरमें भरा हुआ था। यह पहले शरीरके एक ही

भागमें जमा हुआ और गर्म आवहवाके कारण जल्द खमीर बन गया। इस प्रकार रोग तीव्र अवस्थामें परिणत हो गया। १८७६ में सिरके पिछले भागमें बायें कानकी जडके पास काफी सूजन हो गई जो त्रिपैली दवाके जरिये दवा दी गई। कुछ दिनोंके पश्चात् रोग दूसरे रूपमे प्रकट हुआ—एक उगली सूज गई और उससे बहुत-सा पूय निकला, यहातक कि अस्थिका कुछ अश भी गल गया। उगली अभी पूरी तरहसे ठीक भी नही हुई थी कि आतोसे बहुत-सा खून गिरा जो इस बातका सूचक था कि बवासीरकी कोई गाठ फट गई है। इसके कुछ ही दिन बाद बाए पैरमें फोडा हुआ जिससे बहुत दिनोतक पूय निकलता रहा। उनके हाथ-पैर बहुत ठडे रहते थे, ठडा पसीना निकलता था और प्राय ज्वर भी हो आता था। ये सब किसी गहराईतक पहुचे हुए रोगके लक्षण थे। १८८२ मे पहलेसे भी तेज ज्वर हुआ जो बहुत दिनोतक बना रहा। उनके चिकित्सकने इसे कुष्ठ रोगका लक्षण बतलाकर उन्हे यूरोप जानेकी राय दी। यूरोपके कुष्ट-विशेपज्ञोने भी इसे कुष्ठ ही माना। उन्होने कई प्रख्यात चिकित्सकोसे उपचार कराया। इन उपचारोसे उनकी ताकत तो कुछ बढी, पर शरीरमे जहां-तहा लाल धब्बे निकल आए। जावा लौटनेपर गर्म आवहवाके कारण काफी पसीना निकलता रहा और धब्बे भी गायब हो गए, पर कुछ ही दिन बाद हृदयकी गडबड़ी शुरू हो गई और तेज ज्वर भी रहने लगा।

इस स्थितिसे यह स्पष्ट था कि रोगका कारण दूर नही हुआ था। यूरोपकी ठडी आवहवामे वह जीर्णावस्थामें परिणत होकर अदृश्य हो गया था जो जावा पहुचनेपर तीव्र रूपमें परिणत हो गया। दूसरी बार यूरोप आनेपर धब्बे फिर निकल आए और विशेपज्ञोके उपचारके बावजूद उनकी हालत दिनोदिन खराब ही होती गई। १८८९ मे वे एक जरूरी कामसे फिर जावा गए, पर रोग इतना जीर्ण हो गया था कि इस बार वहाकी गर्म आवहवाका उनपर कोई असर नही हुआ और पैरोमे पानी भी आ गया। वे किसी तरह फिर यूरोप पहुचे, पर चिकित्सकोंने कह दिया कि रोग असाध्य हो गया है।

एक पुराने परिचितकी रायसे उन्होने नैराश्यकी अवस्थामें मेरा उपचार आरभ किया। विजातीय द्रव्यके आधिक्यके कारण उनके शरीर-की आकृति बिलकुल बदल गई थी। गलेपर विजातीय द्रव्यका एक पिंड--गलगड—बन गया था और गला धड़मे इतना धस गया था कि उसका कुछ ही भाग देख पडता था—दोनोकी सीमा बिलकुल लुप्त हो गई थी। ललाटपर एक इच ऊची सूजन थी, आखोके चारो ओरके हिस्से तो सूजे हुए थे ही, सारा सिर भी विजातीय द्रव्यके लदावसे काफी बढ गया था। दाहिने घुटनेके नीचे गलनेकी क्रिया जारी थी और पैरोमे ज्यादा पानी आ जानेके कारण वे कष्टसे ही उनका इस्तेमाल कर पाते थे। वृक्को, आतो आदिके ठीक तरहसे काम न करनेके कारण पाचन बहुत खराब हो गया था। बेचैनी बराबर रहती थी, हाथ-पैर बर्फकी तरह ठडे रहते थे और रग नीला पड गया था।

उपचार आरभ करनेपर शीघ्र ही सुधारके लक्षण नजर आने लगे—पाचनका सुधार होने लगा; आते और वृक्क कुछ कार्य करने लगे; पेशाब पहले हलका और साफ होता था, वह अब गाढा और गदला निकलने लगा जो इस बातका सूचक था कि उसमें विजातीय द्रव्यकी मात्रा अधिक रहती है। दूसरे ही दिन रोगीको कुछ आराम मालूम हुआ, हाला कि कुछ क्लाति जरूर मालूम हुई जो विजातीय द्रव्यको निकालनेमे लगने-वाली शक्तिके कारण थी। बहुत अधिक मात्रामे पसीना भी निकलने लगा जो आरोग्यलाभमे सहायक हुआ। शीघ्र ही बाह्य रूप-रगमें भी परिवर्तन होने लगा, क्योकि विजातीय द्रव्य बड़ी तेजीसे बाहर निकल रहा था।

गलनेकी क्रियाका अत होना भी एक मनोरंजक दृश्य था। वह हिस्सा पहले गाढ़ा भूरा और तब नीलापन लिए लाल हो गया। यह चार इच चौडाईमें था। पैर और भी मोटा हो गया जिससे विजातीय द्रव्यका खमीर बनना और रूप बदलना स्पष्ट हो गया।

उनमे जो उभार प्रस्तुत हो रहा था वह बहुत गभीर था, पर उनकी अच्छी जीवशक्ति उन्हे सभाले रही। चलने-फिरनेमें समर्थ न होते हुए

भी जलवाले स्थानसे काफी पसीना निकलता रहा जो उनके शरीर-की प्रतिक्रियाशक्तिका स्पष्ट प्रमाण था। चार सप्ताहमें शरीरका सारा जल निकल गया और सूरत-शक्लमे इतना परिवर्तन हो गया कि पहचानना भी कठिन हो गया। रोगसे छुटकारा मिल जानेपर उदासी और निरुत्साहका स्थान प्रसन्नता और स्फूर्तिने ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार औषधोपचार-पद्धतिके निदान और उपचारके बिल्कुल निकम्मा होनेका एक और प्रमाण मिला।

सुषुम्नाके रोग—उसका क्षय, अर्श

सुषुम्नाका कोई भयकर रोग प्रकट होनेके पहले बहुत दिनोतक जीर्ण अस्वस्थताकी अवस्था बनी रहती है। आकृतिविज्ञानके सहारे वर्षों पहले रोगकी प्रवृत्ति, इसके भावी रूप और नाडियोपर विजातीय द्रव्यके एकत्र होनेके कारणोंका पता चल जाता है। विजातीय द्रव्यका भार बढनेकी हालतमे—रोगी विवाहित हो या अविवाहित—प्राय शुक्रपात हुआ करता है। यह शुक्रपात नाडियो—विशेषकर सौषुम्निक मज्जा और इडावातनाडीके जीर्ण प्रदाहका ही परिचायक होता है जो पृष्ठ-भाग-पर विजातीय द्रव्यके भारके कारण उत्पन्न होता है। प्रदाह बराबर बढ़ता जाता है और नाड़ियोकी निरोध-शक्ति दिनोदिन कम पडती जाती है जिससे अतमे रोगीके अग उसके नियन्त्रणसे बाहर हो जाते हैं। यह लक्षण सबसे पहले पैरोमे देख पडता है। शुक्रपातके साथ-साथ विकारके और भी चिह्न प्रकट होते हैं। बहुतोमें कटिदेशमे एक विचित्र सकुचनकी-सी अनुभूति होती है जो लदावकी स्थितिके अनुसार कुछ भिन्नता लिए होती है। कभी-कभी कमरके भीतरी हिस्सेमे कुछ ठड भी जान पडती है। रोग बढ़ जानेपर कमरमे प्राय. तेज चिलक होती है और कभी-कभी नाडी-पीड़ा या कमरकी सधिमें दर्द भी होता है जो बहुत कष्टकर होता है।

सुषुम्ना नाडीके रोग कई रूपमे प्रकट होते हैं। लदावमे एकरूपता होनेपर, जो इस प्रकारके विकारमें प्रायः देखी भी जाती है, तांडव तथा अन्य कई रोग होते हैं।

सौषुम्निक मज्जाका रोग बहुत बढ जानेपर प्राय. असाध्य हो जाता है। इस हालतमे उपचारसे अधिक-से-अधिक यही हो सकता है कि रोगी-को पीडासे छुटकारा मिल जाय। अगर पाचनमें कुछ सुधार होनेकी

गुंजाइश हो तो यह कार्य आसानीसे हो जा सकता है। इससे रोगीको अदर शाति मालूम होगी, नीद आ सकेगी और भूख भी लगा करेगी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आकृतिविज्ञानकी मददसे इस रोग-के अतिम रूपकी प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नही रह जाती; उसकी रोक-थामके लिए पहले ही उपचार आरभ कर दिया जा सकता है। सुपुम्ना-सबधी ये खराबिया मामूली रोगोकी तरह आसानीसे दूर कर दी जा सकती है, पर अगर रोग बहुत बढ गया है और औषधोपचारका सहारा लिया गया है तो आरोग्यलाभ बहुत कठिन हो जाता है। जो इमारत आग-की लपेटमे पूरी तरह आ गई है उसे भस्मसात् होनेसे बचाना प्रायः असभव ही होता है।

मैंने सुपुम्नाके रोगसे ग्रस्त बहुतसे व्यक्तियोका उपचार किया है, पर सबको नीरोग करनेमें समर्थ नही हो पाया हू; बहुतोको आशिक लाभ-से ही सतोप करना पडा है। इन लोगोने औषधोपचारका सहारा लेकर अपने अगोको इतना नि शक्त बना डाला था कि बडी सावधानीके साथ उपचार करनेपर भी उन्हे पूर्णत नीरोग नही किया जा सका।

एक युवक सुपुम्नाके रोगसे बेतरह परेशान था। उसके दोनो पैर निश्चेष्ट हो गए थे। एक वर्पसे अधिक कालतक वह विशेपज्ञोका उपचार करता रहा, पर उसे कोई लाभ नही हुआ। वह अपने पैरोको हिला-डुला भी नही सकता था, यहातक कि वह खडा भी नही हो सकता था। चौबीस वर्पकी अवस्थामें ही वह असहायावस्थामें बिस्तरपर पडा रहता था; कही जाना आवश्यक हुआ तो कुर्सीपर बैठाकर ले जाया जाता था। उसका पाचन बिलकुल खराब हो गया था—कृत्रिम सहायता लिए बिना आते जरा भी काम नही करती थी। उसे पेशाब हो जाता था, पर उसे इसका पता भी नही चल पाता था। कही ले जानेके लिए कुर्सीपर बैठाते समय उसके पैरोको उसकी स्थितिके अनुसार ठीक कर देना पडता था।

पहले मैंने रोज चार बार ठंडा स्नान कराना शुरू किया और खाने-

को केवल शुष्क प्राकृतिक आहार दिया जाने लगा। उसकी पाचन-शक्ति विलकुल क्षीण हो गई थी, इससे पहले महीनेमे कोई विशेष सुधार नही देख पड़ा, पर दूसरे महीनेंमें सुधार स्पष्ट रूपमें देख पडने लगा। दो महीने बाद उसमें पेशाबपर नियन्त्रण करनेकी शक्ति आ गई और पैरोकी हालत-मे सिर्फ इतना सुधार हुआ कि वह उन्हे थोड़ा-थोडा इधर-उधर हटाने लगा और नौकरकी सहायता लिए बिना ही कुछ देरतक खडा भी रहने लगा। नौ मासके उपचारसे उसकी स्थिति यहातक सुधर गई कि वह बिना किसीकी सहायता लिए कमरेमे कुछ टहल-फिर लेनें लगा। दो महीने बाद पैर बिलकुल काबूमे आ गए। उसका सौषुम्निक रोग, जो विजातीय द्रव्यके भारसे उत्पन्न हुए आंतरिक तापके कारण था, ठीक उसी तरह दूर हो गया जिस तरह साधारण रोग दूर हुआ करते हैं।

इस रोगीके उपचारसे यह भी स्पष्ट हो गया कि पृष्ठ भागमे बढे हुए भारसे उत्पन्न रोगोको दूर करना कितना कठिन होता है। उसका उपचार आरभ करते समय, आरोग्य-लाभकी बात तो दूर रही, मै यह भी अनुमान नही कर सका था कि उसकी अवस्था सुधर सकेगी, क्योकि पाचन बिलकुल खराब हो गया था और आरभमे सुधारका कोई लक्षण नही देख पडा। उसके असाधारण अध्यवसायसे ही आरोग्यलाभ संभव हो सका। अगर उसनें कुछ दिन पहले मेरा उपचार शुरू किया होता तो उसके पैर नियत्रणसे बाहर न हुए होते और आसानीसे आरोग्यलाभ हो गया होता।

एक व्यक्ति, जिसकी अवस्था सैंतालीस वर्षकी थी, सुषुम्नाके क्षय-से बहुत दिनोसे पीडित था। औषधोपचारसे उसे जरा भी लाभ नही हुआ था। विजातीय द्रव्यका भार इतना अधिक था कि वह बड़ी कठिनाईसे चल पाता था। प्रायः कटिवात और शूल-जैसी पीडाका आक्रमण हुआ करता था। वह पूरी तरह सो भी नही पाता था जिससे उसे कई दिनोतक विश्राम नही मिल पाता था। पाचनशक्ति बहुत क्षीण हो गई थी और शरीरकी स्थिति भी खराब ही थी। पहले ही महीनेमें उपचारका अच्छा

प्रभाव देख पड़ा। अनिद्रा दूर हो गई और तरह-तरहकी पीड़ाओंसे भी उसे मुक्ति मिल गई। पाचन-शक्ति भी कुछ बढ़ गई, पर पैरोंमें अभी कमजोरी बनी हुई थी जिससे आरोग्य-लाभकी उसे बहुत कम आशा थी। वह अनिद्रा और पीड़ाओंको स्वतंत्र रोगोंके रूपमें मानता रहा था और समझता था कि सुषुम्नाके रोगसे उनका कोई संबंध नहीं है। आहारसंबंधी नियमोंका पालन कठिन समझकर उसने दस महीने बाद उपचार छोड़ दिया। कुछ ही दिनोंमें उसकी हालत और खराब तथा नैराश्यजनक हो गई।

जो सुधार हुआ था उसे रोगीको बहुत बड़ी सफलता समझना चाहिए था, केवल इसलिए नहीं कि उसकी हालत और खराब नहीं हुई, बल्कि इसलिए कि कष्टदायक लक्षण शीघ्र ही दूर हो गए थे। धैर्य और अध्यवसायके साथ उपचार चलाते रहनेपर और तकलीफें भी धीरे-धीरे दूर हो गई होतीं।

अर्शका भी सुषुम्नाके रोग और पृष्ठभागके लदावसे ही संबंध होता है। यह रोगीकी जीर्णावस्थाका सूचक है और उसके होनेका कारण उदरका अधिक प्रदाह है। इस प्रकारके रोगियोंका पाचन अवश्य खराब होता है; उदरके अर्बुदका खमीर बनना इस बातका प्रमाण है कि शरीरकी आरोग्यदायक जीव-शक्ति बहुत क्षीण हो गई है।

सत्रह सालका एक लड़का, जिसको पाचनसंबंधी रोग था, मेरी राय लेने आया। उसके कथनसे मालूम हुआ कि ग्यारह सालकी अवस्थासे ही उसे अर्श है और आंतोंसे खून जाता रहता है। पंद्रह वर्षकी अवस्थामें अर्श गायब हो गया और उसे भयंकर सिरदर्द शुरू हो गया जिसपर किसी भी दवाका कोई असर नहीं हुआ। अंतमें उसके सिरके पिछले भागमें गांठें निकल आईं और सिरका आकार भी बढ़ने लगा जिससे यह स्पष्ट हो गया कि सिरमें कोई चीज इकट्ठी हो रही है जो पहले वहां नहीं थी, पर इस बातका किसीको भी गुमान नहीं था कि अर्शकी वही ग्रंथियां अधिक कठिन रूपमें सिरमें प्रकट हुई हैं। आकृति-विज्ञानसे परिचित व्यक्तिके

लिए यह समझना कठिन नही था। भयंकर सिर-दर्द ही किसी कठिन कारणके मौजूद होनेका पर्याप्त प्रमाण था, पर दुर्भाग्यवश किसीको उसकी पहचान नही थी। बेचारी माताको अपने अल्पवयस्क पुत्रमें वही भयकर रोग देख पडा जिससे उनचालीसकी ही उम्रमें उसके पतिकी मृत्यु हुई थी। कोई भी उपचार प्रभावकर सिद्ध नही हुआ। रोग दिनोदिन उस-पर हावी होता गया। वह इस भयकर सिरदर्दके कारण काम करने योग्य तो रह ही नही गया था, कभी-कभी मूर्छित भी हो जाने लगा। इसी दयनीय अवस्थामें वह मेरे पास लाया गया।

पृष्ठभागमे लदाव होनेके कारण कभी-न-कभी भेजेमे प्रदाह होना निश्चित था। उसनें नियन्त्रित आहारके साथ-साथ ठडा स्नान और व्या-याम नियमित रूपसे चलाया जिसका बहुत अच्छा परिणाम देख पडा। पहले ही सप्ताहमें सिरदर्द चला गया; सिर्फ सिरकी गाठोंके विघटनके समय कभी-कभी थोडी देरके लिए दर्द हो जाता था। पाचन और भूखमें सतोषजनक रूपमे वृद्धि हो गई और आरोग्य लाभ होते-होते बाहर और भीतरकी गाठें बहुत कुछ दूर हो गईं और सिरका आकार भी कुछ घट गया। बादके दो मासमें गाठें और भी कम हो गईं और उसके बाद छ: मासमे तो उनका नामोनिशान भी नही रहा।

शीघ्र ही एक परिवर्तन आरभ हुआ जो देखनेमे बहुत खराब जान पडा। उसकी माताने बतलाया कि अर्श पुनः अपने पूर्व रूपमें प्रकट हो गया है। मैंने उसे समझाया कि सिरमे जो गांठें थी वे ही वहासे हट कर फिर अपने पहले रूपमें परिवर्तित हो गई हैं। जिस प्रकार भेजेका क्षय अच्छा किया गया है उसी प्रकार इस अर्शको भी, जो भेजेके क्षयका आरंभिक रूप है, अच्छा करना पडेगा। इससे माताका सदेह दूर हो गया और एक सालके उपचारसे अर्श रोग पूर्ण रूपसे दूर हो गया।

रक्ताल्पता और हरित् रोग

(१)

समाजके सभी वर्गोंमें आज रक्ताल्पता और हरित् रोगकी शिकायत सुननेमें आ रही है। इतनी दवाओंके मौजूद होते हुए भी धनी या निर्धन, नवयुवक या वृद्ध कोई इससे बचा नहीं है। उच्च वर्गके लोग ही, जिन्हें डाक्टर सुलभ हैं, इन दवाओंका—विशेषकर अंडा, मास-मछली, शोरवा सुरा आदि पौष्टिक आहारके रूपमें—इस्तेमाल करते है।

आधुनिक औषध-विज्ञानको अपनी प्रगतिपर बड़ा नाज है। रसायनशास्त्र और शरीर-क्रियाविज्ञानका दावा हैं कि उन्होंने सारे खाद्य पदार्थोंके पोषक तत्त्वो और मानवशरीरपर पडनेवाले उनके प्रभावका ठीक-ठीक पता लगा लिया है; पर आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस वैज्ञानिक ज्ञानके बावजूद रोगोमें कमी होना तो दूर, उलटे दिनोदिन वृद्धि ही होती जा रही है। इनके कारण निर्बलता, कृशता और नाडी-विकृतिके साथ-साथ कामवासना भी बढ़ती जा रही है और बच्चोंको माताका दूध पर्याप्त मात्रामें प्राप्त नही हो रहा है। साराश यह कि इन विकारोंके कारण लोगोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका ह्रास हो रहा है जिससे वे चिंतन या अन्य कार्य करनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं। क्लांति, पैरोमें भारीपन, पेशियोंमें पीडा, मंदाग्नि, आंतोकी निष्क्रियता आदि भी इन्हींके परिणाम हैं।

अपस्मार

रासायनिक विश्लेपणद्वारा प्राप्त तथ्योंके आधारपर औषधोपचारक इन रोगोंमें मांसका सार लेनेकी राय दिया करते है जिसमें विस्फोटके लिए सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। जबतक पृथ्वीके अंदर

जलने, गलने और पुनर्निर्माणकी क्रियाओसे नया तनाव पैदा नही होता तबतक—कुछ कालके लिए—शाति बनी रहती है। अपस्मारमें भी ठीक यही प्रक्रिया होती है। उदरमे एकत्र विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे खमीर बनता रहता है जिससे शरीरमे गैसके साथ तनाव बढता जाता है। अतमे उसका विस्फोट होता है जो मूर्च्छाका कारण होता है और मस्तिष्कपर दवाव पडता है जिससे उसकी सारी क्रिया बंद हो जाती हैं। खमीरका बनना और मस्तिष्कपर पड़ा हुआ उसका दवाव कम हो जानेपर होश हो जाता है, पर इस भयकर दौरेके कारण सारे शरीरमे शिथिलता आ जाती है।

औषधविज्ञान अपस्मार दूर करनेमे सर्वथा असमर्थ है; अधिक तो क्या वह इसके स्वरूपसे भी अपरिचित है। उसके मतसे यह नाडीरोग है। उसे क्या पता कि ये सारे रोग, जिन्हे वह असाध्य और रहस्यपूर्ण मानता है, उसीके द्वारा प्रवर्तित स्वास्थ्यरक्षासबधी भ्रात सिद्धातो—पोटेशियम ब्रोमाइड आदि हानिकर द्रव्योंके सेवन—के परिणाम है।

विजातीय द्रव्यके भारके अनुसार ही उपचार-कालमे रोगीकी अवस्था-मे भिन्नता देख पडती है। कुछ लोगोमें उपचार शुरू होनेके बाद जल्द ही दौरा कम पड जाता है और कुछमें बढ भी जाता है। शरीरके अदर चलनेवाले परिवर्तनोंके कारण इस प्रकारके अल्पकालिक लक्षण प्राय. प्रस्तुत होते रहते हैं, पर विजातीय द्रव्यके निकल जानेपर दौरा या तो धीरे-धीरे कम पड जाता है या एकाएक गायब हो जाता है। दौरेका जोर कम पड जानेपर चक्कर-जैसा आता है जो उपचार चलाते रहनेपर बिल-कुल बद हो जाता है। उपचार आरभ करते समय रोगियोको इस सभा-वित अवस्थाकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिए। आकृतिविज्ञानके सहारे इस आरोग्यात्मक उभारका, विशेषकर विजातीय द्रव्यका भार अधिक होनेपर, वहुत पहले ही पता चल जाता है।

इस विवेचनसे हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि अपस्मारके रोगी-का नीरोग होना बहुत कुछ विजातीय द्रव्यके भारपर निर्भर है। कठिन

ही नही, असाध्य रोगवाले कुछ व्यक्ति भी मुझे मिले है, पर उनका रोग या तो वहुत अधिक जीर्ण हो गया था या ब्रोमाइन आदि दवाओंके इस्तेमालसे पाचनशक्ति विलकुल क्षीण हो गई थी। इन रोगियोका मस्तिष्क और नाडी-सवध इतने छिन्न-भिन्न हो गए थे कि उन्हे पूर्व अवस्थामें लाना सभव नही था। कुछ ऐसे रोगी भी मुझे मिले है जिन्हे सावधानी और सतर्कताके साथ वर्षों उपचार करनेपर रोगसे मुक्ति मिली है। मूर्च्छा आना वद हो जानेपर यह समझ लेना चाहिए कि अव रोगीके शरीरमें विजातीय द्रव्य नहीं है, पर इसे पूर्णरूपसे निकाल वाहर करनेके लिए और अधिक कालतक उपचारका क्रम चलाते जाना आवश्यक होता है।

इस अवस्थाके स्पष्टीकरणके लिए एक रोगीके उपचारका विवरण देना आवश्यक जान पडता है। उन्नीस वर्षकी एक लडकी आठ सालसे भयकर अपस्मारसे पीडित थी। हर हफ्ते उसे दो वार दौरा हुआ करता था। उसका पाचन वहुत खराव हो गया था और मासिक स्राव भी नियमित रूपसे नही होता था। रजस्वला होनेके वादसे स्राव कभी ठीक समयपर नही हुआ—कभी तो लगातार वहुत दिनोतक रुका रहता और कभी जल्द-जल्द हुआ करता था।

आकृतिविज्ञानके सहारे यह भी स्पष्ट हो गया कि उसके रक्तमे हरीतिमा अधिक है और क्षयकी भी प्रवृत्ति है। उसका सिर असाधारण रूपमें वडा था। कुशल यही थी कि विजातीय द्रव्यका भार अनुकूल स्थितिमें था—ऐसा था कि मै उसे आरोग्य-लाभका आश्वासन दे सकता था। उपचार चलते समयकी अवस्थाके सवधमे उसे भ्रम न हो इसलिए मैने साफ-साफ वतला दिया कि पहले पक्षमे दौरा अधिक हो सकता है, पर वादमें कम पडकर विलकुल वद हो जायगा। उसे वाष्पस्नान नही कराया गया और इस प्रकारके रोगमें प्राय कराया भी नहीं जाता। तीन ही सप्ताहमें रोगसे उसको मुक्ति मिल गई।

उपचारकालकी अवस्था ठीक वैसी ही रही जैसी होनेका मैने अनुमान किया था। आरंभमें दो-तीन और इससे भी अधिक वार दौरा होता

रहा, पर सोलह दिन बाद मूर्च्छा घुमटेमें परिवर्तित हो गई। शीघ्र आरोग्यलाभ इस कारण सभव हुआ कि उसका पाचन आश्चर्यजनक रूपमे सुधर गया और मासिक स्राव भी साधारण हो गया। वहुतसे रोगियों-को इतनी शीघ्रतासे आरोग्यलाभ नही होता। इस रोगसे पीडित अन्य व्यक्तियोको चगा करनेमें मुझे इससे दूना, तिगुना या इससे अधिक समय लग गया है।

मुक्तस्थान-भीति

इस रोगमे रोगी चौडे, खुले स्थानसे होकर चलनेमें असमर्थ होता है। यह रोग भी विजातीय द्रव्यके अधिक भारके ही कारण होता है। यह अवस्था इस कारण उत्पन्न होती है कि शरीरके भीतरी तनावके कारण या तो रोगीका शरीर वायुमडलका दबाव या चाप सहन करनेमें सक्षम नही होता या इस चापका भार उसके किसी भीतरी भागपर इतना अधिक होता है कि वह उसका निरोध नही कर सकता। हवा जितनी शुद्ध और पतली होती है उतना ही अधिक भार उसको जान पडता है। मेरी आरोग्यशालामें इस प्रकारके कुछ रोगी उपचार कराने आए थे। वे मकानोसे सटकर चलनेपर ही अपनेको गिरनेसे रोक सकते थे। इसका रहस्य यह है कि सडकके मध्य भागकी अपेक्षा मकानोंके पासकी हवा अधिक घनी होती है। दोनो स्थानोकी हवामें वहुत कम फर्क होते हुए भी रोगीको बड़ी आसानीसे इसका अनुभव हो जाता है। जिस स्थानकी हवा अधिक शुद्ध और पतली होती है वहां रोगीको बहुत अधिक दबाव और बेचैनी मालूम होती है।

मुक्तस्थान-भीतिका रोग भी क्षय तथा कर्कटिकाकी तरह हमेशा किसी पूर्ववर्ती रोगका चरम रूप होता है, चाहे वह उसे ही हुआ हो या मा-बापसे प्राप्त हुआ हो। रोगीका नीरोग होना या न होना उसकी रोगकी शारीरिक अवस्था तथा विजातीय द्रव्यकी स्थितिपर निर्भर होता है।

(२)

शरीरपर अचानक आक्रमणकर उसे विवश बना देनेवाला अपस्मार पहले दवाए हुए रोगो या माता-पितासे प्राप्त यौन रोगोंका, जो पिताकी युवावस्थाकी मूर्खताके कारण होते है, परिणाम होना है। यौन रोगोमे विजातीय द्रव्य औपधोपचारद्वारा शरीरके अदर पहुचा दिया जाता है और फिर वही सतानके शरीरमें पहुचकर अपस्मारका मूल कारण होता है।

इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तियोका उपचार करते समय मैने प्राय अनुभव किया है कि इसका अचानक होनेवाला दौरा पेटमे बराबर खमीर बनते हुए विजातीय द्रव्यके स्फोटके ही कारण होता है। बहुतसे व्यक्तियोमें यह खमीर पहले पैरोकी ओर जाकर फिर ऊपरकी ओर बढता है। इस खमीरके उफानके कारण बहुतसे लोग तो गिरनेके पहले कई चक्कर खा लेते है और कुछ लोग खमीरके पहुचते ही बेहोश होकर जमीनपर गिर पडते है। शरीरके अदर होनेवाली इस क्रियाकी तुलना ज्वालामुखी-की उस अवस्थासे की जा सकती है जिसमें गैसें और अन्य उत्तप्त पदार्थ पृथ्वीके अदर एकत्र होकर स्फोटद्वारा एकाएक निकल पड़ते है। शरीरको स्वस्थ बनाए रखनेके लिए औपधोपचारक पौष्टिक आहार ग्रहण करने और वटिका, चूर्ण, कुनैन तथा विभिन्न रूपोमें लोहा खानेको कहते है, पर इस उपचारका परिणाम अभीप्ट फलके विपरीत ही हुआ करता है—रक्त और कम पड जाता है, हरापन बढ जाता है और ऊपरसे अन्य प्रकारके कप्ट भी उत्पन्न हो जाते है, और इन सबका एकमात्र कारण होता है अप्राकृतिक औपधोपचार। आज तो नवजात शिशुओमे भी रक्ताल्पता देखी जाती है।

इन परीक्षणोंके आधारपर हम इसी नतीजेपर पहुचते है कि आधु-निक औपधोपचार और रोगियोको दिया जानेवाला आहार उपयुक्त नही होता। साथ ही यह भी स्वीकार करना पडेगा कि रसायनशास्त्र अभी इतना उन्नत नही है कि जीवित शरीरके अदर होनेवाली क्रियाओंके

सबधमे कोई मत निर्धारित करते समय वह भूले न करे। हम अपने अनुभवके आधारपर कह सकते हैं कि कृत्रिम रूपसे तैयार किये गए सतो और रोगीको पोषण प्रदान करनेके लिए प्रस्तुत की गई कृत्रिम चीजोको पचाना बहुत कठिन होता है और प्रायः ऐसा होता है कि वे जरा भी नही पचती। जो खाद्य पदार्थ प्राकृतिक रूपमें पाए जाते है और पकाकर या मसाले डालकर विकृत नही किए गए होते वे बडी आसानीसे पच जाते हैं।

हमारी चिकित्सा-पद्धति सर्वथा भिन्न है। रक्ताल्पता और हरित् रोगमे जो बाह्य लक्षण देख पडते है उनसे रोगके वास्तविक स्वरूपका जरा भी पता नही चलता। हम जानते है कि साधारण चर्म रक्ताल्पताके रोगीकी तरह नीला, पीला या भूरा नही होता, कुछ चमक लिए हुए लाल होता है, पर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ रक्त करीब-करीब काला, गाढा और कुछ जमा हुआ-सा होता है। अगर विजातीय द्रव्यका भार बहुत अधिक हो तो रक्तनलिकाए फैल जाती है और जहा-तहा थैलेका रूप धारण कर बहुत अधिक रक्त रोक रखती हैं। विजातीय द्रव्यके लगातार तनाव और भारके कारण इन नलिकाओके फैलनेकी क्रिया जारी रहती है, इसी कारण रक्ताल्पता और हरित् रोगके रोगियोंमे चर्मकी विवर्णताके साथ काली-काली शिराए स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होती है। साधारण अवस्थाकी रक्तनलिकाए, जिनमें स्वस्थ और गतिशील रक्त रहता है, चमड़ेके अदरसे झलकती तो रहती है, पर उनमे रक्ताल्पताके रोगी-जैसी न तो नीलिमा ही देख पडती है और न फैलाव ही, इसके अलावा इस प्रकारके रोगियोका चर्म भी मुरझाया हुआ, निष्क्रिय और नीलापन लिए हुए पीला तथा मोम-जैसा देख पडता है। कुछ रोगियोका चेहरा लाल और शरीर ऊपरसे ताजा-जैसा देख पडते हुए भी उनमे निःशक्तता और क्षीणता होती है और आहारसे रस नही बनता। बाहरसे स्वस्थ मालूम होनेवाली इस अवस्थाको औषधोपचार-पद्धतिके अनुयायी 'खयाली बीमारी' कह दिया करते हैं।

रक्ताल्पता तथा हरित् रोगमें अंदर तो हमेशा उत्ताप बना रहता है, पर बाहर शीत-जैसा संवेदन होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य जीर्ण रोगोंकी तरह इनमें भी ज्वर अन्तर्लीन अवस्थामें बना रहता है।

त्वचा और फुफ्फुसोंका उचित रूपसे सक्रिय न रहना और पाचन ठीक तरहसे न होना—अर्थात् उपयुक्त आहार और वायुका अभाव—ही इन रोगोंका मूल कारण है। पाचन ठीक तरहसे न होनेके कारण विजातीय द्रव्यके ढेर जमा होते जाते हैं जो अस्वस्थ शरीरमें तनाव उत्पन्नकर ताप बढ़ा देते हैं। खमीर बननेपर यह विजातीय द्रव्य गैसके रूपमें सारे शरीरमें, विशेषकर त्वचामें या उसके नीचे एकत्र हो जाता है। इसके कारण अच्छी अवस्थावाली धमनियोंका मार्ग बंद हो जाता है और उनमें रक्त नहीं पहुंच पाता। यही कारण है जिससे स्वस्थ व्यक्तिकी त्वचामें जो उष्णता होती है वह इन रोगियोंमें नहीं पाई जाती और चमड़ा पीला और मुरझाया हुआ देख पड़ता है।

इस स्थितिसे यह स्पष्ट है कि पाचनका ठीक न होना ही रक्ताल्पता तथा हरित् रोगका मुख्य कारण है। फुफ्फुसोंकी निष्क्रियताके कारण शरीरको ताजी और शुद्ध वायुकी प्राप्ति भी नहीं हो पाती। दुर्भाग्यकी ही बात है कि औषधोपचारकोंके ठंड लगनेका झूठा भय मनमें जमा देनेके कारण बहुतसे लोग अपने कमरोंमें स्वच्छ वायुका प्रवेश रोक देते हैं और हानिकर गंदी वायु ग्रहण करते रहते हैं। ये चिकित्सक अच्छी तरह जानते हैं कि फुफ्फुस ही श्वासद्वारा शुद्ध वायु ग्रहणकर रक्तको स्वच्छ करते हैं, फिर भी रोगीको कमरेमें बंद रखकर उसे शुद्ध वायुसे किसी तरहका सम्पर्क न रखनेकी राय दी जाती है। इससे इस चिकित्सापद्धतिके निकम्मेपनका ऐसा स्पष्ट परिचय मिलता है कि इसकी कुछ व्याख्या कर देना आवश्यक जान पड़ता है।

एलोपैथिक चिकित्सक रोगके मूल कारणको नहीं पहचानते और विकृत द्रव्यको शरीरसे बाहर निकालनेका प्रयत्न न कर सिर्फ बाहरी

लक्षणोको दबानेका प्रयत्न करते है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक रोग जीर्णावस्थामें परिणत हो जाता है। यह इन अनभिज्ञोको लक्षित नही होता और इसे ही वे 'आरोग्य' कहा करते है, पर यह आरोग्य केवल बाहरी होता है, वास्तविक नही। इस ऊपरी या नकली आरोग्यका रहस्य निश्चयात्मक और अभ्रांत रूपमे जाननेकी विधि भी किसीको मालूम नही है, हा, मेरे आकृतिविज्ञानसे परिचित व्यक्तिको आसानीसे पता चल जायगा कि आरोग्य वास्तविक है या नही।

रक्ताल्पता तथा हरित् रोग दूर करनेके लिए अप्राकृतिक औषधोका प्रयोग किया जाता है जिससे आतोपर दुष्पाच्य पदार्थोंका भार और बढता तथा हालत बदतर होती जाती है। ये रोग शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेपर ही अच्छे हो सकते है, औषधोपचारसे नही। औषधोसे, जिनमें रक्ताल्पताकी प्रशसित दवा लौह भी है, आते इस कदर कमजोर हो जाती हैं कि मसालेदार चटपटी चीजोके अलावा और कोई चीज खानेकी रुचि ही नही होती। इस तरहकी चीजे पचनेवाली नही होती और पाचनमस्थानको इतना उत्तेजित कर देती है कि सच्ची भूख कभी लगती ही नही। इसपर औषधोपचारक अच्छे पौष्टिक पदार्थ—मास, अडे, बलवर्धक मद्यके साथ और भी तेज दवा—खानेकी राय देते है। रोगी इस चिकित्सासे कोई लाभ न देखकर निराश होने लगता है और दयनीय अवस्थामें मेरे पास पहुचता है। पहले ही सप्ताहमें इस औषधोपचारकी गलतियोका उसे पता चल जाता है और आरोग्य-लाभ होनेपर इस नवीन चिकित्सापद्धतिका भक्त बन जाता है।

ताजी, प्राकृतिक हवा, जैसी मैदानमें या खिडकिया खुली रहनपर कमरेमे भी पाई जा सकती है, शरीरको स्वस्थ बनाए रखनेके प्राकृतिक शक्तिके प्रयत्नमें जलकी ही तरह सहायक होती है। दुर्भाग्यकी बात है कि औषधोपचारक ठड लगनेके खतरेसे बचनेके लिए ताजी हवा और ठडे पानीके जो सर्वाधिक महत्त्वके साधन है, परहेज करनेकी राय देते है। यह इस बातका प्रमाण है कि वे सर्दीके स्वरूपको कितना कम समझते है। अगोको

घोर क्षति पहुचाए विना सर्दीका सफलतापूर्वक सामना करनेमें समर्थ न होनेके कारण वे और कुछ करनेके पहले इसका प्रकट होना ही रोक देनेका प्रयत्न करते है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए शरीरकी प्रतिक्रिया-त्मक शक्तिको ही दवा देनेका साधन प्रयोगमे लाते है।

पर जिन लोगोने हमारे सिद्धांतोका अध्ययन-मनन किया है उनकी दृष्टिमें सर्दी बिलकुल निर्दोष लक्षण है और इसका स्वागत करना चाहिए। स्वस्थ व्यक्तिको कभी सर्दी नही हो सकती; क्योकि उसका शरीर विजातीय द्रव्यसे रहित होता है। अगर किसीके शरीरमें विजातीय द्रव्य आ गया हो, पर उसका रहन-सहन प्राकृतिक है तो वह जानता है कि ठडे पानी, ताजी हवा और अनुत्तेजक आहारके द्वारा वह स्वास्थ्य लाभ करने-में समर्थ हो जायगा। इससे उसमें सहनशक्ति और आतरिक स्वच्छता आ जायगी जो पहले उसमे नही थी। वह यह भी जानता है कि सर्दी—विशेषकर तापमानमे अचानक परिवर्तन होनेसे उत्पन्न होनेवाली सर्दी ताजी हवाके ही कारण होती है। इससे शरीरकी जीवशक्ति इस कदर बढ़ जाती है कि वह सर्दीके रूपमे आरोग्यात्मक उभारकी अवस्था प्रस्तुत कर देती है। इस अवस्थाके सहारे शरीर विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमें समर्थ हो जाता है। यही कारण है जिससे यह अवस्था शरीरको क्षति पहुचानेके बजाय स्वस्थ बनानेमे सहायक हुआ करती है।

रक्ताल्पता तथा हरित् रोगवालोका उपचार रोग और शारीरिक अवस्थाका खयाल रखते हुए करना चाहिए। नीचे एक व्यक्तिके उपचार-का विवरण दिया जा रहा है जिससे साधारण नियमोका कुछ ज्ञान हो जायगा।

उन्नीस वर्षकी एक लडकी पद्रह वर्षकी ही अवस्थासे हरित् रोगसे पीड़ित थी। वह एलोपैथिक चिकित्सा करा रही थी। चिकित्सकने पहले वटिकाके रूपमें लौह दिया और उसके बाद पेयके रूपमें पेप्सिन तथा अन्य द्रव्योंके साथ उसका मिश्रण दिया। उसने आहारके रूपमें मास,

शोरवा, अडा, सुरा आदि पौष्टिक पदार्थ और कहवेके वदले खूब औटा हुआ दूध खानेको कहा और पानीमें सक्रामक कीटाणु होनेकी सभावना वतलाकर पानीकी जगह शक्तिवर्द्धक मद्य पीनेकी राय दी। वह डाक्टरकी रायके मुताबिक वर्षों चलती रही, पर कोई लाभ नही हुआ वल्कि उसकी हालत दिनोदिन और खराब ही होती गई—पाचन और भी खराब हो गया और पौष्टिक पदार्थ खाते हुए भी उसकी निर्वलता, हरीतिमा और खिन्नता दिनोदिन बढती गई। इससे उसे यह बिलकुल स्पष्ट हो गया कि डाक्टरके नुस्खेसे कोई लाभ नही हो रहा है, फिर भी दोष उपचारका न मानकर अपने शरीरका ही मानती रही। उसकी धारणा थी कि उसकी अवस्था ही स्वास्थ्यलाभ करने योग्य नही है। कब्ज होते हुए भी पौष्टिक पदार्थ उसके शरीरके अदरसे गुजरते थे, पर उनसे उसके शरीरको पोपण नही प्राप्त हो रहा था; क्योकि उसका आमाशय बहुत कमजोर हो गया था। रजस्वला होनेके वादसे मासिक स्राव भी साधारण रूपमे न होकर अनियमित रूपमें होता था। वह चार वर्षोंतक एलोपैथिक उपचार चलाती रही, पर सुधार तो कहातक होगा, उसकी अवस्था और भी दयनीय ही होती गई।

मेरे पास आनेके समय दुरुपचारका शिकार यह लडकी विपन्न, निराश, क्षीण और अविश्वासपूर्ण अवस्थामे थी और उसका मस्तिष्क भी कमजोर हो गया था। उसका जीवन अपने तथा परिवारके लिए भार प्रतीत हो रहा था और आत्महत्याका विचार वार-वार उसके मनमें उठा करता था। मैंने उसका आहार फौरन वदल दिया—केवल सुपाच्य और अनुत्तेजक शाकाहार और पेयके रूपमे केवल जल देने लगा। उसे खुली हवामे व्यायाम करने, खिड़किया खोलकर सोने, प्रतिदिन तीन बार ठंडा स्नान तथा सप्ताहमें दो बार वाष्प-स्नान करनेको कहा। एक ही सप्ताहमें उसकी मनोवृत्तिमे आमूल परिवर्तन हो गया, हर्ष और उल्लासने विषाद और नैराश्यका स्थान ग्रहण कर लिया। चार महीनेमें पाचन और रज स्राव वहुत कुछ साधारण अवस्थामें आ गया और एक प्रकारसे

उसे नवजीवन ही प्राप्त हो गया। विजातीय द्रव्य काफी अधिक निकल जानेपर उसकी त्वचा, जिससे कभी पसीना नहीं निकलता था, साधारण रूपमे उष्ण और आर्द्र हो गई। छ. महीनेमें उसकी हालतमें आश्चर्यजनक सुधार हो गया और एक सालमें वह पूर्णत. नीरोग हो गई।

आंख और कानके रोग

आख और कान—दोनो ज्ञानेन्द्रिया कठिन रोगोका शिकार हुआ करती है। इनपर सीधे असर डालनेवाली चीजें ही प्राय: इन रोगोका कारण मान ली जाती है और कभी यह देखनेका प्रयत्न नही किया जाता कि इनकी जडमें कोई गहरा कारण है या नही। मेरी उपचार-विधिके प्रयोगोसे जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे यह असदिग्ध रूपमें स्पष्ट हो गया है कि आख और कानके सभी रोगोका मूल कारण आतरिक जीर्ण रोग—रोहिणी, रोमातिका, आरक्तज्वर जैसे किसी दबाए हुए रोगका रोगोत्तेजक अश—होता है या टीका। मेरे आकृतिविज्ञानसे यह बात बिलकुल पक्की हो जाती है और उसकी सहायतासे यह भी साबित किया जा सकता है कि आख या कानका कोई रोग प्रकट होनेकी अवस्थामें विजातीय द्रव्य शरीरमें अवश्य मौजूद रहता है। कहनेका अभिप्राय यह कि आख या कानमें होनेवाले रोगोका सीधा सबध विजातीय द्रव्यसे होता है।

आंख या कानके रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका और बातोके लिहाजसे स्वस्थ होना सर्वथा असभव है। इस प्रकारका रोग प्रकट होनेके पूर्व विजातीय द्रव्य शरीरमे अवश्य रहा होगा जो अब रुग्ण भागमे पहुच गया है। आकृतिविज्ञानके सहारे वर्षों पहले यह प्रक्रिया आसानीसे लक्षित की जा सकती है।

कर्णस्राव

विजातीय द्रव्यके कानमे पहुंचनेपर सबसे पहले कर्णप्रणाली अव-रुद्ध होती है। इससे कर्णपटह प्राय: फट जाता है या ढीला पड़कर सवेदनशून्य अर्थात् स्वरतरगोका प्रेषण करनेमे असमर्थ हो जाता है। इस अवस्थामे मध्यकर्णकी श्लैष्मिक कलामें प्रतिश्याय हो जाता है जो

वहा विजातीय द्रव्य एकत्र होनेका सूचक है। नीचेसे विजातीय द्रव्यका जोरदार दवाव होनेपर प्रायः तीव्रावस्था प्रस्तुत हो जाती है और तव कानके भीतरी भागमे पूय वनने लगता और खमीरके रूपमें विजातीय द्रव्य वाहर निकलने लगता है जिसे 'कर्णस्राव' या 'कान वहना' कहते है। अगर प्राकृतिक विधिसे यह तीव्रावस्था जल्द ठीक न की जाय तो विजातीय द्रव्यका भार और वढ जाता है जिसके परिणामस्वरूप श्रवणेन्द्रियका नाश भी हो जाता है। औषधोपचारद्वारा रोग जितना भीतर दवाया जायगा उतना ही वुरा उसका परिणाम होगा।

जिन लोगोंने मेरी पहले दी हुई व्याख्याका अनुसरण किया है उन्हे यह भलीभाति स्पष्ट हो जायगा कि एक ओर कर्णस्राव और सिरकी सर्दी और दूसरी ओर सूजाक और प्रदर एक ही सामान्य कारणसे उत्पन्न होते हैं। इन विभिन्न रोगोकी उत्पत्ति विजातीय द्रव्यसे ही होती है जो शरीरमे जमा होकर अन्तर्लीन अवस्थामे पडा रहता है और खमीर वननेकी तीव्र अवस्थामें पहुचनेपर पूय या श्लेष्मा वन जाता है। खमीर वननेपर श्लैष्मिक कला तथा संवद्ध अगमें प्रदाह उत्पन्न हो जाता है और प्रदाह अधिक होनेपर खुले तथा पूयवाले घाव और छोटे-छोटे व्रण भी हो जाते हैं। प्रदाहकी यह अवस्था शरीरके भीतरी भागोमें, जिनका वाहरकी हवासे सीधा सवध नही है, खास तौरसे देखी जा सकती है। हमारे लिए यह वड़े महत्त्वका विषय है; क्योकि यह शरीरके भीतरी लदावका निश्चित चिह्न और इस वातका प्रमाण होता है कि शरीरमे उभारकी अवस्था प्रस्तुतकर विजातीय द्रव्यको वाहर निकालने योग्य पर्याप्त जीवशक्ति मौजूद है।

आखके रोग

आखके रोगोमे भी ठीक यही वात होती है। विजातीय द्रव्य अदरके पारदर्शक रसमें भर जाकर उसे अव्यवस्थित कर देता है जिससे दृष्टि क्षीण हो जाती है। 'निकट-दृष्टि'का यही कारण होता है। दूसरी अवस्था-

मे यह विजातीय द्रव्य अक्षकलामें प्रविष्ट हो जाता है जिससे आंखका पीला विन्दु तथा उसकी नाड़िया ढक या अपने स्थानसे हट जाती है जिसे कृष्ण लिंगनाश या काला मोतियाबिन्द कहते है।

घूसर लिंगनाश भी कुछ इसी प्रकारके कारणसे होता है। पारदर्शक तालपर मोटी परत वन जाती है जो आंख तथा तालमें प्रविष्ट विजातीय द्रव्यके अलावा और कुछ नही है। ये अवस्थाए लबे अर्सेतक लदाव बने रहनेपर ही उत्पन्न होती है इसलिए यह रोग अधिक अवस्थावालोंको ही होता है।

हरित् लिंगनाश (घूसरमथ), जिसमे नेत्रगोलक में वहुत अधिक तनाव होता है, आखमें पहुचे हुए विजातीय द्रव्यके खमीर वननेसे होता है। औषधोपचारपद्धतिके अनुयायी रोगमुक्त करनेके प्रयत्नमें उपतारा (आयरिस) का कुछ अश निकालकर शरीरकी जीवशक्तिको उसके आरोग्यदायक कार्यसे विरत कर देते है, पर मूल रोग ज्यो-का-त्यो छोड देते है। हां, इस शल्य-क्रियासे आखकी अवस्थामे परिवर्तन अवश्य हो जाता है।

इन सारी बातोपर विचार करनेपर शल्योपचारकी निरर्थकता बिलकुल स्पष्ट हो जाती है; क्योकि उसका लक्ष्य रोगके मूल कारणका उन्मूलन न होकर केवल बाहरी चिह्नका लोप होता है। विजातीय द्रव्यके वहां न पहुचनेतक यह उपचार सफल समझा जाता है, पर उसके स्थान या रूपमे परिवर्तन होनेपर—जिसके न होनेकी कोई सभावना नही—रोगके पुराने या नए लक्षण शीघ्र ही प्रकट हो जाते है।

व्यापक मिस्री (इजिप्शियन) नेत्ररोग भी, जो बच्चोको विशेष रूपमे होता है, विकृत द्रव्यके खमीरके अलावा और कुछ नही है। यह द्रव्य, जो प्राय: पैतृक होता है, किसी कारणसे क्षुब्ध होनेपर प्रदाह उत्पन्न कर देता है जिसके दूर होनेमें वहुत समय लगता है और इसके उपचारमे बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है।

आठ वर्षका एक छोटा बच्चा इस रोगसे पीड़ित था। उपचारमे

एट्रोपियाका तो काफी मात्रामें प्रयोग किया ही गया था, नश्तर भी लगाया गया था। विभिन्न चिकित्सालयोमें चार वर्षोंतक उसका उपचार चलता रहा, पर कोई लाभ नही हुआ। अतमें चिकित्सकोंने यह निर्णय किया कि लड़केको मस्तक शोथ (हाइड्रोसिफेलस) रोग है और कुछ कर सकना सभव नही है। मेरे पास लाए जानेपर आकृतिविज्ञानके सहारे मैंने यह निश्चय किया कि उसका असाधारण बड़ा सिर और नेत्रगोलकका प्रदाह किसी ऐसे पूर्ववर्ती रोगका परिणाम है जो अच्छा न कर दवा दिया गया है। विजातीय द्रव्यका स्थान पृष्ठ-भाग होनेके कारण मैंने उसकी मातासे साफ-साफ कह दिया कि आरोग्यलाभके लिए वहुत अधिक अध्यवसाय आवश्यक होगा। अनुत्तेजक आहार और रोज तीन-चार वार ठडे स्नानोका क्रम चलाया जाने लगा। एक ही सप्ताहमें प्रदाह कम हो गया और लडका कुछ-कुछ आख खोलने भी लगा जो पहले असभव था। उसकी आंतें साफ हो गईं और पाचन भी वहुत कुछ साधारण हो गया। पन्द्रह दिन उपचार चलानेपर प्रकाशसे आखोका क्षुब्ध होना वंद हो गया। चौथे सप्ताहमें उसे आरक्तज्वर हो गया, पर शरीरमें इतनी जीवशक्ति लौट आई थी कि यह आरक्तज्वर, जो चार वर्षकी अवस्थामें हुआ था और दवा दिया गया था, वना रह सका। ज्वर हट जानेपर आखोका प्रदाह और मस्तकशोथ भी जाता रहा।

द्विदृष्टि और अपांगदृष्टि

द्विदृष्टिका कारण ताल और पीले विंदुके वीच या सीधे ताल या पुतलीपर विजातीय द्रव्यका एकत्र होना है। मेरी विधिसे इस रोगका उपचार करनेपर प्रायः ऐसा होता है कि विजातीय द्रव्यके परावर्तन तथा इसके कारण शरीरमें होनेवाले परिवर्तनोंसे दृष्टिकी स्वच्छता, द्विदृष्टि और आशिक या पूर्ण मदता भी वारी-वारीसे आती रहती है।

अपांगदृष्टि नेत्रगोलकके चारो ओर घूमनेवाली पेशियोपर विजातीय द्रव्यके एकत्र होनेसे होती है। विजातीय द्रव्य या तो किसी पेशीमें

एकत्र हो जाता है या उसका मार्ग रोक देता है जिससे वह स्थिर, तनाव-दार, मोटी और प्राय: अपना कार्य करनेमे असमर्थ हो जाती है। इससे पेशीकी लोच जाती रहती है और तनाव आ जानेके कारण नेत्रगोलकके चारों ओरकी पेशियोसे वह छोटी हो जाती है। यह भारग्रस्त पेशी आखको एक ओर खीचकर उसे अपने प्राकृतिक स्थानसे हटा देती है। औषधोपचारपद्धतिके अनुयायी इस पेशीको ही निकालकर इस प्रकारके रोगोके सबंधमे अपने अज्ञानका ही परिचय देते है। पेशीपरसे विजातीय द्रव्यको हटाकर प्राकृतिक रूपमे यह रोग आसानीसे दूर किया जा सकता है।

आखोकी नाड़िया गुच्छेके रूपमें एक दूसरीको पार करती हुई सिरमें पहुचती है जिससे बाईं आंखकी नाडियां सिरमे दाहिनी ओर रहती हैं और दाहिनी आखकी बाईं ओर। नाड़ियोकी इस स्थितिके कारण बाईं ओर लदाव होनेपर दाहिनी आखमे और दाहिनी ओर होनेपर बाईं आखमे रोग हो सकता है।

इस स्थलपर आंखके सभी रोगोपर, जिनमे आजकलके विशेषज्ञ सावधानीके साथ अतर किया करते है, विचार करनेकी आवश्यकता नही जान पडती, क्योकि इन सबका एक ही सामान्य कारण होता है— विशेष भागका विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त होना। हां, एक बातका उल्लेख कर देना आवश्यक है। वह यह कि हर हालतमे लदावका रूप भिन्न हुआ करता है इसलिए लक्षणोमे भी भिन्नता पाई जाती है। इसके अलावा लोगोमें विजातीय द्रव्यका भार बढते जानेके कारण नये-नये रोग पैदा होते ही जा रहे है। यही कारण है जिससे डाक्टरोका रोगोंके वर्गीकरणका कार्य कभी पूरा नही हो पाता, नित्य नये रोग उत्पन्न होते रहेंगे और उनके लिए नामो तथा दवाओंकी भी जरूरत पड़ती रहेगी। हम लोगोके लिए आख और कानके रोगोमे पाये जानेवाले लक्षणोमे अतर होनेका कोई महत्त्व नही है। हम जानते है कि इनमेंसे प्रत्येक रोगका एक ही उपचार—विजातीय द्रव्यको परावर्तित कर प्राकृतिक मलमार्गोसे बाहर

निकलता है। इसके लिए अगर ठंडे स्नानों और उत्तेजक आहारके साथ स्थानिक वाष्पस्नानका भी सहारा लिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

अगर आंखोंका नाश न हुआ हो तो मेरी विधिसे यह दुखद रोगावस्था बहुत जल्द—कुछ ही दिनोंमें—ठीक की जा सकती है। इस अवधिमें पीड़ा और उसके साथ ही स्थायी रूपसे रहनेवाला अंधेरा तुरत अवश्य ही दूर हो जायगा और इसके पश्चात् कुछ दिनों या कुछ हफ्तोंमें पूर्ण आरोग्य लाभ हो जायगा। अगर चक्षुरिन्द्रिय और श्रवणेंद्रिय अधिक रूपसे नष्ट भी हो गई हों तो आरोग्यलाभ नहीं तो उनकी अवस्थामें कुछ सुधार अवश्य हो जायगा। यह सुधार आजीवन बना रहेगा और इंद्रियां कुछ काम भी देती रहेंगी।

आंख और कानके जीर्ण रोगोंके—जिनके साथ दूसरे जटिल रोग भी होते ही हैं—दूर करनेके लिए अधिक समय और अध्यवसाय आवश्यक है। इस प्रकारके रोग प्रायः बाल्यावस्थामें दबाए हुए रोगोंके कारण होते हैं। ऐसे रोगोंके उपचारमें, विजातीय द्रव्यकी स्थितिके अनुसार महीनों या वर्षों लग जा सकते हैं। यही कारण है जिससे एक ही रोगसे पीड़ित देख पड़नेवाले दो व्यक्तियोंके नीरोग होनेमें बराबर समय न लगकर एकको दूसरेसे दूना या तिगुना समय लग जाता है।

एक लड़का भी बचपनकी ही अवस्थासे उपदंशसे पीड़ित था। उसकी बाईं आंख विशेष रूपसे रुग्ण थी और दाह अधिक होनेके कारण उसके नष्ट हो जानेका खतरा पैदा हो गया था। उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत अधिक परिमाणमें एकत्र था जो उसके असाधारण बड़े सिरसे साफ-साफ प्रकट हो रहा था। इसी भारी दबावके कारण वह उपदंश और नेत्ररोगसे पीड़ित था। औषधोपचार-पद्धतिके डाक्टरोंने आंखमें एट्रोपिया (जो स्ट्रामोनियम और बेलाडोना-जैसे विषैले पदार्थोंसे तैयार किया जाता है) खुलकर इस्तेमाल किया था जिससे आंखकी हालत सुधरनेके बजाय और खराब हो गई थी, क्योंकि उसमें बाहरी विजातीय द्रव्य भी पहुंचा दिया गया जो स्वयं आंखको कमजोर करनेके लिए काफी था

छ महीने एट्रोपियाका प्रयोग होनेपर आख बिलकुल अधी हो गई। लाचार हो पिता लडकेको मेरे यहा ले आया। मैंने आखकी कोई स्थानिक चिकित्सा न कर केवल ठडे स्नानो और अनुत्तेजक आहारद्वारा मलमार्गो-को उत्तेजित किया। एक ही सप्ताहमें हालत सुधरने लगी और छ. सप्ताहोमें उपदश ही नही, आखका रोग भी चला गया। अब कोई नही कह सकता था कि लड़केकी कौन-सी आख अधी थी। उसकी दृष्टि तो पूरी तरह लौट ही आई, उसका साधारण स्वास्थ्य भी पहलेसे बहुत अच्छा हो गया।

साठ वर्षकी एक महिलाकी बाईं आखमें धूसर लिंगनाश होनेपर नश्तर लगाया गया जो 'सफल' कहा गया, पर उसी समयसे उसकी यह आख बिलकुल अधी हो गई। दाहिनी आखमें लिंगनाश होनेपर शल्योपचारके लिए उसके पकनेकी—सारा मकान अग्निकी लपटमें आ जानेकी—प्रतीक्षा करनेको कहा गया। आग लगनेके समय ही, जब कि उसकी लपट ज्यादा नही फैली होती और आसानीसे काबूमे लाई जा सकती है, बुझाना औषधोपचार-पद्धतिवालोने अभी सीखा ही नही है। पहले नश्तरके समयसे ही इस स्त्रीका इस पद्धतिपरसे विश्वास उठ गया था इसलिए उपचारके निमित्त वह मेरे यहा आई। उसकी दृष्टि इतनी मद हो गई थी कि आकृति उसे सिर्फ छाया-जैसी जान पडती थी और पास ही खडे व्यक्तिके सबधमें इतना भी नही कह सकती थी कि वह स्त्री है या पुरुष। विजातीय द्रव्य शरीरमे गहराईतक पहुचा हुआ था और उसका कारण था बचपनमें हुआ गलक्षत जो अच्छा नही किया गया था। 'निकटदृष्टि' रोग तो उसे उसी समय हो गया था और यह लिगनाश उसका अतिम परिणाम था। एक ही महीनेमें उसकी हालतमे यहातक सुधार हो गया कि वह बड़े-बडे अक्षर पढने लगी और स्वास्थ्य भी काफी अच्छा हो गया। अब उसके मनमे नैराश्य और विषादकी जगह आशा और हर्षका सचार हो गया—एक प्रकारसे उसका कायापलट ही हो गया। हर हफ्ते उसकी दृष्टि साफ और सबल होती गई और छ महीनेमें वह पूर्णतः नीरोग हो गई। शीघ्र आरोग्य-लाभका कारण यह

हुआ कि विजातीय द्रव्य आगेके ही भागमें था; अगर पीछेकी ओर होता तो छ. मासकी जगह शायद छः साल लग गए होते। अफसोसकी वात सिर्फ यह थी कि डाक्टरकी फोडी हुई आख सर्वदाके लिए चली गई थी।

सैंतीस वर्षका एक व्यक्ति भयंकर कर्णस्रावसे वर्षोंसे पीड़ित था और छः माससे वायें कानसे जरा भी नही सुन पा रहा था। औषधोपचार-से कोई लाभ न होनेपर वह मेरे यहा आया। आकृति-निदानसे यह स्पष्ट हो गया कि रोगका कारण पाचनकी खरावी है। मैंने उसे रोज दो-तीन वार कटि और मेहनस्नानके साथ अनुत्तेजक आहार चलाते हुए वदन ढक-कर या व्यायामद्वारा पसीना निकालने और कमरेकी खिड़किया खुली रखकर सोनेको कहा। सत्रह दिनोमें कर्णस्राव और वहरापन भी दूर हो गया, दूसरे पखवारेमें कानोकी झनझनाहट भी जाती रही और कुछ दिनोतक उपचार चलानेपर वह विलकुल चंगा हो गया।

एक चौवीस सालके व्यक्तिको वचपनमें रोमांतिका निकली थी, पर उसे दवासे दवाकर विकृत द्रव्य फिर अदर पहुंचा दिया गया जिसके परिणामस्वरूप रोग जीर्णावस्थामें पहुचकर क्रमशः क्षीणता आदि-का रूप धारण करता रहा। अतमें सिरकी दिशामें विकृत द्रव्यके दवावके कारण यह व्यक्ति अंशतः वहरा भी हो गया। उसने सव तरहका उपचार करके देखा, पर किसीसे कोई लाभ नही हुआ।

अतमें कुछ मित्रो और परिचितोंके कहनेसे उसने मेरी पद्धतिकी आज-माइश करनेका निश्चय किया। उससे भी मेहन और कटिस्नान, अनुत्तेजक आहार, स्थानिक वाष्पस्नान आदिका प्रयोग कराया गया और वहुत थोडे समयमें ही आरोग्य-लाभ हो गया। रोगीकी युवावस्था और उस समयकी ऋतुने भी आरोग्य-लाभमें सहायता की। पीछे उसके पत्रसे मालूम हुआ कि उसकी श्रवण-शक्ति तो साधारण हो ही गई, उसके पतले पडे हुए वाल भी मोटे हो गए और ऋतु-परिवर्तनके कारण वार-वार होनेवाली सर्दीने भी उसका पिंड छोड़ दिया है। आहारका क्रम नियमपूर्वक न चलाने और पहलेसे कुछ दुवला-पतला हो जानेपर भी स्फूर्ति वरावर वनी

रहती है, काम करनेकी पूरी शारीरिक और मानसिक शक्ति आ गई है और अनिद्रा भी अब बिलकुल चली गई है।

उपर्युक्त सफलताएं बिलकुल साधारण ढंगसे प्राप्त की गईं—न तो किसीको नश्तर लगाना पड़ा और न किसी तरहकी दवाका प्रयोग किया गया, और यह सब इसलिए संभव हुआ कि सभी रोगोंका मूल कारण एक ही होता है।

दंतरोग, सिरकी सर्दी, वातकफ-ज्वर, कंठरोग और गलगंड

इन रोगोकी उत्पत्तिके कारणोका पहले भी कई वार उल्लेख किया जा चुका है। दातोका खोखलापन और दर्द विजातीय द्रव्यके अधिक भारके निश्चित चिह्न है। ये रोग विजातीय द्रव्यके सिरकी ओर वढ़नेपर और प्राय. एक विशेष स्थितिमें—आगे और पार्श्वकी ओरसे ऊपर वढनेपर—ही उत्पन्न होते है। दातोपरके रुचक (इनामेल) या अस्थिमें इतना कडापन नही होता कि दात विजातीय द्रव्यके लगातार दवावको वरावर वर्दाश्त करते रह सकें। वे क्रमश. मुलायम पडकर सडी हुई डालकी तरह गल जाते है। जव-तव दर्द मालूम होनेका कारण खमीरकी क्रियासे उत्पन्न होनेवाला उत्ताप और घर्षण होता है। मेरे उपचारमें दांतका दर्द प्राय· उभड़ आता है। ऐसा भी हो सकता है कि जिन लोगोको पहले कभी दातमे दर्द नही हुआ है उन्हें भी कुछ कालके लिए उपचार-कालमें दर्द हो जाय, क्योंकि विजातीय द्रव्यके पीछे हटते समय दातोपर भी असर होता है। वातरोगमें भी यही वात होती है। दातोको निकलवा देना मूर्खता है; इससे सिर्फ अगभग होता है, दातके दर्दका कारण कभी दूर नही होता। मेरी विधिसे और रोगोकी तरह ही दातका दर्द भी चला जाता है। कटि- और मेहनस्नानके अलावा सिरका वाष्पस्नान और उसके वाद फौरन कटि स्नान वहुत लाभदायक होता है। शरीरमे गर्मी लानेके लिए खूब टहलना—भरसक धूपमें टहलना ठीक होता है। प्रायः एक ही वार स्थानिक वाष्पस्नानके वाद कटिस्नान करना इस दर्दसे छुटकारा पानेके लिए काफी होता है, अगर एक वारमें दर्द न जाय तो इसे दोहरा देना चाहिए। मेरा उपचार करनेवालोको विजातीय द्रव्यके दातोंसे होकर वाहर न निकलनेतक ही दातका दर्द हो सकता है। इस

स्थलपर दांतोकी सफाईके संबधमें भी कुछ कहना आवश्यक जान पड़ता है। दांतोपर पीले रगका श्लेष्मा बरावर जमा होता रहता है जो कड़ा पडकर पपडी वन जाता है। मै तो यही कहूगा कि दातोकी सफाई करना उन्ही लोगोके लिए अनिवार्यतः आवश्यक है जो अस्वस्थ है या विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त है। स्वस्थ जानवरोकी तरह स्वस्थ व्यक्तियोको भी इसकी कम ही आवश्यकता पड़ती है। स्वस्थ जानवरोके दात स्वस्थ और चमकीले-सफेद होते हैं, उनपर पपड़ीका कही निशान भी नही होता; पर जिसका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ है—दूसरे शव्दोमे, जिसका पाचन साधारण अवस्थामें नही है—उसके दातोपर श्लेष्मा और पपड़ी अवश्य पाई जाएगी, क्योकि ये दोनो असाधारण पाचनके ही परिणाम है। श्लेष्मा और पपडी विजातीय द्रव्यका ही परिवर्तित रूप है जो उदरसे ऊपरकी ओर बढकर दातोपर जमा हो जाता है।

इससे तथा दातोके अन्य रोगोसे तभी छुटकारा मिल सकता है जब शरीरमे विजातीय द्रव्यका बनना वद हो जाय। अगर दात पहलेसे ही खोखले और क्षीण अर्थात् नष्ट हो गए हो तो उनको नया नही बनाया जा सकता, पर इन कीलोका जबडोमे कायम रहना अच्छा ही होता है ऐसे दातोको शरीरके लिए अहानिकर बनानेमे प्रकृति मनुष्यकी अपेक्षा अधिक कौशलसे काम लेती है। जो बचाए जा सकें उन्हे अवश्य बचाए रखना चाहिए जिसमें जबतक सभव हो उनसे चबानेमे सहायता ली जा सके; केवल ऐसे दात निकलवाए जाय जो हिलनेके कारण चबानेके कार्यमे वाधक हो रहे हो और उनकी जगहपर नकली दात लगा दिए जाय। दातोका सबसे पहले क्षीण होना और उनमे दर्द होना ही मेरे खमीरसबधी सिद्धातकी सत्यताका प्रबल प्रमाण है। दात ही ऐसी अस्थिया है जो शरीरसे वाहर निकली हुई है और पेशियोसे ढकी नही है। अगर विजातीय द्रव्य खमीरमें परिणत होगा तो इन बाहर निकली हुई अस्थियोपर ही खमीरकी क्रियाका विशेष रूपसे प्रभाव पड़ेगा। अगोके अग्रभागमे ही खमीरकी क्रिया जोरोसे चलती है और दात इसी तरहके अग्रभाग हैं।

अगर वे मांससे ढके होते तो खमीरका प्रभाव पहले मांसपर ही पड़ता।

सिरकी सर्दी

सिरकी सर्दीमें श्वासनलिकामें कुछ प्रदाह हो जाता है और इसका कारण ठंड लगना माना जाता है। पहले भी इसकी कुछ व्याख्या की जा चुकी है। जिन लोगोंके शरीरमें विजातीय द्रव्य भरा है वे ही ठंड लगनेसे रोगग्रस्त होते हैं, स्वस्थ व्यक्ति नही। सिरकी सर्दी भी दातके दर्द-जैसी ही इस वातकी सूचक है कि विजातीय द्रव्य फुफ्फुसोमें पहुंचनेके अनतर इस अंगमें पहुच गया है। एक अर्थमें यह फुफ्फुसोकी सफाईकी प्रक्रियामात्र है।

मेरा उपचार चलाते समय अधिक-से-अधिक समयतक खुली हवामें रहने और खिड़कियां खुली रखकर सोनेसे सर्दीका कष्टकर रूप समाप्त हो जाता है और वह शांत पडकर जल्दी ही चली भी जाती है। वात-कफज्वर (इन्फलुएजा) में भी यही वात होती है।

वात-कफज्वर

१८६० में, जब इस रोगने महामारीका रूप धारण कर लिया था, इस रोगसे आक्रांत वहुतसे व्यक्तियोंने मेरे उपचारसे अच्छा लाभ उठाया। कटि और मेहनस्नान तथा सारे शरीर और विशेष भागके वाष्पस्नानकी प्रभावकारिता भी उस समय भलीभाति प्रमाणित हो गई। इन स्नानोके साथ अनुत्तेजक आहार भी रखा गया था। खराव पाचन ही और रोगोकी तरह इसका भी वास्तविक कारण था और यह खराबी उदरमें विकृत द्रव्य एकत्र होनेसे ही पदा हुई थी। इस रोगमें ज्वर होनेका कारण भी इस तरह स्पष्ट हो जाता है। ठड लानेवाले स्नानोंके वाद आश्चर्यजनक रूपमें सुधार देख पडा। कारण यह था कि ऋतु-परिवर्तनकी वजहसे खमीर वना हुआ विजातीय द्रव्य शीघ्र ही वाहर निकल गया। वहुत

कम समयमें, यहातक कि एक-एक दिनमे लोगोको आरोग्य लाभ हुआ। इसमें औषधोपचारके परिणामस्वरूप होनेवाले कठिन रोगोके होनेकी कोई आशका भी नही थी।

गलेके रोग

उपचारके लिए मेरे यहा बहुत बडी सख्यामे रोगियोंके आनेसे मैं इस नतीजेपर पहुचा हू कि गलेके रोग इधर कुछ वर्षोंमें बहुत बढे है। औपधोपचारक स्थानिक उपचारद्वारा इन रोगोंसे छुटकारा दिलानेका प्रयत्न करते है। इससे रोग जीर्णावस्थामे परिणत हो जाता है, क्योंकि विकृत द्रव्यको दबाकर अदर पहुचा देनेसे आरोग्य-लाभमे किसी तरहकी सहायता नही मिल सकती।

गलेके रोग अदरके लदावके सूचक होते है, इसलिए फप्फुसोके विकार-ग्रस्त होनेपर ही इन रोगोका होना सभव है। पैतृक विजातीय द्रव्य भी गलेके रोगोका कारण हुआ करता है।

इन रोगोमे होता यह है कि विजातीय द्रव्य खमीर बननेपर नीचेसे ऊपरकी ओर बढता है। सिर और धडके बीच सकीर्ण मार्ग होनेके कारण गलेकी ओरसे इसका बहुत प्रतिरोध होता है इसलिए सिरके विकारग्रस्त होनेके पहले गलेको ही भुगतना पडता है। इस प्रकार आकृति-विज्ञानकी दृष्टिसे गलेकी स्थितिका विशेष महत्त्व है।

गलेके रोगका—चाहे वह स्वरभग हो या गलेका प्रदाह या स्वरयत्र या मुखकठका प्रदाह, और चाहे जो भी उसका नाम हो—अच्छा होना विजातीय द्रव्यके भारके रूपपर ही निर्भर होता है। वशानुगत जीर्ण रोगके उपचारमे महीनों और वर्षो भी लग जा सकते है।

गलगंड

पहाड़ी प्रदेशमे रहनेवालोको यह रोग विशेषरूपसे हुआ करता है। इसका कारण प्राय: अधिक बोझ ढोना माना जाता है। शरीरपर बाहर-

का दवाव—भारी वोझ ढोना—गलगडकी उत्पत्तिका कारण हो सकता है फिरभी इस रोगका एक और ही कारण है। ऊपरसे साफ और शुद्ध दिखने-वाले पहाडी पानीका प्राय. वुरा प्रभाव होता है। चट्टानों और भूभागसे होकर प्रवाहित होते समय यह प्रायः खनिज द्रव्यो (सीसा, तावा आदि) को ग्रहण कर लेता है। ये द्रव्य ऊपरसे नही देख पड़ते, पर शरीरमे पहुचने-पर विशेपकर उन लोगोंके शरीरमें जो इस पानीका वरावर उपयोग करते है, गड़वड़ पैदा कर देते है। एक सावारण परीक्षणसे यह वात स्पष्ट हो जायगी। ऊपरसे साफ दिखनेवाला यह पानी अगर कुछ देरतक धूपमे रहने दिया जाय तो वीरे-धीरे तलछट जमा होने लगेगी। ये विजातीय द्रव्य शरीरके एक विशेप भागमें जमा होकर गलगडकी उत्पत्तिमे सहायक होते है।

जिन लोगोका शरीर विजातीय द्रव्यको, विशेपकर पसीनेके रूपमे, वाहर निकालते रहनेकी अवस्थामें होता है वे रोगसे मुक्त रहते है, पर जिनका शरीर ऐसा नही है, रहन-सहनका तरीका सही नहीं है या पाचन खराव है उनके शरीरसे प्राकृतिक रूपमें मलका निकलना वद हो जाता है, पानीमेंका न पचनेवाला पदार्थ खमीरकी क्रिया उत्पन्न कर देता है जिससे विजातीय द्रव्य ऊपर वढकर गलेमें एकत्र हो जाता है और गलगडकी सृष्टि करता है। गलगड वाहरकी ओर न होनेपर कोई कष्ट नही होता, सामने और वगलकी ओर वृद्धि होनेपर कुछ असुविधाभर होती है। रोगके इस रूपमे खतरा भी वहुत कम होता है, पर अगर स्वरयत्रकी क्रियामे वाधा पड़ने लगे तो रूप गंभीर हो जाता है। जिन लोगोका जीवन सादा और शात है उनमें तो हानिकारक द्रव्योवाला यह पानी गलगड ही उत्पन्न करता है, पर जिनका मस्तिष्क उत्तेजनशील होता है उनमें यह मानसिक उत्तेजना उत्पन्न कर देता है।

ताजे ठडे पानीको स्वास्थ्यकर मानना भूल है। पानीका कड़ा होना उसके दुष्पाच्य होनेका प्रवल प्रमाण है। परीक्षणसे यह सिद्ध हो चुका है कि वहता हुआ और धूप खानेवाला तथा वर्षाका पानी ही मनुष्यके उपयोग-

के लिए सबसे अच्छा होता है। कडे ताजे पानीमे पौधों और फूलोकी बाढ अच्छी नही होती। धूपकी रासायनिक क्रियासे ही यह पानी अपाच्य विजातीय द्रव्योसे मुक्त हो सकता है।

प्रकृत्या मनुष्यके लिए पानी पीना अनिवार्य भी नही है। अगर भोजन सादा और प्राकृतिक हो तो प्यास लगेगी ही नही। अगर प्यास लगे भी तो पानीकी अपेक्षा रसदार फल अच्छे होते है।

एक महिला बहुत दिनोंसे आमाशयके रोगसे ग्रस्त थी। बादमे उसे गलगड हो गया और कुछ कालके बाद सास लेनेमें भी उसे तकलीफ होने लगी। मेरे उपचार, विशेषकर ठड लानेवाले स्नानसे सास लेनेकी तकलीफ कम हो गई और विजातीय द्रव्यका परावर्तन आरभ हो गया जिससे गलगडकी जगहका चमडा मुलायम हो गया और उसका आकार भी छोटा हो गया। दूसरे सप्ताहमें तो गलगंडका कोई चिह्न भी नही रहा।

शिरःशूल, अर्द्धकपाली, भेजेका क्षय और प्रदाह

इन कई रोगोका, जिनमें औषधोपचारक बड़ी सावधानताके साथ भेद किया करते हैं, एक साथ रखा जाना यो देखनेपर अजीब-सा ही मालूम होगा, क्योकि लोग जहां कष्ट होता है वहीं रोगका कारण ढूढनेके आदी हो गए हैं। सिरके रोगोंमें तो यह और बड़ी भूल है। कारण यह है कि इन रोगोंका उद्गमस्थान सिर न होकर उदर हुआ करता है। आकृतिविज्ञानके विशेषज्ञ इन रोगोंके प्रकट होनेके बहुत पहले ही उनकी प्रगति तथा प्रकट होनेकी अवस्थाकी पहचान कर ले सकते हैं। दाहिनी या बायी ओरकी अर्द्ध-कपालीकी और उसीकी तरह भेजेके प्रदाह और क्षयकी पूर्वप्रवृत्तिका निश्चय वर्षों पहले किया जा सकता है। अनुभवसे यह अच्छी तरह सिद्ध हो चुका है कि दाहिनी या बायी ओर एकत्र विजातीय द्रव्यके ऊपरकी ओर बढ़कर सिरमें पहुचनेपर ही अर्द्धकपाली होती है। सिरके कठिन रोग—यथा, भेजेका प्रदाह और क्षय—पृष्ठभागमें एकत्र विजातीय द्रव्यके कारण होते हैं। सिरके रोगोसे ग्रस्त लोगोमें वर्षों पहलेसे ही कब्ज या क्षयके रूपमें पाचनकी खराबी देख पड़ती है। इसके अनंतर अर्श और उदरमें गाठें प्रकट होती हैं। कभी-कभी उदरके अर्बुद या गाठें एकाएक गायब हो जाती हैं और मनुष्य सिरके रोगसे आक्रान्त हो जाता है। ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेवालेको ऐसे व्यक्तिके सिरमें निश्चित रूपमें परिवर्तन लक्षित होते हैं। उदरमे जो अर्बुद देख पड़ते थे वे ही अब सिरमें देख पड़ेंगे, पर ये उदरके अर्बुदोंसे आकारमें बहुत छोटे पर उनसे कड़े होंगे। बहुतसे रोगियोमें ये गाठे सिरके पिछले भागमें दोनो ओर बाहरसे ही देखी और मालूम की जा सकती है।

शरीर सारे विजातीय द्रव्यको सिरकी इन गाठोमें पहुंचानेमे समर्थ

नही होता। अगर खमीर काफी तेज न हो तो विकृत द्रव्य गर्दनमें, बाहुओंके नीचे या सीनेमें रह जाकर गाठोका रूप धारण कर लेता है; पर इससे यह नही समझ लेना चाहिए कि विजातीय द्रव्य गोल, कडी गाठोके रूपमें ही उदरसे ऊपरकी ओर बढता है। शरीर इस द्रव्यको एक भागसे उड़कर दूसरे भागमें जाने योग्य गैसके रूपमें परिणत कर देता है। शरीरमे बननेवाला खमीर अंगोके अग्र भागकी ही ओर बढा करता है, इसलिए गाठोमेंका द्रव्य खमीर बननेपर सिरकी ओर बढता है और भीतरका कोई अग उसे रोकनेमे समर्थ नही होता। अगर यह विजातीय द्रव्य पुन. सिरमे एकत्र होकर यक्ष्मिकाओ (ट्यूबर्किल्स) का रूप धारण कर ले तो इसे ही औषधोपचारक 'भेजेका क्षय' कहते है। जहा पहले उदरदेशमें विशेषकर, वंक्षणमें अर्शके या और प्रकारके अर्बुद देख पडते थे, वहा अब सिरमे यक्ष्मिकाए प्रस्तुत हो गई है। आरोग्यलाभकी क्रिया चलते समय इनका जो रूप देख पडता है उससे भी मेरे कथनकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है। मेरे ठड लानेवाले स्नानोके परिणामस्वरूप विजातीय द्रव्यका परावर्तन आरभ होनेपर सिरकी यक्ष्मिकाए तितर-बितर होकर पुन. उदरकी गाठोके रूपमे देख पडने लगती है। इनको छिन्न-भिन्नकर बाहर निकाल देनेपर ही सिरके रोगसे छुटकारा मिल सकता है, पर इससे यह न मान ले कि अर्शके प्रत्येक रोगीमे शिर शूलकी प्रवृत्ति होगी ही। मुझे तो अर्शके कुछ ऐसे भी रोगी मिले जिन्हे जीवनमे कभी शिर शूल हुआ ही नही। इसका एकमात्र कारण है विजातीय द्रव्यकी स्थितिमें अंतर होना।

सामने या पार्श्वमें विजातीय द्रव्य एकत्र हो तो वह सिरकी ओर जल्द नही बढता, अगर बढने भी लगे तो गर्दन और फुप्फुसोमे ही रुककर गाठो और यक्ष्मिकाओका रूप ग्रहण कर लेगा। पृष्ठभागमें एकत्र विजातीय द्रव्यसे बनी गाठोके रोगकी अपेक्षा इन स्थानोंमे एकत्र विजातीय द्रव्यके कारण उत्पन्न हुए रोग ज्यादा आसानीसे अच्छे होते है। आकृतिविज्ञानके सहारे बहुत दिन पहले ही यह पता चल जाता है कि विजातीय द्रव्य या गाठें किस मार्गसे सिरकी ओर बढ़ सकती है। अगर मार्गमें कही

रुकावट न पडे और भेजेमें गाठें वन जायं तो भेजेके प्रदाहके अनुकूल अवस्था प्रस्तुत हो जाती है। अगर विजातीय द्रव्यमें हलचल—खमीर वननेकी क्रिया या उसका इधर-उधर हटना—शुरु हो जाय तो स्वभावत तेज ज्वर हो जायगा। इसी अवस्थाको हमारे विद्वान् औषधोपचारक 'भेजेका प्रदाह' कहते है, पर जहातक रोगसे मुक्ति दिलानेका प्रश्न है, उनसे कुछ करते-धरते नही वनता, मुह ताकते रह जाते हैं। इस विवेचनसे यह भलीभाति स्पष्ट हो जाता है कि सिरके रोगोका उदरसे क्या संवध है। मै तो यह मानता हू कि भेजेका क्षय और प्रदाह ही नही, शिर शूलतक जितने भी छोटे-मोटे रोग हैं सवका उद्गमस्थान उदर ही है। अतर सिर्फ यह है कि छोटे रोगोमें उदरका विकार वहुत अधिक नही होता, पाचनसवधी मामूली खरावियां होती है। शिर शूलके जल्द दूर हो जानेका यही कारण होता है।

सिरके रोगो—अर्द्धकपाली, शिर शूल, भेजेका प्रदाह और क्षय—मे मेरी पद्धतिकी सफलता स्पष्ट रूपसे देखी जा सकती है। उससे यह सिद्ध हो जाता है कि इन सभी रोगोका एक ही सामान्य कारण होता है, और उसका आधार है उदर। अगर यह वात न होती तो किसी तरहका स्थानिक उपचार किए विना ही केवल ठड लानेवाले स्नानो और आहारकी सहायतासे इनका इतनी शीघ्रतासे दूर होना असभव ही होता। रोगोंसे विशेषकर सिरके रोगोंसे छुटकारा मिलनेका एकमात्र कारण यह है कि मेरी पद्धति रोगके मूल कारणपर ही आघात करती है।

मैंने प्राय देखा है कि एक ही वारके—कुछ अधिक देरतक चलाए गए—ठंड लानेवाले स्नानसे शिरःशूल और अर्द्धकपाली दूर हो गई है। सिरके पुराने रोग, जो वर्षोंसे वने हुए है और अधिक लदावके कारण पैदा हुए है, इतनी शीघ्रतासे नही जा सकते। विजातीय द्रव्यको पीछे हटाकर निकालना पड़ता है और इस क्रियामे रोगीका पुराना शिर शूल भी प्रकट हो जा सकता है। प्राय स्नानोंसे भी शिर शूल हो जाता है, क्योंकि विजातीय द्रव्यके पीछे हटते समय मस्तिष्ककी नाड़ियोंपर उसका जोरदार दवाव पड़ा करता है।

एक व्यक्ति अपने औषधोपचारकके निदानानुसार भेजेके क्षयसे पीडित था। उसने तरह-तरहके उपचारोका प्रयोग किया, पर लाभ होनेके वजाय उसकी हालत दिनोदिन खराव ही होती गई। पहले उसे शिरःशूल हुआ जो औषधोपचारसे दबा दिया गया। इसके पश्चात् उसकी हालत और खराव हो गई और भेजेका क्षय बढता गया। इसी दयनीय अवस्थामें वह मेरा उपचार कराने आया। उसका पाचन खराब होना स्वाभाविक था। मैंने उसे रोज कई बार ठड लानेवाले स्नान, प्राकृतिक आहार और पसीना निकालनेका प्रयत्न करनेको कहा। उभारकी अवस्था-का कुछ कालके लिए प्रस्तुत होना स्वाभाविक ही था। यह अवस्था विशेष-कर अर्बुदोके छिन्न-भिन्न होनेके समय प्रस्तुत हुआ करती थी और इसका अन्त होनेपर रोगीको हमेशा आराम मालूम होता था। दो मास उपचार चलानेपर वह पूर्ण रूपसे नीरोग हो गया।

सन्निपातज्वर, आम, विसूचिका और अतिसार

सन्निपातज्वर (टायफायड) का आक्रमण साधारणतः कम उम्रके लोगोपर होता है और सबल तथा हृष्ट-पुष्ट लोग ही विशेष रूपसे इसके शिकार हुआ करते हैं।

इसकी गणना सबसे भीषण ज्वरोमे की जाती है इसलिए इसका उभार भी बहुत उग्र हुआ करता है। इसका भय सारे ससारमें फैला हुआ है और औपधोपचारसे बहुतसे लोग इससे मरते भी हैं। मेरी चिकित्सा-पद्धति इसके भयानक रूपको बिलकुल दूर कर देती है। विजातीय द्रव्यकी मात्रा बहुत अधिक होनेपर ही यह अनिश्चय रहता है कि शरीर उभारकी अवस्थाका सहन करनेमें समर्थ होगा या नही, पर अगर ठड लानेवाले स्नानके बाद मेरे तरीकेसे प्राकृतिक रूपमें रोगीके शरीरसे पसीना निकाला जा सके तो समझना चाहिए कि अब कोई डर नही है। कठिन सन्निपात-ज्वरके रोगियोंके उपचारमें देखा गया है कि जिनको औपधोपचारमें हफ्तो ही क्या, महीनो रहना पड़ा है वे मेरा उपचार आरभ करनेपर एक ही दिन बाद खुली हवामें व्यायाम करने योग्य हो गए।

अनुभवमे यह सिद्ध हो गया है कि सन्निपातज्वर, फुफ्फुसप्रदाह (न्यूमोनिया) आदि तीव्र रोगोमें मेरा वाष्पस्नान बहुत लाभदायक होता है, पर इसका प्रयोग रोगीकी अवस्थाका विचार करके ही करना चाहिए—न तो बार-बार किया जाय और न अधिक देरतक ही। कटि और मेहनस्नान भी साथ-साथ चलाये जाने चाहिए। मुख्य बातोंके सबधमे सन्निपातज्वरका रूप और रोगो-जैसा ही होनेके कारण इसका उपचार भी वैसा ही होना चाहिए; हा, व्यक्तिविशेपकी अवस्थाके अनुसार उपचारके रूपमे कुछ अतर होगा ही।

एक महिलाने, जो बहुत दिनोंसे मेरी पद्धतिका प्रयोग कर रही थी,

लिखा था कि सन्निपातज्वर एव मसूरिकासे भीषण रूपमे ग्रस्त दो व्यक्तियो-को सिर्फ एक वाष्पस्नान और कुछ अधिक देरतक चलाये गए कटि और मेहनस्नानसे इतना लाभ हुआ कि वे बिस्तर छोड़कर बाहर जाने योग्य हो गए और छ. दिनोमे रोगका नामोनिशान भी नही रहा। मेरे उपचारो-का फल भी अनुकूल ही होता रहा है। जिनका शरीर बहुत निर्बल और औषधोपचारसे पहले ही क्षतिग्रस्त हो गया था उन्हे नीरोग करनेमे कुछ कठिनाई हुई।

आम और विसूचिका

आम (डिसेंटरी) और विसूचिकामे भी मुझे वही सफलता प्राप्त हुई है। दोनो ही रोगोमे पाचनमे अस्तव्यस्तता और आतरिक ज्वर भी होता है। विसूचिकामे तो आतरिक ज्वर इतना तेज होता है कि शरीर भीतर जलकर काला पड जाता है जो इस रोगसे मरनेवाले व्यक्तियोकी नाक और आखोका रग वदल जानेसे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। जिनका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा होता है उन्हीपर विसूचिका और आमका आक्रमण होता है, इसलिए एक व्यक्तिका रोगकी चपेटमे आ जाना और दूसरेका बेदाग बच जाना कोई सयोगकी बात नही है। अनुभवसे यह बिलकुल सिद्ध हो गया है कि जो लोग विसूचिकासे आक्रात हुए है उनका पाचन वहुत पहलेसे खराव रहा होता है। विसूचिका या आमका आक्रमण होनेके पहले, यहातक कि जव रोगका एक भी चिह्न प्रत्यक्ष नही हुआ होता, कुछ बेचैनी और शरीरमे भारीपन मालूम होता है। यह अवस्था खमीर वनना आरभ होनेकी सूचक है। मेरे विचारसे विसूचिका सवसे तेज शोधक उभारकी अवस्था है। ऋतु-परिवर्तन, शीत, भय, उत्तेजना आदि बाह्य कारणोसे खमीर वनना आरभ हो जानेपर विजातीय द्रव्य, विशेषकर उस हालतमे जब त्वचा निष्क्रिय होती है, उदरकी ओर—जहासे वह पहले चला था—वापस होने लगता है। अगर शरीरमे काफी जीवशक्ति मौजूद है तो इस कठिन उभारकी

अवस्थापर विजय प्राप्त की जा सकती है और रोगीका स्वास्थ्य वहुत अच्छा हो जायगा। इसके विपरीत, अगर औषधोपचारके कारण शरीरकी आरोग्यदायक शक्ति क्षीण हो गई है तो शरीर इस उभारकी अवस्थाका सहन नही कर सकेगा। विसूचिका या उससे कम खतरनाक आमके ज्वरमें एक विशेष प्रक्रिया होती है जो अन्य रोगोमें नही देख पडती—आतरिक ज्वर केवल पाचनागोमे केंद्रित हो जाता है जिससे भीतर तो ध्वसकारी ताप होता है, पर ऊपर ठड मालूम होती है।

इन रोगोके उपचारमे सवसे पहले अदरकी गर्मी कम करने और प्राकृतिक उपायोंसे पसीना निकालनेका प्रयत्न करना चाहिए। अगर अंदरके जलानेवाले खतरनाक तापपर जल्द विजय प्राप्त करने योग्य शरीरमें जीवशक्ति मौजूद होगी तो आरोग्यलाभ अपेक्षाकृत शीघ्र होगा। अदरकी अधिक गर्मीके कारण वहुतसे रोगियोको वाहरकी ठंडका अनुभव नही होता। ऐसे रोगियोंके लिए ज्यादा खतरा रहता है। सन् १८४९ और १८६६ में लाइपजिगमे विसूचिकाका प्रकोप होनेपर मै कई रोगियोकी हालत गौरसे देखता रहा। जिन रोगियोका शरीर गर्मी वाहरकी ओर लानेमे समर्थ हुआ उन्होने विसूचिकापर विजय प्राप्त कर ली, पर जिनकी गर्मी वाहरकी ओर नही पहुच सकी वे मर गए। एक महिलाको मध्याह्नमें गोदमें वच्चा लेकर आंगनमें शातिपूर्वक टहलते देखा और अपराह्नमें उसका प्राणात हो गया। विसूचिकामें खमीर वनने लगनेपर उसके शरीरकी ओरसे जरा भी प्रतिक्रिया नही हुई। उसका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ था। ओठो, आखो और नासाग्रका रग काला पड़ जानेसे यह स्पष्ट था कि उदरके अदर गलनेकी क्रिया भीषण रूपमें चल रही थी।

इस प्रकारके भीषण रोगोंसे मुक्ति दिलानेमें मेरा मेहन-स्नान सर्वाधिक सहायक होता है। उससे जीवशक्ति भी वढ जाती है। उदरका वाष्पस्नान भी वहुत प्रभावकारी सिद्ध होता है, पर इस स्नानके वाद मेहन या कटिस्नान अवश्य कराना चाहिए और अगर संभव हो तो पसीना लानेके लिए उसके वाद धूपस्नान करा देना चाहिए। अगर धूप-स्नानकी सुविधा

न हो तो पसीना लानेके लिए रोगीको विस्तरपर लिटाकर कपडेसे अच्छी तरह ढक देना चाहिए। प्राय. कुछ ही बारका ठड लानेवाला स्नान रोगी-को खतरेसे बाहर करनेके लिए काफी होता है। आहार तो पूर्ण रूपसे अनुत्तेजक होना ही चाहिए।

आममे भी और उपचारोके साथ-साथ ये ठड लानेवाले स्नान बडे प्रभावकारी होते हैं। कुछ बार मेहन और कटिस्नान और सिर्फ एक बार वाष्प-स्नान अतिसारसे मुक्ति दिलानेके लिए पर्याप्त होता है।

अगर यह पर्याप्त न हो और अवस्था गभीर हो तो एक ईंट गर्म कर ऊनी कपडेमें लपेट ली जाय और गुदाके नीचे रख दी जाय। इससे दस्त आना फौरन बद हो जाता है। कुछ घटोके बाद मेहन-स्नान कराया जाय और फिर ईंटका प्रयोग किया जाय।

विसूचिकासे मुक्ति पानेवाले प्राय: सभी लोगोने एक कठिन भारसे छुटकारा पानेका अनुभव किया है, क्योकि पहलेका सारा विजातीय द्रव्य बाहर निकल गया होता है। मेरे आकृतिविज्ञानके सहारे भी भार कम होना स्पष्ट रूपमें देखा जा सकता है। समझनेकी बात तो यह है कि कुछ ही दिनोमे शरीरकी अवस्था बिलकुल परिवर्तित कैसे हो जाती है।

चूकि विसूचिका खतरनाक उभारकी अवस्था है इसलिए इसके सक्रमणसे बचनेका पूरा-पूरा खयाल रखना आवश्यक है। दुर्भाग्यसे अब-तक इससे बचनेके उपाय नही मालूम हो सके हैं। सिर्फ मेरे आविष्कारसे लदावका, यहातक कि खतरनाक और प्रतिकूल अवस्थाका भी, जो विसूचिका-जैसा उभार उत्पन्न करनेवाली होती है, निश्चय करना सभव है।

भारत आदि देशोंमें विसूचिका रोगमे मेरी पद्धति बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। गर्म देशोमे इस प्रकारके रोगसे बचनेके लिए ठड लानेवाले स्नानोके साथ अनुत्तेजक आहार बडे कामका होता है। विसूचिका, आम आदि तीव्र ज्वरोपर इसका बहुत अच्छा प्रभाव होता है। ऐसे देशोंके

लोगोको इस प्रकारका आहार अपनानेमें डरनेका कोई कारण भी नही है।

अतिसार

अतिसार (डायरिया) भी साधारणत. आम और विसूचिकाका ही छोटा रूप है, पर विसूचिकासे किसी प्रकार कम नही है। जिन बच्चोको बोतलसे दूध पिलाया गया है और जो उसके परिणामस्वरूप विजातीय द्रव्यमे भरे है उन्हीको साधारणत. यह रोग होता है। इसका उपचार भी वही है जो विसूचिकाका है। अगर बच्चेको माता या पिताके साथ सुला दिया जाय तो उसे जल्द पसीना निकल आयेगा। सबल लोगोपर भी प्राय: इसके सामयिक आक्रमण हुआ करते हैं।

अतिसार चाहे जैसा भी हो, यह शरीरका अपनेको स्वस्थ करनेका एक प्रयत्नमात्र है, इसलिए अगर यह बहुत दिनोतक न बना रहे तो इसे अच्छा ही मानना चाहिए। इस प्रकारकी उभारकी अवस्थासे गुजरनेपर हर एक आदमी नवजीवनका अनुभव करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेके लिए किस प्रकार सामयिक प्रयत्न किया करता है।

अतिसार मलावरोधका ठीक उलटा जान पडता है, पर अगर मैं यह कहूं कि दोनो ही अतिभोजनके कारण उत्पन्न होनेवाले आंतरिक तापके परिणाम है तो किसीको आश्चर्य नही होना चाहिए। जिस तरह एक ही कारणसे एक व्यक्ति तो मोटा-ताजा और हृष्ट-पुष्ट और दूसरा दुबला-पतला और कमजोर होता है उसी प्रकार अतिसार और मलावरोधका भी एक ही कारण होता है। अगर कटिस्नानसे कब्ज दूर न हो तो मलत्यागके लिए मैदान, विशेषकर जगलकी ओर निकल जाना चाहिए। ताजी हवाका शरीरपर आश्चर्यजनक प्रभाव होता है; जिस बातका अंधेरे कमरेमें होना असभव होता है वह ताजी हवामे आसान हो जाती है।

पित्त ज्वर, सतत ज्वर, पीत ज्वर, कुष्ठ आदि उष्ण देशीय रोग

उष्ण देशोमे विशेष रूपसे होनेवाले ज्वरोको चाहे जो नाम दिये जाय और चाहे जिस रूपमे वे देख पड़ें, पर उनके आरंभ होने और बढने-का एक ही कारण होता है—विजातीय द्रव्यका खमीर बनना। उष्ण देशोकी आबहवा और दिन-रातके तापमें होनेवाले अन्तरपर ध्यान देनेपर इन ज्वरोकी विषमताका, जो खमीरकी क्रियाकी तेजी और प्रबलताके अनुपातमे बढती जाती है, कारण फौरन समझमे आ जाता है। उष्ण देशोके निवासियोमे, यहातक कि उन लोगोमे भी जिनमें विजातीय द्रव्य अपेक्षाकृत कम मात्रामे होता है, भीषण ज्वरके फैलनेके अनुकूल सारी परिस्थितियां मौजूद रहती है। समशीतोष्ण देशोमे यह बात इस रूपमें नही देखी जाती। स्वभावत. इसीके परिणामस्वरूप वहा ज्वर विभिन्न रूपोमे प्रकट हुआ करता है।

पीत ज्वर

पीत ज्वर सबसे अधिक भयानक होता है। यह नाम पडनेका कारण यह है कि इसमे त्वचा क्रमश. पीली पडती जाती है और यह शायद औषधोपचारके कारण होता है। इस रोगमे आरभमे थकान, सिरदर्द, शूल, प्यास, चर्मकी शुष्कता आदि लक्षण देख पड़ते है; बादमें चेहरा काला पड जाता है और रोगी काली-काली चीजोका वमन करने लगता है, आखे पीली हो जाती है और त्वचाका रग भी, प्राय मृत्युके बाद वैसा ही हो जाता है।

प्रयत्न तो यही होना चाहिये कि यह रोग पैदा ही न हो। इसका उपाय भी आसान ही है। एक तो आहार अनुत्तजक, निरामिप और

संयत हो; दूसरे, रहन-सहनका ढंग प्राकृतिक हो और मेरे ठंड लानेवाले स्नान चलाये जाते रहें। यह बात अवश्य है कि उष्ण देशोंमें इन स्नानोंके लिए नातिशीतोष्ण देशोंकी तरह ठंडा पानी नहीं मिल सकता, पर हवा और पानीके तापमानका सबब दोनों प्रकारके देशोंमें बहुत कुछ एक ही जैसा होता है। इसके अलावा जो ताप खमीरका कारण होता है वही आरोग्यलाभकी प्रक्रियामें भी सहायक होता है; क्योंकि उष्ण देशोंमें नातिशीतोष्ण देशोंकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे बदनको गर्मकर पसीना लाया जा सकता है। औषधविज्ञान कुनैन, एंटीपायरिन आदि दवाओंके जरिये नाड़ियोंको शिथिलकर ज्वर मुक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। कम तेज दवाका इस्तेमाल करनेके बाद ज्यादा तेज दवा देनेकी जरूरत पड़ेगी और अंतमें अधिक-से-अधिक तेज दवाओंके जरिये नाड़ियोंको निष्क्रिय करते जानेका भीषण परिणाम नाड़ी-रोगोंके रूपमें प्रकट होगा जिन्हें अच्छा करना और भी कठिन होगा।

कुष्ठ

उष्ण देशोंका सबसे भयंकर अभिशाप कुष्ठ रोग है। नातिशीतोष्ण देशोंमें रहनेवाले लोग इसकी भीषणताका अनुमान भी नहीं कर सकते। मृत्यु ही इस रोगसे ग्रस्त लोगोंको कष्टसे छुटकारा दिलाती है; अन्य कोई उपाय उन्हें नहीं मालूम है। छूतके भयसे वे अपने परिवार और मानव-समाजसे पृथक्कर एक टापूपर या किसी खास अस्पतालमें, जहां उनका अपना कोई नहीं होता, अपने भयंकर अंतकी प्रतीक्षा करनेके लिए रख दिये जाते हैं। अधिक-से-अधिक यही होता है कि समयपर उन्हें भोजन पहुंचा दिया जाता है, इसके अलावा उनके साथ और किसी तरहका सम्पर्क नहीं रखा जाता।

नातिशीतोष्ण देशोंमें कुष्ठ रोग शायद ही कहीं नजर आता होगा। उष्ण देशोंमें इस रोगका जो कारण होता है वही नातिशीतोष्ण देशोंमें संधिवात और शोथ उत्पन्न करता है। जिस तरह सूर्यका ताप, जल और

मिट्टी प्राय. समान होते हुए भी गर्म देशोमे खजूर और नातिशीतोष्ण देशोमें वलूत पैदा होता है ठीक उसी तरह कुष्ठ भी गर्म देशोकी ही उपज है।

गीले और सूखे कुष्ठमें कुछ अतर होता है। पहलेमे शरीरका गलना प्रायः वर्षों चलता है और उसमे भयकर पीडा भी होती है। रोग बराबर बढता जाकर बहुत गहराईतक पहुच जाता है और तब मृत्यु आकर छुटकारा दिला देती है। सूखे कुष्ठमे पहलेकी तरह पाचनकी खराबी वढती जाती है और गलनेवाले काले धब्बे अगोंके अग्रभाग—विशेष-कर हाथ-पैरमें धीरे-धीरे बनते जाते है जो तेज आतरिक ज्वरके सूचक होते है। इसके अनन्तर मास गायब होने लगता है—पहले तो उगलियो-का सिरा गायब होता है और बादमें शरीरका शेषाग भी गलने लगता है, केवल अस्थिया और जोड बच जाते है। शरीर वृक्षकी तरह सूखता जाकर ममी* का रूप धारण कर लेता है। अस्थियो और जोड़का आकार कुछ बढा हुआ जान पडता है, मांस घटता जाता है और दुर्भाग्यग्रस्त रोगी ककालके रूपमे परिणत होकर कालका ग्रास बन जाता है।

और रोगोकी तरह ही कुष्ठ रोगका कारण भी विजातीय द्रव्यका लदाव ही है। यह या तो पैतृक होता है या अप्राकृतिक जीवनका परिणाम। रोगका उद्गमस्थान उदर या पाचन-सस्थान होता है जिसकी अवस्था बिलकुल असाधारण हो जाती है। उष्ण देशोका ताप विजातीय द्रव्यको खमीर बनाकर अगोके अग्रभागकी ओर पहुचा देता है जहा वह भीतरके दबावके कारण जमा हो जाता है। इस जमावके कारण इन भागोकी ओर जानेवाली जीवनवाहिनी नाडियोका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है जिससे उनकी क्रिया बद हो जाती है। कुष्ठके रोगियोका शरीर सवेदनशून्य हो जानेका यही कारण है। इन रोगियोमें आतरिक ज्वर वहुत तेज होता है, पर ऊपर ठड मालूम होती है। शुष्क कुष्ठमें इस तीव्र

---

*प्राचीन मिस्रमें शवमें एक तरहका मसाला लगाया जाता था जिससे वह हजारों वर्ष सुरक्षित रह सकता था। 'ममी' इसी प्रकारके शवको कहते हैं।

आतरिक तापसे अगोंके अग्रभाग सूख जाते हैं; क्योकि पाचनसंस्थान खराब हो जानेसे पोषक खाद्य पदार्थ खाते रहनेपर भी रोगीको पोषण-की प्राप्ति नही होती; भोजन शरीरमें पहुचता अवश्य है, पर रोगी निराहार ही रहता है। इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि महत्त्व इस बातका नही है कि रोगी क्या खाता है या ऐसा पदार्थ खाता है जिसे
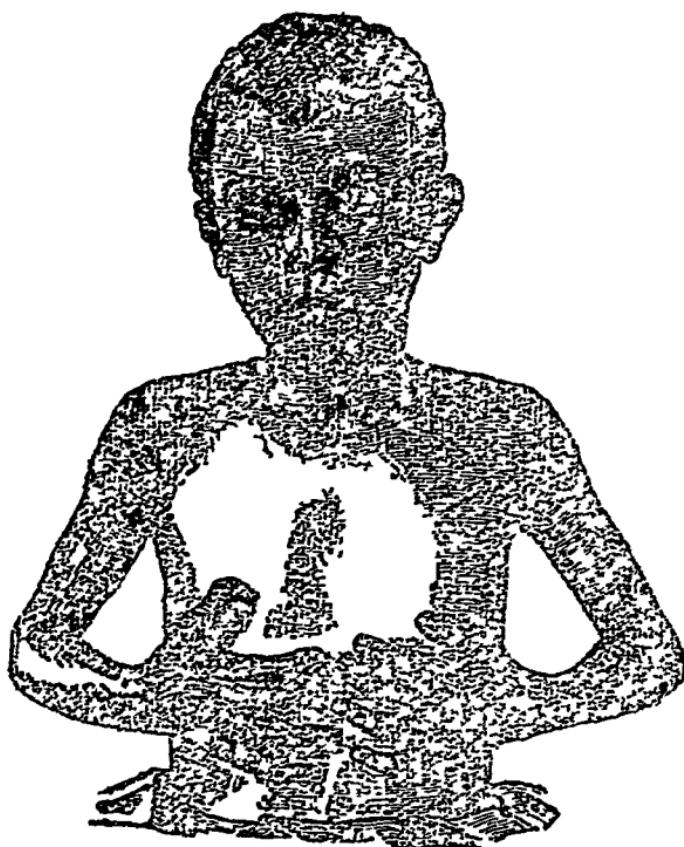
चित्र—१ (उम्र १५ वर्ष)

रसायनशास्त्री शरीरका निर्माण करनेवाला मानते है, वल्कि इस बातका है कि रोगी किस तरहका खाद्य पदार्थ वस्तुत. पचा सकता है।

गीले कुष्ठमें गलनेकी क्रिया ठीक शोथकी-सी होती है। शोथमें भी जल

बननेके पहले गलनेकी क्रिया वर्षोसे अदर चलती रहती है। एक प्रकारसे गलना शरीरमे चलनेवाली क्रियाकी अतिम अवस्था माना जा सकता है। शोथ-से रूप भिन्न होते हुए भी गीले कुष्ठमे अगोका गलकर जल बनना ठीक उसी रूपमे होता है। गर्म देशोमे कुष्ठका जो रूप होता है वह नातिशीतोष्ण
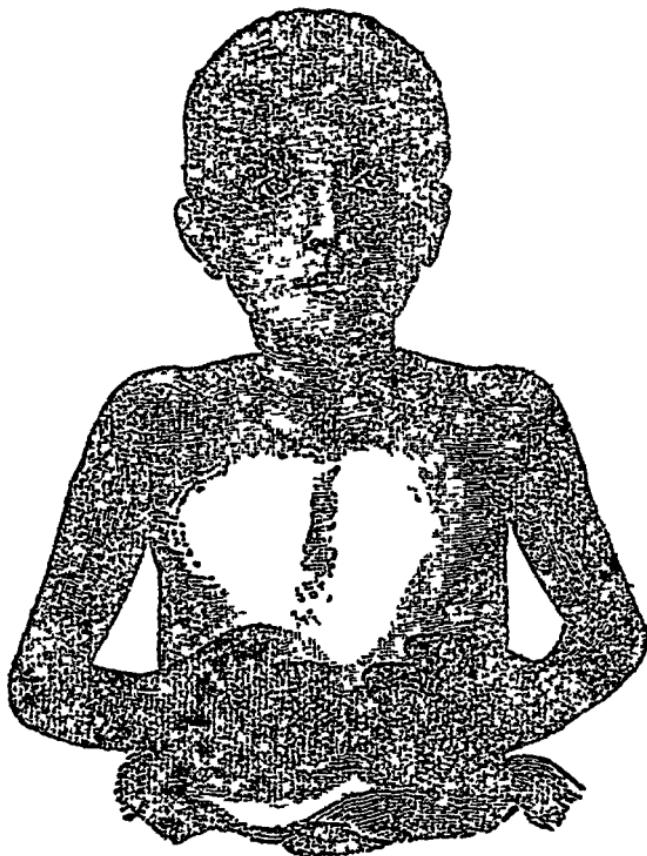
चित्र—२ (उम्र १३ वर्ष)

देशोमे नही देख पडता, पर कभी-कभी वैसी ही अवस्था देखी जा सकती है। क्षयका रूप भी बहुत कुछ ऐसा ही होता है। अतर सिर्फ यह होता है कि ठडे देशोमे विजातीय द्रव्य गर्म देशोकी तरह अंगोंके अग्रभागमे उतनी तेजी और जोरके साथ नही पहुच पाता, वह अदर ही खमीर बन-कर फुफ्फुसो या भीतरके अन्य अगोको नष्ट करता है।

कुष्ठकी चिकित्साके सवंधमें औषधविज्ञान साफ-साफ अपनी असमर्थता प्रकट करता है। वह ज्वरके वास्तविक रूपसे परिचित नही है और कुष्ठको ज्वरमूलक रोग मानता भी नही । आतरिक तापपर चढ़ाईकर विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेपर ही कुष्ठसे छुटकारा मिल सकता है। यह सभव न होनेपर पूर्ण आरोग्यलाभकी आशा नही की जा सकती, अधिक-से-अधिक यही हो सकता है कि अवस्थामे कुछ सुधार हो जाय।

औषधोपचारसे रोगकी अपेक्षा कही अधिक क्षति होती है। वटा-वियावाले रोगीमे, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, कुष्ठविशेषज्ञने कुष्ठके कीटाणुओका होना असन्दिग्ध रूपमे माना था, पर विषैली दवाओंके जरिये या और किसी उपायसे उनसे छुटकारा नही दिलाया जा सका। अब जरा मेरी पद्धतिसे प्राप्त होनेवाली सफलताकी उससे तुलना कीजिये जिससे कुष्ठके सारे कीटाणुओका अत हो गया और इस वातको उस विशेषज्ञने भी स्वीकार किया। अनुत्तेजक आहार और ठड लानेवाले स्नानोंसे ही यह रोग अच्छा हो सकता है। हा, यह वात अवश्य है कि जिन रोगियोका पाचन और त्वचाकी सक्रियता सुधारके योग्य होगी वे ही आरोग्यलाभकी आशा कर सकते है।

मेरी पद्धतिमे छूतका भी डर नही रहता। जो छूतसे डरते है उनके लिए यह वड़े महत्त्वकी वात है। आवश्यकता है केवल प्राकृतिक रहन-सहनका तरीका अपनाने और ठंड लानेवाले स्नानोद्वारा शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेकी। इससे वे छूतके खतरेसे ही नही वचे रहेगे, उनका साधारण स्वास्थ्य और शारीरिक तथा मानसिक शक्ति भी वहुत अच्छी हो जायगी।

आरोग्य प्रदान करनेवाले प्राकृतिक साधनोको औषधोपचारक कितना महत्त्व देते है यह इसी वातसे स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने रोगियो-को कमरेमें रखकर सावधानीसे खिडकियां वद करा देते है जिसमें ताजी हवा, विशेपकर रातमें, आने न पाये। इससे कमरेका रोगीकी गदी सांस

और खमीर बनते हुए विजातीय पदार्थसे व्याप्त हो जाना स्वभावतः अनिवार्य हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें अगर कुष्ठ संक्रामक हो जाय तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही होगी।

रोगियोके आरोग्यलाभका जिक्र करनेके पहले मै कुष्ठ तथा अन्य रोगो (उष्णदेशीय ज्वरादि) से बचनेका उपाय सक्षेपमें बतला देना चाहता

चित्र--३ (उम्र ९ वर्ष)

हूं जिसमें अवस्था खराब होनेपर भी रोग खतरनाक नही हो सकेगा और अगर गड़बड़ी भी होगी तो बहुत कम। जिनमें रोगकी प्रवृत्ति या विजातीय द्रव्य अधिक मात्रामें होगा उन्हीपर इन रोगोका आक्रमण हो सकता है। विजातीय द्रव्यको उत्तेजित करनेवाला कोई भी कारण नये सिरेसे खमीर

(उभार) उत्पन्न कर जीवनके लिए खतरा पैदा कर दे सकता है। मेरे आकृतिविज्ञानके सहारे रोगकी पूर्व प्रवृत्ति वर्षो पहले पहचानी जा सकती है। जो इस विज्ञानसे परिचित नही है वे भी कुछ हदतक इस पूर्व प्रवृत्तिका निश्चय कर सकते है। चतुर प्रकृति माताने सहज ज्ञानके रूपमें एक अमोघ साधन प्रस्तुत कर दिया है जिसे दुर्भाग्यवश बहुतसे लोग नही समझ पाते। जो लोग विजातीय द्रव्यसे भरे हुए हैं उनका प्रकृतिके साथ थोडा भी सामजस्य हो तो यह सहज ज्ञान उनमें सक्रमणके प्रति भय और आतक उत्पन्न कर देता है। बरलिन तथा अन्य स्थानोके तीन लडकोका, जिनकी अवस्था नौ, तेरह और पद्रह वर्षकी थी, मैंने उपचार किया जिसमे मेरी पद्धतिकी श्रेष्ठता भलीभाति प्रमाणित हो गयी, विशेषकर उस हालतमें जब कि औषधोपचारकोने साफ-साफ जवाब दे दिया था। उपचार शुरू करनेके समय उनकी हालत बहुत ज्यादा खराब थी। हाथकी उगलियोका सिरा, यहातक कि दूसरी ओरका भी कुछ भाग गल गया था और शेष बहुत सूज गया था और गिरनेहीवाला था जैसा कि छोटे लड़कोंके चित्रों (४,५) में देख पड़ता है। दाहिने हाथकी तर्जनी तो बहुत अधिक गल गयी थी। शेष दोनो लडकोंके पैरोकी हालत भी भयकर थी (चित्र ६, ७)। वे विजातीय द्रव्यसे आक्रात होकर आकृतिहीन पिडके रूपमें परिणत हो गये थे। गलनेकी क्रिया कई जगह शुरू हो गई थी और जख्मोंसे, जो हड्डीतक पहुच गये थे, पूय निकल रहा था। हाथोका कुहनीतकका और पैरोका घुटनेतकका भाग सवेदनशून्य हो गया था। बरलिनके एक चिकित्सकने हाथोमे, जहातक वे सवेदनशून्य हो गये थे, सूई चुभोकर इसकी परीक्षा भी की थी। लडकोंकी हालत इस कदर खराब थी कि उस समय उनका चित्र भी नही लिया जा सकता था। (यहा जो चित्र दिये गये है वे एक सप्ताह उपचार चलानेके बाद—हालतमें सुधार हो जानेपर—लिये जा सके।)

प्रायग. कटिस्नानके साथ रोज तीन बार मेहन-स्नान, प्राकृतिक आहार, खुली हवामें व्यायाम और पसीना निकालनेका क्रम चलाया गया।

इसका प्रभाव बडे महत्त्वका हुआ। उपचार आरभ करते समय उनकी साससे बडी बदबू आती थी; उपचारकालमे तो वह असह्य ही हो गयी—
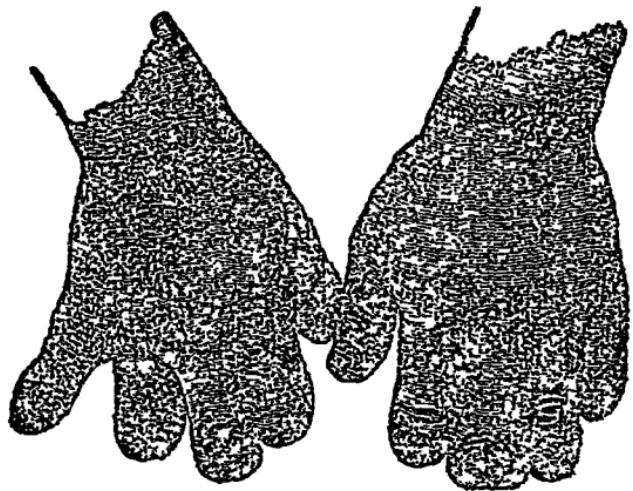
चित्र—४ (चित्र दोके लड़केके हाथ)

सड़ानकी बडी कड़ी गध आने लगी। विकृत पदार्थमें गति उत्पन्न हो जाने-

चित्र—५ (चित्र तीनके लड़केके हाथ)
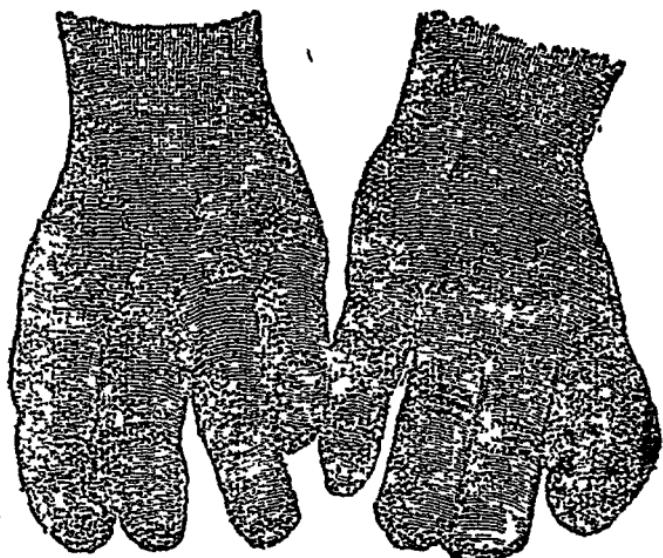
से वह मार्ग पानेका प्रयत्न कर रहा था। स्नानोंके समय यह बात विशेष-रूपमें देख पडती थी।

सुवहके भोजनमें चोकरदार आटेकी रोटी और कुछ सेव तथा शाम-को रोटी, उवली हुई तरकारी, थोड़ा मक्खन और नाममात्रका नमक दिया जाता था, मास, शोरवा तथा इस तरहकी अन्य चीजोंकी विलकुल मनाही थी। पेयके रूपमें केवल ताजा पानी दिया जाता था।

एक ही पक्षमें खुले घावोका वहना विलकुल वन्द हो गया और वे भीतरकी ओरसे भरने लगे। वड़े लडकेके घाव, जो और भी वडे थे दूसरा महीना शुरू होनेतक नही भरे। हाथोंकी हालतमें भी वहुत परिवर्तन हुआ। दूसरे ही महीनेमें उंगलिया पतली होने लगी जो उनपर पडी हुई शिकनसे स्पष्ट हो जाता है। अव विजातीय द्रव्य उदरकी ओर ठीक उसी तरह वापस होने लगा जिस तरह वह अगोंके अग्रभागकी ओर वढ़ा था। हाथों, पैरो और विशेपकर जोड़ोंमें खिचावका-सा दर्द होनेसे उन्हें इसका स्पप्ट रूपमें अनुभव हो रहा था। उपचार आरभ होनेके समय वड़ा लड़का अपने जूते, जो विशेपकर उसीके लिए वनवाये गये थे, पहन भी नही सकता था, पर चार सप्ताहके उपचारके वाद वह चमड़ेके साधारण जूते पहनने योग्य हो गया और जो अग सुन्न हो गये थे उनमें सवेदन होने लगा जो स्वभावतः पाचनके सुधारका परिणाम था।

मेरे पास आनेके समय उन्हे जरा भी भूख नही मालूम होती थी, पर एक ही सप्ताह उपचार चलानेपर उन्हे जो मात्रा दी जाती थी उससे उनकी तृप्ति नही हो पाती थी, क्योंकि उनकी पाचनशक्ति अव काफी सक्रिय हो गयी थी। इन दुर्दशाग्रस्त वालकोंकी तुलना अव पहलेकी हालतसे नहीं की जा सकती थी—जहां मृत्यु निश्चितप्राय थी वहा अव चेहरेसे प्रसन्नता झलक रही थी।

इन सफल परिणामोंके आधारपर मैं निश्चयात्मक रूपमें कह सकता हू कि कुष्ठ रोगका कारण भी वही होता है जो अन्य रोगोका। केवल वही रोगी अच्छे नही किये जा सकते जिनका रोग वहुत अंदर चला गया है और जीवनके लिए जो अंग वहुत आवश्यक हैं वे नष्ट हो गये हैं। ऐसे

भाग्यहीन रोगियोको भी मेरी पद्धतिसे राहत मिलेगी और उनकी मृत्यु शातिपूर्वक होगी।
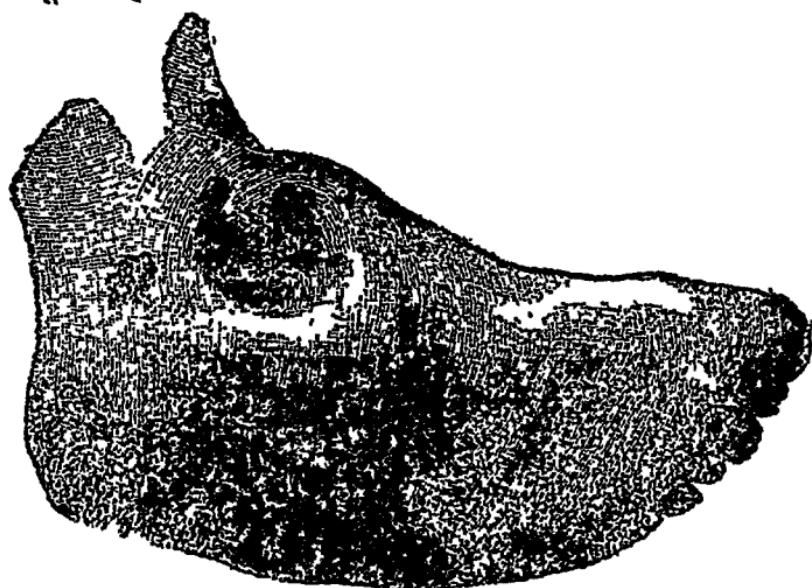
चित्र—६ (चित्र एकके लड़केके पैर)
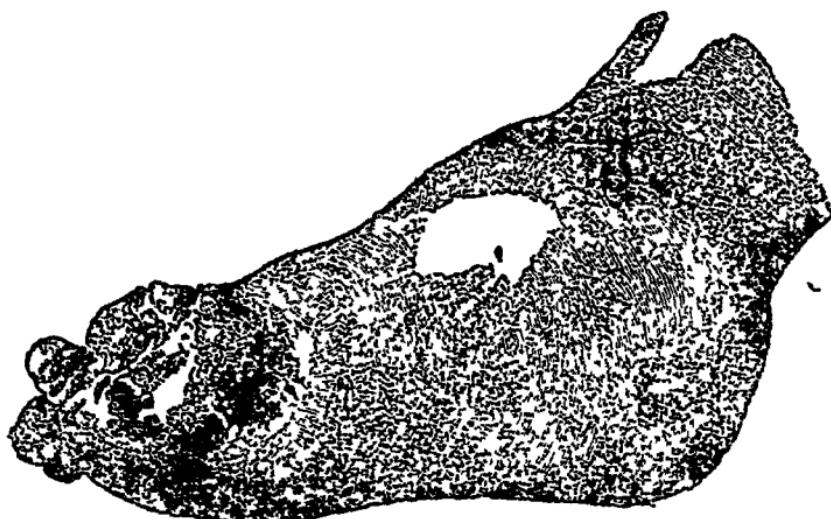
चित्र—७ (चित्र दोके लड़केके पैर)

कच्छु, कृमि, केंचुआ, पराश्रयी कीट तथा अंत्रवृद्धि

यहा भी मैंने ऐसे कई रोगोंको एक ही श्रेणीमें रख दिया है जो बाह्य लक्षणोकी दृष्टिसे बिलकुल भिन्न होते हुए भी एक ही सामान्य कारणके परिणाम होते है। मेरी यह अवधारणा दीर्घकालव्यापी चिकित्सामें मिले ठोस प्रमाणोपर ही आधृत है। कच्छु तथा इस प्रकारके अन्य पराश्रयी कृमियोंसे उत्पन्न रोगोका उपचार करते समय पहले यह समझ लेना आवश्यक हो गया कि कच्छु-कीटाणुओका प्रजनन कैसे होता है और उनकी क्या प्रकृति है।

यह बात सबको भलीभांति ज्ञात है कि वसत ऋतुका—जिस समय प्रकृतिकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है—एक ही उष्ण दिवस वृक्षोके किशलयोपर असख्य कीट-पतग उत्पन्न करनेके लिए काफी होता है। हम अपनी आखोसे उन्हे सुदर-सुदर पत्तियोको चट कर जाते देखते रहते है, पर उनको इस कार्यसे विरत करनेमे समर्थ नही होते। उसके बाद ठडी रात आती है और ये सारे-के-सारे परोपजीवी कीट जैसे एकाएक आए थे वैसे ही एकाएक गायब भी हो जाते है। प्रकृति तापमान घटाकर एक ही रातमे वह काम कर दिखाती है जिसे करना हम लोगोंके लिए बिलकुल असंभव होता है। सारे परोपजीवी प्राणी प्रकृतिके इसी नियमके वशवर्ती है।

इस प्राकृतिक घटनाके निरीक्षणसे हम इसी परिणामपर पहुचते है कि कच्छु-कीटाणु, कृमि, जू तथा अन्य पराश्रयी प्राणी उसी हालतमे बने रह सकते है जब उन्हे पोषण प्रदान करनेवाला माध्यम प्राप्त हो। यह माध्यम उसी शरीरमें पाया जा सकता है जो रुग्ण अर्थात् विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ है। इसके अलावा एक बात और है—वह यह कि इस

प्रकारके प्राणियोंका जीवन तापके एक निश्चित ऊचे मानपर ही बना रह सकता है। अनुभवसे यह सिद्ध हो चुका है कि यह तापमान उन्ही शरीरोमे पाया जा सकता है जो विकृत द्रव्यसे भरे हुए हैं। अगर हम असाधारण तापको घटाकर औसत दरजेपर लाने और साथ ही विकृत द्रव्योंको बाहर निकालनेमें समर्थ हो जाय तो इन परोपजीवी प्राणियोके और अधिक कालतक बने रहनेकी सभावनाका अत हो जायगा और वे जल्द ही गायब हो जायेंगे।

जिन लोगोने मेरी पूर्वलिखिन व्याख्याओको ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा उन्हे यह भलीभाति ज्ञात हो गया होगा कि यह आतरिक ताप मेरे ठड लानेवाले स्नानो, अनुत्तजक आहार और अन्य प्रचलित उपायोसे ही दूर किया जा सकता है। हां, यह बात जरूर है कि इन उपायोका रूप रोगी-की अवस्थाका विचार करके ही निश्चित करना पडेगा। इस प्रकार मेरी नयी चिकित्सा-पद्धतिके विचारमे इन रोगोका भी कारण वही होनेसे जो साधारणतः और रोगोका होता है, उपचारके वे ही तरीके काम-मे लाए जायगे जो दूसरे रोगोमें अबतक कभी विफल नही हुए हैं। औषधोपचारसे तो शरीरको और अधिक क्षति ही पहुचती है।

नीचेके कुछ मनोरजक उदाहरणोसे इस शुष्क विषयका स्पष्टी-करण आसानीसे हो जायगा।

एक सज्जन विभिन्न प्रकारके आत्रकृमियोके रोगसे ग्रस्त थे। इस रोग-के साथ नाड़ी-सस्थान और पाचनका अव्यवस्थित होना स्वाभाविक ही था। उनका मल कृमियोंसे भरा रहता था, वे मरणासन्न हो गये थे और अदरसे उनका शोषण होता जा रहा था। मेरी पद्धतिसे उन्हे राहत मिली और दूसरे ही महीनेंमे कारण दूर हो जानेपर कृमि भी लापता हो गये। वे क्रमशः आरोग्यलाभ करते गये और उनकी अवस्था जीर्णरोगसे पूर्ण स्वास्थ्यमे परिवर्तित हो गई। कटि और मेहन-स्नान, प्रस्वेदन, अप-क्वाहार आदिके द्वारा विकृत द्रव्य बाहर निकालकर आंतरिक ताप कम करनेपर ही यह आरोग्य-लाभ संभव हो सका।

औपधोपचारके सिलसिलेमें यहा कच्छुके एक रोगीका उदाहरण दिया जा सकता है। सत्रह वर्षका यह नवयुवक कई अस्पतालों और चिकित्सागृहोंमें रहकर इस रोगका उपचार करा चुका था, पर कही उसे जरा भी लाभ नही हुआ। अतमें एक प्राध्यापकने व्यग्यमें मुझसे मिलनेको कहा, क्योकि उनके पास अव इसका कोई उपाय नही था। औपधोपचारसे कोई लाभ होते न देख वह कष्ट और लाचारीकी हालतमें मेरे यहां पहुचा। उसके हाथ देखनेमें भयकर मालूम होते थे। आकृतिविज्ञानके सहारे मैं इस नतीजेपर पहुंचा कि वह मदाग्निजन्य जीर्ण उदररोगसे वर्पोसे पीड़ित है और विकृत रस तथा अशुद्ध रक्त स्वभावत कच्छुके लिए अच्छा पोपण प्रदान कर रहे हैं। कच्छु-कीटाणु वहुत कुछ दंडाणु (वेसिलस) जैसे ही होते है और वे गलते हुए पदार्थसे ही अपना आहार प्राप्त करते हैं। विना उपयुक्त माध्यमके उनका अस्तित्व सभव नही है। इस रोगमें भी कटि और मेहन-स्नान, प्राकृतिक आहार तथा वाप्प-स्नान बडे लाभदायक हुए। पाचन शीघ्र ही सुधरने लगा और इसके साथ ही कच्छुके कीटाणु भी कम होने लगे, क्योकि अव उन्हे पोपण नही मिल रहा था। अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर यह स्पप्ट हो गया कि ये कीटाणु नष्ट होते जा रहे हैं। उपचारके तीसरे सप्ताहमें जहां-तहा दो-एक कीटाणु वच गये थे और चौथे सप्ताहमें तो उनका नामोनिशान भी नही रहा। रोगीकी शक्ल विलकुल वदल गई, यहांतक कि उसे पहचानना भी मुश्किल हो गया। रोगीकी प्राकृतिक शक्तिने वह कर दिखाया जो सरकारी उपाधिधारियोंकी सारी विद्या मिलकर भी नही कर सकती थी, और यह सब विना दवा या नश्तरका प्रयोग किए केवल उपर्युक्त उपायसे सपन्न हुआ।

अंत्रवृद्धि

आत उतरनेका कारण उदरमें विजातीय द्रव्यके लदावके साथ-साथ अत्यधिक तनाव है। अंत्रच्छदमें जहा रुकावट पड़ती है वहां आंत अधिक भार होनेके कारण अंत्रच्छदको विदीर्ण कर वाहर निकल आती है।

भेदनकी यह क्रिया सभी रोगियोमें एक ही जगह नही होती, विभिन्न स्थलोंपर हुआ करती है, पर सबका कारण एक ही होता है, इसलिए आघात, पात तथा इस तरहकी अन्य दुर्घटनाओंको इसका कारण मानना भूल है। दुर्घटनाए भेदनका तात्कालिक कारण हो सकती है, पर उसका मूल कारण नही हो सकती, मेरी पद्धतिसे विकृत द्रव्य बाहर निकाल देनेपर यह भेदन या विदारण भी ठीक हो जाता है। इस हालतमे कमानीका प्रयोग करना, जो रोगको दूर करनेमें कभी समर्थ नही होती, बिलकुल अनावश्यक हो जायगा।

इस रोगमे भी मेरी पद्धतिको बडी सफलता मिली है। इसमे भी हमारा रोगोकी एकतावाला सिद्धात ही लागू होता है। आरोग्य-लाभके लिए आवश्यक समयकी अवधि विजातीय द्रव्यकी मात्रा और भेदनके नया या पुराना होनेपर निर्भर है। अगर रोगी वृद्ध हो तो उसमे जीवशक्तिकी मात्रा पहलेसे ही कम होगी, इसलिए युवकोकी तरह पूर्ण आरोग्यलाभकी आशा नही की जा सकती।

कर्कटिका और मांसांकुर या अधिवर्द्धित मांस

कर्कटिका रोग, जिसकी भयकरतासे सब लोग डरा करते हैं, बाहरी प्रभावो या उनके कारण होनेवाली विकृतियोंका परिणाम नही है। इसका मूल शरीरमें होनेवाली उन क्रियाओमें ढूंढना चाहिये जो इस ध्वसक रोग-का क्षेत्र या कारण प्रस्तुत करती हैं। शोथ और क्षयकी ही तरह यह रोग भी उन पूर्ववर्ती रोगोका परिणाम होता है जो अदर दबा दिये गये होते हैं। इस प्रकार यह रोग हमेशा पूर्ववर्ती रोगो—विशेषकर उपदश-जैसे यौन रोगोका अनुगमन करता है। ये रोग स्वतंत्र रूपमें उत्पन्न हुए हैं या संक्रमणसे आये हैं, इसकी कोई विशेषता नही है। मुख्य बात विजातीय द्रव्यकी विद्यमानता है जो शरीरसे बाहर निकलनेका कोई मार्ग चुन लेता है और वहा मासका बढना, अर्बुदका बनना या गलना शुरू हो जाता है। जो बहुत भयकर होता है। मेरे आकृतिविज्ञानकी सहायतासे कर्कटिका-की पूर्वप्रवृत्ति वर्षो पहले पहचानी जा सकती है। रोग पकट होनेके बहुत दिन पहले ही गर्दनपर सूजन और गाठें देखी जा सकती है जो सारे शरीर-में, विशेषकर उदरमें (अर्शके कारण बने) अर्बुदोंके होनेकी सूचक होती हैं। ये अर्बुद यहांतक बढ जा सकते हैं कि पाचन-प्रणालीका मार्ग अवरुद्ध हो जाय और मल अपने साधारण रूपमें न निकल सके। जिनका रोग बढा हुआ है उनमें पाचनप्रणालीका अवरुद्ध होना अवश्य देखा जाता है और जुलाव या एनिमाका सहारा न लेनेपर मलका बाहर निकलना असंभव होता है। बहुत दिनोतक जुलाव लेते रहनेपर गलनेकी अवस्था प्रस्तुत हो जाती है जिसकी चरम परिणति यक्ष्मा और खासकर कर्क-टिकाके रूपमें होती है। शरीर जुलाव और उससे होनेवाले पाचनांगो और उदरकी नाड़ियोंके उत्तेजनको वर्षो बर्दाश्त कर लेता है, पर बादमें नाडियां इस कदर शिथिल हो जाती है कि बढी हुई मात्रामें उत्तेजक औषध

न मिलनेपर वे कार्य करनेमे बिलकुल असमर्थ हो जाती है। कर्कटिका-जैसे भीषण रोगकी उत्पत्तिका यही कारण होता है। पूर्ववर्ती रोगोंके परिणामस्वरूप होनेवाले यक्ष्मा और शोथकी ही तरह अप्राकृतिक रहन-सहन, अतिभोजन और उत्तेजक पदार्थोका अत्यधिक सेवन, औषधोंके कारण होनेवाला नाड़ी-सस्थानका उत्तेजन आदि ही कर्कटिकाके भी कारण होते है। पूर्ववर्ती रोगोकी चरम परिणतिके रूपमें प्रकट होनेवाले अन्य रोगोकी तरह इस रोगमें भी एलोपैथिक डाक्टरोंका कोई वश नही चलता। बढे हुए अशपर डाक्टरोको तेजाब या छुरीका प्रयोग करते देखकर दु.ख होता है। वे कभी यह जाच करनेका खयाल ही नही करते कि यह बढा हुआ अश कहासे आया है। रोगका स्वरूप उन्हे अज्ञात ही रहता है, अन्यथा वे अतिम लक्षणके रूपमे प्रकट होनेवाले विजातीय द्रव्यके इस भागको उपचारका विषय कभी न बनाते; वे तब यह देखने-समझनेका प्रयत्न करते कि इस वृद्धिका कोई कारण अवश्य होगा और उसी कारणको दूर करनेपर अपना ध्यान केन्द्रित करते।

गलने अर्थात् कर्कटिकाकी अवस्था प्रस्तुत होनेपर प्राय: असह्य पीडा और विशेष प्रकारका सवेदन भी होता है जो बहुत बुरा मालूम होता है। रोगीको आराम पहुचानेके खयालसे औषधोपचारक मॉर्फियाका इजेक्शन देते है जिससे थोड़ी देरके लिए तो अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है, पर यह फल-प्राप्ति सारे शरीर और नाडीसंस्थानको क्षति पहुचाकर ही होती है जो आगे चलकर प्रकट होती है। औषधविज्ञान ठीक उस जड़-बुद्धि नौकरका-सा कार्य करता है जो अपने मालिकके मुंहपर बैठी हुई मक्खीको मारनेके लिए पत्थरका आघातकर मक्खीके साथ अपने मालिक-को भी मार डालता है।

हम विषोका प्रयोग क्यो करें जब हमारे पास ठड लानेवाले स्नानो-के रूपमें ऐसे साधन मौजूद है जो पीड़ाको मॉर्फियाकी अपेक्षा अधिक सफ-लताके साथ दूर करनेके साथ ही अंगोंको भी दृढ और सबल बनाते है ? इनसे मॉर्फियाकी प्रवृत्ति भी आप-ही-आप दूर हो जाती है। इसका सेवन

करनेपर भी शरीर मद्यादिकी विकृत तृषाकी ही तरह मादकताकी माग करता है; क्योकि वह भी शरीरमें प्रदाह या सडनेंकी अवस्था प्रस्तुत होने-पर ही उत्पन्न होती है। केवल प्राकृतिक उपचारद्वारा इस बढ़ती हुई प्रवृत्तिपर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस रोगके कारण और स्वरूपका आगे चलकर विस्तारके साथ उल्लेख किया जायगा, यहा मैं आरोग्य-लाभकी सभावनाओंपर दो-चार शब्द कह देना उचित समझता हू। मुख्य वात यह है कि रोगके रूप और उसके प्रकट होनेंके स्थानकी कोई विशेपता नही है। वह चाहे जीभमें हो या सीनेमें, गर्भाशयमें हो या उदर-में—यह गौण विपय है। चाहे जिस रूपमें वह प्रकट हो, आरोग्यलाभ-पर उसका कोई विशेप असर नही होता, क्योकि सबका कारण एक ही होता है। विजातीय द्रव्यके लदावके अनुसार विकृत द्रव्यका पिड खमीर-की क्रिया और उसके न्यूनाधिक दबावके करण अपने स्थानसे हट जाया करता है।

मेरी पद्धतिका प्रयोगकर यह रोग भी अच्छा किया जा सकता है। जिनका पाचन साधारणतः अच्छा होगा और अनिवार्य उभारकी अवस्था पर विजय प्राप्त करनेयोग्य जीवशक्ति होगी और साथ ही जो मेरी पद्धति-से भलीभाति परिचित होंगे वे ही इस रोगसे छुटकारा पा सकते हैं; क्योकि यह भी क्षय और शोथकी ही तरह वहुत खतरनाक होता है।

पचास वर्पके एक व्यक्तिकी नाकमे यह रोग हो गया। उसने कई प्रसिद्ध डाक्टरोसे इसका उपचार कराया, पर वे इसके कारण और स्वरूप-मे परिचित न होनेकी वजहसे इसे अच्छा नही कर सके। सवने स्थानिक लक्षणोको दूर करनेके लिए नाकपर तेज विपैली दवाओका प्रयोग किया, पर जिस प्रकार किसी शाखाके सूख या सड़ जानेमें ही वृक्षका क्षय सीमित नही होता उसी प्रकार इस रोगमें भी वाहरका बढ़कर गलनेवाला भाग रोग नही होता वल्कि वह भाग होता है जहां यह सवसे अधिक वढ़े हुए रूपमें प्रकट होता है। वृक्षकी शाखाका सूखना या सड़ना उसका स्थानिक विकार नही होता, यह वात वृक्षके कटनेपर विलकुल स्पष्ट हो जाती है,

उसी प्रकार शवच्छेद करनेपर औषधोपचारक भी निश्चित रूपमें देख सकता है कि कर्कटिकाके रोगीका सारा शरीर ही रुग्ण होता है। अगर पहले ही इसकी पहचान हो जाय तो यह रोगीके लिए बड़े फायदेकी बात होगी।

यह रोगी वर्षोंसे भीषण मदाग्निसे पीड़ित था। इसपर ध्यान न देकर डाक्टर नाकमे ही उलझे रहे। अगर उन्हे मेरे आकृतिविज्ञानसे परिचय होता तो नाककी सडनेकी अवस्थासे उदरमें वही अवस्था होनेका पता उन्हे अवश्य चल गया होता। मेरा उपचार आरभ करनेके समय नाक और ऊपरका होठ सड़ रहा था और नाककी नोक गायब ही होने-वाली थी, कब्ज बराबर बना रहता था, पेशाब भी नियमित रूपमे नही होता था और इसमें पीडा भी होती थी। शरीरमें जीवशक्ति पर्याप्त मात्रामें मौजूद थी इसलिए उपचारका प्रभाव शीघ्र देख पडने लगा। पाचन तथा शरीरकी साधारण अवस्था जल्द ही सुधर गयी। बिना किसी स्थानिक उपचारके नाकका प्रदाह कम होता गया। चार मासमे ही नाक और होठ भीतरसे भर आया और जख्मका कोई चिह्न भी नही रहा।

जिन उपायोका प्रयोग किया गया वे पूर्णत अनुत्तेजक थे। शरीर और पाचनके अनुकूल शुष्क आहार, कटि और मेहनस्नान, सप्ताहमे एक या दो बार वाष्प-स्नान, कभी-कभी सिरका वाष्प-स्नान आदि उपाय काममे लाये गये। ठढ लानेवाले स्नान तो दो-दो घटेपर चलते थे। स्नानोंके समय पीडा कम पड जाती थी। दूसरे ही दिन अदरका प्रदाह नीचेकी ओर हटने लगा जो घर्षणके स्थानपर हुए जख्मसे स्पष्ट हो गया। उपचारकालमे वृक्कोका एक पुराना रोग भी प्रकट हुआ जो पहले दवा दिया गया था। यही कर्कटिकाकी उत्पत्तिका कारण हुआ था। नाकसे निकलनेवाले पूयसे उस दवाकी गध स्पष्ट रूपमें आती जान पडी। शरीर इस प्रकारके विषको श्लेष्मामे लपेट देता है। यह अदर ही पड़ा रहता है और कालान्तरमे अंदरकी गर्मीसे सूखकर कोमलास्थिका रूप धारण कर लेता है। जलोपचारसे यही पदार्थ घुलकर बाहर निकलता

हैं और यही पीड़ाका कारण होता है। यही बात इस रोगीमें भी हुई।

यह नही समझ लेना चाहिए कि मेहनस्नानमें घर्षणवाला स्थान हर हालतमें जख्मी हो ही जायगा। कर्कटिका-जैसे जीर्ण रोगोमें घर्षणसे होनेवाला जख्म विशेष अवस्थाओमें और एक खास शक्लका होता है। अगर भीतर प्रदाह न हो या विजातीय पदार्थ दूसरे मार्गसे निकल जाय तो यह बात कभी न होगी। बहुतसे रोगियोंने दो-दो घटेतक दो-दो वर्ष स्नान चलाया है, पर उनमें यह बात नही हुई; सिर्फ कुछ लोगोंको थोड़ी देरके लिए उभारमे प्रदाह नीचेकी ओर जाते समय कुछ कष्ट हुआ। बहुतसे रोगियोको घर्षणके स्थानसे कुछ फासलेपर जख्म हुए, जिनसे पूयका, जो खमीरके रूपमें विजातीय द्रव्य था, स्राव होता था। कुछ लोग समझते है कि घर्षणसे ही पूय निकलता है, पर यह बात नही है। यह अंदरके प्रदाहसे, जिसका कारण विजातीय द्रव्यका खमीर बनना है, उत्पन्न होता है और यह पूय ही उभारका कारण होता है। इसलिए मेरी पद्धतिका अनुसरण करनेवालोंको ऐसे जख्मोंसे डरना नही चाहिए। यह इस बातका प्रमाण है कि शरीर विजातीय द्रव्यके निष्कासनमें संलग्न है और निश्चित रूपमे आरोग्यकी प्रक्रिया चल रही है। अंदरका प्रदाह सड़ान पैदा करनेवाला होनेपर जख्म और पूय और अधिक निकलता है। इस हालतमें जख्मपर गीला कपडा लपेटकर उसे तर रखना चाहिए।

पचास वर्षकी एक स्त्रीको बायें स्तनमें कर्कटिका हुई और उसमे चीरा लगाया गया। इसके कुछ ही दिन बाद दाहिना स्तन भी आक्रात हो गया जिससे पहले नश्तरकी व्यर्थता स्पष्ट हो गयी और स्त्रीकी हालत भी पहलेसे खराब हो गयी। डाक्टरोने इसमें भी नश्तर लगाना आवश्यक बतलाया, पर कमजोरी ज्यादा होनेके कारण इसमें जान जानेका खतरा था। और कोई उपाय भी नही था। जर्मनीके सबसे अच्छे डाक्टरके इस तरह जवाब दे देनेपर वह घबडाहटकी हालतमें मेरे यहा आयी। स्तन गल रहा था और स्तनसे लेकर काखतक कई कड़े और काले अर्बुद निकल आए थे जिनमेंसे कई तो अडेके बराबर थे। उदर भी कडे-कडे

अर्बुदोंसे भरा हुआ था। पाचन तो खराब था ही—तीसरे या चौथे दिन कुछ मल निकलता था और वह भी एनिमा लेनेपर। मलकी कडी-कड़ी कंडिया, जो अदरकी गर्मीसे काली पड जाती थी, निकला करती थी। पेशाब भी कम ही होता था। जीवशक्तिका कम होना चिन्ताका कारण हो रहा था, विशेषकर तेज सिरदर्द इसे और भी कम करता जा रहा था। इस महिलाने बडे उत्साहके साथ मेरा उपचार आरभ किया। सिरदर्द कम पड गया और हर हफ्ते पाचनमे सुधार होता गया। उसकी अवस्था और शक्तिका विचारकर ठड लानेवाले स्नानोकी सख्या निर्धारित करनी पडती थी। छठे सप्ताहतक उपचार कुछ कष्टकर प्रतीत हुआ। इस कालमे तथाकथित सफल शल्यक्रियाका प्रभाव भी प्रत्यक्ष हो गया। पहले ही सप्ताहमें बाये स्तनपर, जहा नश्तरका चिह्न था, खुला घाव हो गया जो चार सप्ताहतक फैलता और गहरा होता जाकर पद्रह वर्गइचका हो गया और दाहिने स्तनका गलना बायें स्तनमे होनेवाली वृद्धिके अनुपात-मे कम होता गया। नश्तरसे रोगका कारण दूर नही हुआ था, सिर्फ खमीर-का स्थान हटा दिया गया था। मेरे उपचारसे रोगको पीछेकी ओर लौटना पडा इसलिए नश्तरके समय बाये स्तनमे जो उसका तीव्र रूप था उसी रूपमे वह फिर प्रस्तुत हो गया। प्रकृति इस प्रकारके उग्र उपायका सहन नही करती यह इसमे प्रत्यक्ष हो गया। नियमपूर्वक ठंड लानेवाले स्नानोको चलानेसे शरीरमे होनेवाले परिवर्तनोंके कारण जो तकलीफ होती थी वह कम पड गयी। कुछ ही कालके अनतर घर्षणके स्थानपर बहनेवाले खुले घाव हो गए। यह इस बातका प्रमाण था कि गलानेवाला प्रदाह नीचेकी ओर खिच रहा है। काखके पासतकके अर्बुद भी बिखरकर उदरकी तरफ आने लगे। आरंभमे दो मास उसे चोकरदार आटेकी रोटी और फलपर रखा गया। स्नानो और इस आहारके प्रभावसे वह तीन महीनेमें इस कदर अच्छी हो गयी कि बाये स्तनपरका घाव करीब-करीब भर गया और वह अपने घर जा सकी।

मैंने इस रोगसे ग्रस्त कई व्यक्तियोका उपचार किया है। एककी जीभमें और एकके गलेमें यह रोग हुआ था। गलेके अदरके कडे अर्बुद कुछ ही सप्ताहमे मुलायम पड गये और उनसे पूय निकलने लगा और तव रोगी विना कष्टके ग्रास निगलने लगा। जीभवाले रोगमें ठडे स्नानके वाद भूरी-सी परत निकला करती थी। वहाके अर्बुद निम्नागोंके अर्बुदोकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे गायव हुए जिससे जीभकी अवस्था शीघ्र ही साधारण हो गयी।

रोगके इन विभिन्न रूपोमें सवसे खतरनाक उदरके अर्शवाले अर्बुद होते हैं। ठोस पदार्थ ग्रहण न कर सकनेवाले रोगियोकी भी कठिन पीडा दूर की जा सकती है और इस प्रकार मॉर्फियाकी प्रवृत्ति और पोपण न प्राप्त होनेकी अवस्थाका निराकरण किया जा सकता है; अर्बुदोको घुला-कर अनिद्राका भी अंत किया जा सकता है, पर वास्तविक आरोग्यकी प्राप्ति नही हो सकेगी; क्योकि आहारमें वरावर तरल पदार्थ ही मिलनेसे मलविसर्जनकी क्रिया साधारण रूपमें नही हो सकेगी।

दम घुटनेकी-सी अवस्थामें, जो रोगके भीषण रूप ग्रहण करनेपर प्राय: प्रस्तुत हुआ करती है, मेहनस्नान वहुत प्रभावकारी होता है। कई रोगियोको रोज कई वार दौरा होता था, पर स्नान शुरू करनेपर कुछ ही मिनट वाद इसका खतरा दूर हो जाता था। गलेका अर्बुद श्वासनलिकामें उतरनेपर या घुलनेके पूर्व उसमें सूजन पैदा कर देता था और यही सूजन दम घुटनेका कारण वन जाती थी।

मांसांकुर

क्षतवाले स्थानोपर निकलनेवाला मांसाकुर कर्कटिकाकी अपेक्षा वहुत कम खतरनाक होता है। यह जल्द ही अच्छा भी किया जा सकता है; क्योकि इस अकुरको अल्पकालमें ही पूयमें परिणत किया जा सकता है। इस प्रकार विजातीय द्रव्यको वाहर निकालनेमें वहुत कम समय लगता है। मेरे उपचारमें यह वात प्राय. देखी गयी है जो निम्नलिखित विवरणसे भलीभाति स्पप्ट हो जायगी।

तीस वर्षकी एक महिलाकी तर्जनीकी हालत कुछ दिनोसे खराब थी। एक चोटसे उसके छोरपर जलन पैदा हो गयी और अतमे उस जगह मांस वढ गया। उसके चिकित्सकने उस वढे हुए भागको काटकर निकाल दिया और तेजाबसे उसे जला दिया, पर इससे कोई लाभ नही हुआ, क्योंकि काटकर निकाल देनेपर मास फिर बढ़ जाता था। अतमे उगलीका सड़ना शुरू हो गया। अब चिकित्सकने उसे उगली कटवा देनेकी राय दी; क्योकि रोग हड्डीतक पहुच गया था और उसे आगे बढनेसे रोकना जरूरी था। वह चिकित्सकके इस प्रस्तावसे सहमत न होकर मेरे पास चली आयी। मैंने उसे बतलाया कि उगली काटकर निकालना अनावश्यक ही नही, शरीरके लिए हानिकारक भी है; उगलीके रोगका एक विशेष कारण है जिसके दूर होनेपर ही उगली अच्छी हो सकेगी। मैंने उसे रोज आधे-आधे घटेके तीन-चार मेहन (उपस्थ)-स्नान, अनुत्तेजक आहार और तीन-चार दिन मेहन (उपस्थ)-स्नानके पहले स्थानिक वाष्पस्नान चलानेको कहा। पहले तो उसने अनिच्छा प्रकट की, पर मेरे लाचारी जाहिर करने-पर उगली कटनेके भयसे तैयार हो गयी। बडी शीघ्रतासे उसको आरोग्य लाभ होने लगा। पहले ही स्नानके बाद मासका बढना रुक गया और तीसरे दिन मास पूयमें परिणत होने लगा जो सुधारका सूचक था। सड़ान-की क्रिया भी बद हो गयी जिससे हड्डियो और उगलीके संबधकी सारी आशका जाती रही। दो सप्ताहमे ही उगली बिलकुल अच्छी हो गयी और उसमें जख्मका कोई निशान भी नही रहा।

क्षत आदिका प्राकृतिक उपचार

अस्त्र-चिकित्साके सिद्धातोंके अनुसार चीरा लगानेके पक्षमें जो धारणा बद्धमूल हो गई है उसे निकाल बाहर करना आसान काम नही है। प्रचलित विश्वास यह है कि भीतरी या बाहरी सभी प्रकारके घाव या क्षत केवल अस्त्र और पाक-निवारक औषधों (ऐंटिसेप्टिक) द्वारा अच्छे किए जा सकते है। यह विश्वास कितना भ्रममूलक है यह मेरी पद्धतिसे प्राप्त सफलताओंसे भलीभांति सिद्ध हो जाता है। वस्तुत- ऐसे ही अवसरोपर जल-चिकित्साकी आरोग्यदायक शक्ति स्पष्ट रूपमें देखी जा सकती है।

इस पद्धतिमें कष्टका तो नाम भी नही है, तथाकथित पाक-निवारक औषधोपचारमे जितना समय लगता है उसके तृतीयाशमें ही हर तरहका क्षत अच्छा हो जाता है। यह अवतक कभी असफल भी नही हुई है। एक दूसरा बड़ा लाभ यह है कि चीरा अपने पीछे जो बदशक्ल करनेवाला निशान छोड़ जाता है उसके होनेकी तो कोई बात ही नही, घावका भी कोई चिह्न नही रह पाता।

कोई क्षत होने—कटने, छिद जाने, जलन या पालेसे गलनेपर शरीर उसे ठीक करनेके कार्यमे तत्काल सलग्न हो जाता है। क्षत होनेपर नाड़िया क्षुब्ध होकर रक्त तथा अन्य पदार्थ स्थान ग्रहण करनेके लिए क्षतकी जगह पहुचाने लगती है और तब एकत्र होनेवाले पदार्थोंके संघर्षके कारण वहां सूजन होनेके साथ गर्मी बढ़ जाती है; छिदने और जलनेकी हालतमें तो पीड़ा भी अधिक होती है। अगर शरीरकी सुधारकी इस क्रियामें उचित ढंगसे सहायता की जाय तो क्षत बिना किसी कष्टके जल्द ही ठीक हो जायगा।

शरीरका यह कार्य आरभ होनेपर ही पीडा भी शुरू होती है। वह क्षतके कारण होनेवाले स्थानिक विकारसे उत्पन्न ज्वरके अतिरिक्त

और कुछ नही है। अगर हमें यह स्मरण रहे कि और रोगोकी ही तरह क्षतमें भी हमें रूप भिन्न होनेपर भी ज्वरसे ही निपटना है तो आरोग्यलाभका मार्ग प्राप्त करनेमे कोई कठिनाई नही होगी। इसलिए हमारा प्रयत्न इस ज्वरको, विशेषकर क्षतका विस्तार अधिक होनेपर, घटानेका ही होना चाहिए जिसमें यह स्थानिक ज्वरावस्था शरीरव्यापी होनेसे रोकी जा सके।

अगर हम ज्वर रोकनेमें समर्थ हो जाय तो पीडा तत्काल दूर हो जायगी। ज्वर शरीरका आरोग्यकारक और क्षति-पूरक प्रयत्न होता है—इसका प्रमाण जैसा इसमे मिलता है वैसा और किसीमें नही। दुर्भाग्यवश आजकल क्षतजन्य स्थानिक ज्वरका सारे शरीरमें व्याप्त हो जाना एक आम बात हो गई है जिससे घावके सूखनेमें बहुत अधिक समय लग जाता है। इसका एक प्रबल कारण है। स्वस्थ व्यक्तियोका घाव बहुत जल्द और आसानीसे भर जाता है, पर जिनका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ है और जो इसकी वजहसे पहलेसे ही आतरिक ज्वरसे ग्रस्त हैं उनमे यह बात नही होती। ऐसे लोगोंमे क्षत और उसके साथ होनेवाला नाड़ियोका क्षोभ बढी हुई मात्रामे खमीर बननेका कारण हो जाता है। यह स्थिति न होनेपर भी आरोग्य-लाभमें समय अधिक लग जाता है। शरीर क्षतवाले स्थानमें अधिक मात्रामें रक्त पहुचा देता है जिसके परिणाम-स्वरूप वहां और अधिक विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाता या वहा खुले घावके रूपमे उसके निकलनेका मार्ग बन जाता है।

मैंने प्राय: देखा है कि जानवरोंका क्षत, अगर उन्हे कोई मदद न पहुचाकर बिलकुल यो ही छोड दिया जाय तो, अत्यल्पकालमें ही अच्छा हो जाता है। इन प्राकृतिक घटनाओका निरीक्षण करते समय मनुष्यो और जानवरोंके क्षतोके ठीक होनेमें लगनेवाले समयका अत्यधिक अतर देखकर मैं चकित रह जाता था। प्रकृतिके रहस्योंका अध्ययन और मनन करनेके लिए इन जानवरोसे मुझे सबसे अधिक प्रेरणा मिली है। किसी समय और लोगोकी तरह मेरी भी यही धारणा थी कि आघात आदि

होनेकी हालतमें मनुष्योंके, जिन्हे सारे वज्ञानिक साधन और मित्रोकी प्रेमपूर्ण सेवा-शुश्रूषा उपलब्ध है, मुकावलेमें इन जानवरोंकी स्थिति वहुत गई-वीती है, पर अनुभवसे मैं इसी निष्कर्षपर पहुचा हूं कि अस्पतालमें उपचार करानेवाले मनुष्योकी अपेक्षा जानवरोंके घाव अधिक शीघ्रतासे अच्छे होते हैं। यह कोई संयोगकी वात नही है, इसके मूलमें एक प्रवल कारण है। एक उदाहरणसे यह वात भलीभांति स्पष्ट हो जायगी।

एक विल्ली लोहेके फदेमें फँस गई जिससे उसका पीछेका दाहिना पैर वीचके जोडके कुछ ऊपर टूट गया। अपनेको मुक्त करनेके प्रयत्नमें वह फंदेको घसीटती फिरी जिससे उसका पैर उसमें कई जगह ऐंठ गया और जख्मपर धूल, भूसी आदि लिपट गई। फदेसे मुक्त होनेपर वह टूटे हुए पैरको झुलाती हुई चली गई। तवसे कुछ दिनोतक उसका कोई पता नही चला जिससे लोगोने समझ लिया कि वह मर गई होगी।

एक सप्ताह वीता होगा कि वह पासकी ही एक वखारीमें देखी गई। तवतक उसका घाव आश्चर्यजनक रूपमें भर गया था। हां, टूटे हुए स्थान-पर सूजन ज्यादा थी। उसकी क्षीण अवस्थासे यह स्पष्ट था कि उसने एक सप्ताह कुछ नही खाया है। यही नहीं, अच्छे-से-अच्छा खाद्य पदार्थ देनेपर भी उसने नहीं खाया और न जलका ही स्पर्श किया। वह जख्मी पैरको सावधानीसे एक ही स्थितिमे फैलाए रखती थी और सारे जख्मको कभी-कभी चाटती रहती थी। स्पष्ट ही इससे उसकी पीड़ा कम हो जाती रही होगी, क्योकि वह वड़ी मुस्तैदीसे चाटना जारी रखती थी। विल्लीके कुछ भी न खानेका विशेष कारण था। जैसा कि हम लोग जानते हैं, पाचन-क्रिया एक तरहसे खमीरकी ही क्रिया है और इस क्रियामें तापका उत्पन्न होना अनिवार्य है। चूंकि जख्मको ठडा रखनेके लिए वह पानीका उपयोग नही कर सकती थी इसलिए उसने खाना विलकुल छोड़ दिया जिसमें शरीर-में गर्मी न पैदा होने पाए। उसे क्या करना चाहिए इसका आदेश उसकी पशुवुद्धि उसे दे दिया करती थी। कुछ दिनोंके वाद वह विल्ली, जो क्षीण होकर अस्थिपजरमात्र रह गई थी वाहर नजर आई। दूध पीनेपर वह

फिर तरोताजा हो गई और एक महीनेमें तो उसकी हालत पूर्ववत् हो गई। अब वह मजेमें दौड लेती थी। जख्मकी जगहपर एक गाठ-सी हो गई थी, पर उससे उसकी गतिमें कोई बाधा नही पड़ती थी।

अब जरा किसी मनुष्यके संबंधमे इस तरहकी घटनाकी कल्पना कीजिए। शायद उसका पैर काटकर निकाल दिया जाना अनिवार्य हुआ होता और जख्म ठीक होनेमे महीनो लग गए होते। अच्छा होनेपर भी वह आजीवन पगु ही रहता। अगर पैर काटकर निकाला न भी गया होता तो भी उसका पैर कडा होकर लकड़ीकी तरह सीधा हो गया होता और जीवनभर वैसा ही बना रहता।

क्षतोके उपचारका रूप स्पष्ट करनेके लिए पशु-जगत्से ही मै और दो उदाहरण दे रहा हूं। एक कुत्तेको कई छर्रे लग गए थे जिनमेंसे कुछ तो पैरको पारकर निकल गए थे और दो गर्दनमे घुसकर दूसरी ओर चमडेके पास रुके रह गए थे। खैरियत यही थी कि श्वास तथा अन्न-नलिकाएं और मुख्य नाड़िया क्षतिग्रस्त नही हुई थी। जख्मोमें पीडा होनेपर कुत्ता ठडी और छायादार जगहकी तलाश करता और शरीरको, विशेषकर जख्मवाले हिस्सेको ताजी मिट्टीपर, जिसे वह एक जगहकी मिट्टी गर्म होनेपर दूसरी जगह कुरेदकर निकाल लिया करता, ठडा किया करता था। वह कुछ भी न खाकर जख्मोको बराबर चाटता रहता और रोज पासके ही एक जलाशयमे पानी पी आता जो उसका एकमात्र पोषण था। जख्म तेजीसे अच्छे होने लगे। पाचवे दिन उसके जख्म कुछ सूजे हुए पर करीब-करीब भरे देख पड़े। गर्दनके जख्म, जो पैरके जख्मोसे हलके थे और जिन्हे वह चाट भी नही सकता था, धीरे-धीरे अच्छे हुए। आहत होनेपर लगभग एक सप्ताह उसने कुछ नही खाया। छर्रे गलेके अदर ही पड़े रहे।

एक कुत्तेका दाहिना पजा गाड़ीके पहिएसे दब गया जिससे चमड़ा उचड गया और हड्डिया भी टूट गईं। चलनेमें असमर्थ होनेके कारण वह उठाकर घर पहुचा दिया गया। वहा वह रेगते हुए एक छायादार

स्थानपर चला गया और बराबर अपना पंजा चाटता रहा। चार दिनों-तक, जबतक जख्म काफी अच्छा और वह तीन टांगोपर चलने योग्य नही हो गया, उसने कुछ भी नही खाया। बीस दिनोमे वह बिलकुल ठीक हो गया।

इन उदाहरणोंसे मनुष्योंके जख्मोंके उपचारके सबंधमे कई बाते जानी जा सकती हैं। इस हालतमे पानीसे ठंड पहुंचाना, खाना बिलकुल न खाना या गर्मी उत्पन्न करनेवाली चीजोसे परहेज करना ही प्राकृतिक उपाय है।

अस्पतालोमें होनेवाले अस्त्रोपचारमे जीवशक्ति बढानेके लिए मास अडा, दूध, शराब आदि पौष्टिक चीजें दी जाती है, पर यह बिलकुल गलत है। यह सबसे बुरा और प्राकृतिक नियमोंके बिलकुल उलटा होता है। मेरी रायमें जख्मका उपचार चलाते समय आरभिक अवस्थामे तो खाना बिलकुल नही देना चाहिए जिसमे शरीरपर कोई भार न पड़े, क्योंकि शरीर-के आरोग्यकारक प्रयत्नमें यह बाधक हुआ करता है। जख्मोंके उपचारमें पाक-निवारणके लिए कारबोलिक एसिड, आयडिन, कोकेन आदिका प्रयोग स्पष्ट रूपसे बतलाता है कि औषध-विज्ञानको शरीरके अदर चलने-वाली क्रियाओंके स्वरूप और विशेषताका कितना कम ज्ञान है। जल-चिकित्सासे प्राप्त होनेवाले आरोग्यकी जानकारी न होनेके कारण ही सर्जन रास्तेमे दूर भटकते जा रहे हैं।

कटने, छिदने आदिके जख्म

कटने, छुरा भोंके जाने, आघात लगने आदिसे बड़ी या छोटी रक्त-वाहिनिया खुल जाती हैं और बाहरसे कोई रोक न होनेकी हालतमे भीतरके दबावके कारण रक्त बाहर निकाल देती है। इस प्रकारके जख्मोंके उपचारमें इस प्रक्रियाका विशेष स्थान है, इसलिए इसपर जरा विस्तारके साथ विचार करना ठीक होगा।

हमारे ऊपर पद्रह पौंड फी वर्गइचके हिसाबसे वायुका भार रहता है।

अगर अदरकी ओरसे इसके मुकावलेमे दवाव न होता तो हमारा शरीर इस भारको कभी बर्दाश्त न कर सकता। पर्वतारोहणकालमे कुछ पाठकोने इस दवावका अतर अवश्य अनुभव किया होगा। ऊचे पहाडपर या वायुयान-यात्रामे ऊपरका भार इस कदर कम हो जाता है कि भीतरकी ओरसे अधिक दबाव होनेके कारण कभी-कभी मुह, नाक, आख और कानसे रक्त निकल पडता है और वाहरसे भीतरके दवावके मुकावलेका दबाव प्रस्तुत हो जानेपर फौरन बद हो जाता है। शरीरपर कोई घाव लगनेपर शरीरकी दीवार भग हो जाती है जो रक्तके दवावको प्राकृतिक सीमाके अदर रोके रहती है। जख्मसे फौरन खून निकल आनेका यही कारण होता है। हमे सबसे पहले रक्तका स्राव रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। जख्मके आकारके ही अनुसार रक्तका न्यूनाधिक दवाव होगा और उसीके अनुसार बडी या छोटी रक्तवाहिनी क्षतिग्रस्त हुई होगी। भरसक रक्तनलिकाको नही बाधना चाहिए; क्योकि रक्तकी सचलनक्रिया अवरुद्ध हो जानेसे यह उपचार प्राकृतिक नही होगा। इसके और भी उपाय हैं जो इससे कही अधिक कारगर होते हैं। हा, अगर बहुत बडी रक्तवाहिनी क्षतिग्रस्त हो जाय और अधिक रक्त निकले कि जानके लिए खतरा पैदा हो जाय और ऊपर पट्टी लगानेका कोई साधन प्रस्तुत न हो तो रक्तनलिका या अगका बाधा जाना उचित माना जा सकता है।

रक्तके स्रावके साथ आम तौरसे पीडा भी होती है जिसे स्रावके साथ ही रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। रक्तका भीतरकी ओरसे होनेवाला दवाव और उसके साथ ही रक्तका स्राव रोकनेके लिए सूती कपडेकी कई परतोकी गीली पट्टीसे वढकर दूसरा कोई अच्छा उपाय नही है। अगर सभव हो तो पीडा कम न होनेतक जख्मवाला हिस्सा ठडे पानीके अदर रखा जाय। इस स्थितिमे उसे घटो रखना पड सकता है। अगर यह सभव न हो तो कुछ समयका अतर दे-देकर उसपर ठडा पानी गिराया जाय जिसमे पट्टी वरावर तर रह सके।

पट्टीकी तहोकी सख्या जख्मके रूप—अंदरके रक्तके दवावके रूप—पर निर्भर है। छोटे जख्मोंके लिए दो, चार या छ. तहोकी पट्टी हो, पर वडे जख्मोंके लिए दस, पद्रह, वीस या तीस तहें की जा सकती है। अगर वडे, जख्मपर लगाई जानेवाली पट्टी उसके अनुरूप न होकर पतली हो तो न तो रक्तस्राव जल्द रुकेगा और न जख्म ही जल्द अच्छा होगा। पट्टी वहुत मोटी भी नही होनी चाहिए। अगर कटी हुई उगलीपर दो या चार तहो-वाली पट्टीकी जगह अधिक तहोवाली पट्टी लगाई जाय तो जख्म अच्छा होनेमें समय अधिक लग जायगा।

पट्टी इतनी ही वडी हो जिसमें वह जख्मके चारो ओर एक इंच निकली रहे। इससे आस-पासके हिस्सेमें रक्त-संचलनमें कोई वाधा नही पड़ेगी। यह वड़े महत्त्वकी वात है। पट्टीके ऊपर सिर्फ ऊनी कपडा एक या अधिक वार लपेट दिया जाय। इससे पट्टी अपनी जगहपर जमी रहेगी, दवाव उचित रूपमें रखा जा सकेगा और गर्मी भी कायम रखी जा सकेगी। लगानेके पहले पट्टी ठडे और भरसक हलके पानीमें डुवोकर हलके हाथो निचोड़ ली जाय। जवतक पट्टी ठड पहुचाती रहेगी तवतक पीड़ा नही मालूम होगी। गर्म हो जानेपर पट्टी फिर ताजे ठडे पानीमें डुवो ली जाय। अगर पीडा मालूम हो तो समझना चाहिए कि और ठडी पट्टी देनेकी जरूरत है। शुरुमें यह क्रिया वार-वार करनी चाहिए।

कुछ अवस्थाओंमें वार-वार पट्टीका प्रयोग करना उतना अच्छा नहीं होता; कपड़ेकी पट्टीके वजाय गीली मिट्टीकी पट्टी लगाना ज्यादा अच्छा होता है। साफ मिट्टी किसी पात्रमें रखकर ठडे पानीसे गीली कर लीजिए और एक कपडेके टुकड़ेपर उसकी मोटी तह देकर जख्मपर इस प्रकार लगा दीजिए कि मांसका मिट्टीके साथ सीधा सपर्क हो सके। कुछ घटोंके वाद पट्टी वदल दी जाय। मासांकुर और गलनेवाले फोड़ेमे भी इस पट्टीका प्रयोग किया जा सकता है।

जलचिकित्साका यथार्थ ज्ञान न होते हुए भी औषधविज्ञानके अनु-यायियोने गीली पट्टीके प्रयोगमें एक सुधार करनेका प्रयत्न किया है।

वे पट्टी और ऊनी कपडेके बीचमें रबर लगाते है। इस तरहकी पट्टी बहुत कम फायदा करती हैं; क्योकि इससे पट्टीके पानीका वाष्प बनना और शरीरका मुक्त प्रस्वेदन रुक जाता है। इस प्रकारका जलोपचार बिलकुल भ्रातिमूलक है; इससे कभी अभीष्ट लाभ नही प्राप्त हो सकता।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अनुत्तेजक आहार जख्मके अच्छा होनेमे बहुत सहायक होता हैं। आहार जितना ही कम और अनुत्तेजक होगा उतनी ही शीघ्रतासे जख्म भी अच्छा होगा। चोकरदार आटेकी रोटी, फल और पानी—जिसमें कुछ मिला न हो—बहुत अच्छा आहार है। जो खाद्य पदार्थ आसानीसे और जल्द पचनेवाले होते है वे सबसे अच्छे होते हैं; क्योकि उनसे शरीरमे बहुत कम गर्मी पैदा होती है। जख्मोके उपचारमे यह बडे महत्त्वका विषय है।

एक और उपचार है जिसका प्रयोग जख्मको अच्छा करनेमें बहुत लाभदायक होता है। यह मेहन और कटिस्नान है। इन स्नानोके प्रभावसे जख्मका ताप रुक जाता है और अगर वहा पैदा हो गया हो तो निकल जाता है। इसके साथ ही जीवशक्तिको भी उत्तेजन मिलता है जिससे आरोग्य-लाभकी प्रक्रिया तेजीसे होती है। जिनका शरीर विजातीय द्रव्यसे भरा हुआ है उसके लिए नो ये स्नान और भी आवश्यक है। कुछ उदाहरणोसे मेरा कथन भलीभाति स्पष्ट हो जायगा।

पैंतालीस वर्षके एक कारीगरके बाए हाथका अगूठे और तर्जनीके बीचका मासल भाग इतना जख्मी हो गया था कि मास निकलकर मशीन-के आरेपर चला गया; खैरियत यही हुई कि हड्डी साफ बच गई। कुछ ही क्षणोके बाद वह बेहोश हो गया और लगभग आधे घटेतक होशमे नही आया। इस अरसेमे सूती कमीज तह करके उसपर लपेट दी गई और रक्तका बहना करीब-करीब बद हो गया। इस तरह बंधा हुआ हाथ ठडे जलमे डुबाकर रखा गया जिससे एक घटेके अदर पीड़ा बहुत कम हो गई और एक दिनमे बिलकुल गायब हो गई। ठडा करनेकी क्रिया पहले दिन-रात चलाई गई, पर चौथे दिन पट्टीका आकार छोटा कर दिया गया जिसमे

हाथका शेप भाग मुक्त रह सके। उसपर लगभग वीस तहोकी पट्टी लगा-कर ऊनी कपडेसे वह कस दी गई। ऊनी कपडेने हाथके शेपाशको जल्द ही गर्म कर दिया जिससे रक्त-सचलनकी गति वढ गई। पट्टी पहले आधे-आधे घटेपर तर की जाती थी, पर वादमें समय वढा दिया गया। लगभग एक पक्षमें जख्म इतना अच्छा हो गया कि उसपर अव पट्टी लगाने-की जरूरत नही रही। चार सप्ताहमे वह अपने इस हाथसे काम करने योग्य हो गया। यहा यह भी वतला देना आवश्यक है कि वह दूसरे ही दिनसे मेरे ठड लानेवाले स्नान भी दो वार करने लगा था जिससे जख्म अच्छा होनेमें वड़ी सहायता मिली। अस्त्रोपचारकी सहायता लेनेपर जख्म अच्छा होनेमें काफी समय लग गया होता और कष्ट भी अधिक हुआ होता। सर्जनने अवश्य ही जख्ममें टाके लगाए होते जिसके परिणामस्व-रूप अगूठा कडा और सुन्न पड गया होता।

मेरे उपचारसे जख्म जल्द ही अच्छा हो गया और उसका कोई चिह्न भी नही वचा। आरभमें जख्म वहुत वडा होते हुए भी शरीर उसे भीतरसे भरता गया और उसका किनारा अपने आप सूखकर निकल गया। इस क्षतसे नाडियोंके कई महत्वपूर्ण सवध नप्ट हो गए थे और अगूठेका आधा हिस्सा सुन्न हो गया था जिससे वह वहुत दिनोतक कोई छोटी चीज उससे नही पकड सकता था, पर कुछ दिनोतक मेल्लन-स्नान चलाने-पर पासकी नाडियोका संवध स्थापित हो गया और उसमें पुन. सवेदन होने लगा।

बाहर तथा अंदरकी चोट

बाहरकी जिस चोटमें रक्त नही निकलता उसमे तथा अदरकी चोटमे भी प्राय रक्तके अर्वुद बन जाते है जो सारे शरीरको क्षुब्ध कर देते है। जिन चोटोमें बाहरसे पहुच नही हो सकती उनमे कटि और मेहन-स्नान बडे प्रभावकर सिद्ध होते है। वे शरीरको अदरसे ठडा कर देते है और नाडियोकी शक्ति बहुत बढा देते है। अगर ये स्नान जमे हुए रक्त और खमीरसे बने हुए अन्य विकारोको जल्द तितर-बितर करनेमे समर्थ न हो तो स्थानिक वाष्प-स्नानसे अच्छा फल प्राप्त किया जा सकना है, पर इस स्नानके बाद शीघ्र ही ठड लानेवाला स्नान किया जाना चाहिए। वाष्प-स्नानके जरिये सारा विकृत द्रव्य मलमार्गोंसे बाहर निकलने योग्य रूपमे परिणत हो जाता है।

एक लडकीने मोजे बुननेकी मशीनसे अपनी तर्जनी बेतरह कुचल डाली। पहले सप्ताहमें एक औषधोपचारक पाक-निवारणके सारे उपाय कर थक गया, पर कोई लाभ नही हुआ। उसने आइडोफार्म, कारबोलिक आदिका खुलकर प्रयोग किया और लडकीसे यहातक कह दिया कि उगली या हाथ काट देनेकी भी जरूरत पड़ सकती है। लडकी भीषण पीड़ासे बेचैन थी। उगली सूजती जाकर नीली पड गई। तीसरे सप्ताहमें सारा हाथ ही सूजकर नीला हो गया। अब डाक्टर हाथ काट देना आवश्यक बतलाने लगा। लड़की भयत्रस्त होकर मेरे पास आई। मैंने फौरन गीली पट्टी लगवाकर दो बार स्थानिक वाष्प-स्नानके साथ मेहन (उपस्थ) स्नान करवाया। दो ही घटेके उपचारसे सारी पीडा हमेशाके लिए जाती रही। हाथ और उगलीकी सूजन भी हर घटे कम पड़ती गई और दो ही दिनोमें उनका आकार और रग साधारण हो गया। चौथा सप्ताह बीतते-बीतते वह उस हाथसे कुछ-कुछ काम भी करने लग गई। इस प्रकार शल्य-क्रियाका निवारण हो गया और लडकी विकलाग होनेसे बच गई।

इसी प्रकारकी दुर्घटनामें ग्रस्त एक वढ़ईने लाचार होकर मेरी सहायता ली। उसके वाये हाथकी हथेली और उसका पृष्ठ भाग कुचलकर जख्मी हो गया था। पहलेके कटु अनुभवोंके कारण औपधोपचारमें उसका विश्वास नही रह गया था। कंधेतक उसका हाथ इतना सूज गया था कि वह उसे हिला भी नही सकता था। तीन घंटेसे कमके ही उपचारमें उसकी पीड़ा चली गई और अठारह घंटेमें सूजन विलकुल गायव हो गई। एक ही पक्षमें वह अपने कामपर लौटने योग्य हो गया।

निम्नलिखित दो विवरणोसे यह भलीभांति स्पप्ट हो जायगा कि पाक-निवारक औपधोपचार वस्तुतः क्षतको अच्छा न कर सिर्फ वीचकी अवस्था प्रस्तुत कर देता है।

एक ही मशीनपर काम करनेवाली दो लड़कियोंने एक ही ढंगसे अपनी-अपनी तर्जनी घायल कर ली। पहली पोरके ऊपरकी हड्डी कुचलकर टूट गई थी, पर शेप भाग सुरक्षित था। एक लड़कीने एक डाक्टरसे पाक-निवारक उपचार कराया और दूसरीने मुझसे उपचार कराया। डाक्टर-ने शल्यक्रियाद्वारा भग्न अस्थि-खंडोको निकाल दिया और आइडोफार्म-का प्रचुरतासे उपयोग किया। लडकीको कप्ट तो वहुत हुआ पर एक सप्ताहमें जख्म इतना अच्छा हो गया कि वहुत आवश्यक होनेपर कुछ काम कर ले सकती थी। नश्तरके कारण पहला जोड़ वेकाम हो गया और उगलीका आकार भी विकृत हो गया। कई वर्पोतक मौसम वदलनेपर उस उंगलीमें पीड़ा होती रही, और इसका एकमात्र कारण था गलत उपचार जिसमें विजातीय द्रव्य—आइडोफार्म—सीधे प्रविप्ट करा दिया गया था। उसमें वरावर झुनझुनी भी वनी रहती थी।

दूसरी लड़कीको, जो मुझसे उपचार करा रही थी, इससे कही अच्छा फल प्राप्त हुआ। पहले मैंने पीडा दूर करनेका पयत्न किया और इसमे पहले ही दिन सफलता भी मिल गई। इसके लिए वही उपाय किया गया जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है—गीली पट्टी और ठंड लानेवाले स्नान। स्नान इसलिए आवश्यक थे कि उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य

वहुत अधिक था। और कोई प्रयोग किये बिना ही भग्न अस्थिखंड तीसरे दिन आप-ही-आप निकल गये और उसे कोई कष्ट भी नही हुआ। छठे दिन जो सबसे बड़ा अस्थिखड था वह भी निकल गया। एक महीनेमे वह कामपर जाने योग्य हो गई। छः सप्ताहमें उगली बिलकुल ठीक हो गई—न तो उसमें सवेदन-शक्तिकी कमी हुई, न अक्षमता आयी और न जख्मका कोई चिह्न पडा। मौसम बदलनेपर भी उसे कभी कोई तकलीफ नही हुई। अच्छा सर्जन कौन सिद्ध हुआ—प्रकृति या पाक-निवारक औषधोपचार?

एक आदमीका बाये टखनेका पेशीवंध भंग हो गया था। वह दो महीने खाट पकड़े रहा और उसपर लेपका प्रयोग करता रहा। जख्म तो अच्छा हो गया, पर पैरकी कमजोरी और सूजन बनी रही। चलते समय यह बात विशेष रूपसे लक्षित होती थी। पैर प्रायः मोच खा जाया करता था जिससे उसे बडी पीडा होती थी। दस वर्ष बाद उसने स्वास्थ्य खराब होनेपर मेरा उपचार शुरू किया और लाभ देखकर उसे वहुत दिनोतक चलाता गया। आठ-नौ महीने बाद पैरमें फिर सूजन और पीड़ा शुरू हुई जो मेरे उपचारसे चौथे ही दिन चली गई और इसके साथ ही उसका शारीरिक अपकर्ष और टखनेकी कमजोरी भी जाती रही।

जलनेका जख्म

जलनेकी हालतमें भी पीड़ा शात करनेमे जलोपचार वहुत प्रभावकर होता है। पीडासे छुटकारा पानेके लिए जले हुए भागको कई घटे पानीके अदर रखना चाहिए। पानीमें रखनेके कुछ देर बाद पीडा कुछ बढ जायगी, पर शात न होनेतक किसी तरह उसे सह लेना चाहिये। पीड़ा शांत हो जानेपर उसपर अन्य प्रकारके क्षतोकी ही तरह गीले कपडेकी पट्टी लगा देनी चाहिए। कुए आदिके पानीसे नदी या वर्षाका पानी अच्छा होता है, क्योकि कुए आदिके पानीमे प्राय ऐसे द्रव्य मिले रहते है जो जख्मके सूखनेमे तो बाधक होते ही हैं, पीडा भी बढा देते है। इस उपायसे भीषण पीडाका भी आश्चर्यजनक रूपमें अत हो जाता है।

अगर जख्म सूखनेमे अधिक समय लगे तो समझना चाहिए कि शरीर-

मे विजातीय द्रव्य बहुत अधिक है। इस हालतमें ठंड लानेवाले स्नानों और अनुत्तेजक आहारके द्वारा सारे शरीरका उपचार होना चाहिए। अगर आरोग्यलाभकी क्रिया साधारण तरीकेसे चल रही हो तो उसमें भी इससे सहायता मिलेगी।

एक आदमीका शरीर तीन जगह बुरी तरह जल गया था। दो बड़े जख्म तो गर्दनपर थे और तीसरा, जो उन दोनोंसे बड़ा और गहरा था, पैरमे था। उस व्यक्तिने पहले पाक-निवारक दवाओंका प्रयोग किया, पर पीडा अधिक होनेके कारण उन्हे एक दिनसे अधिक नही जारी रख सका। इसके अनतर वह पुरानी प्राकृतिक विधिसे अपना उपचार करने लगा। इससे भी कुछ लाभ होते न देख वह मेरे पास आया। पहले मैंने पीड़ा कम करनेका उपाय किया। तेल और मवाद साफकर गीली पट्टी लगानेपर दो ही घटेमे पीड़ा कम हो गई और दो ही दिनके उपचारमे जख्म-का रग बिलकुल बदल गया। गर्दनपरका छोटा जख्म तो करीब-करीब अच्छा ही हो गया, शेप दोनों भी तेजीसे अच्छे होने लगे। पैरके जख्मकी गहराई भी आधी कम हो गई थी। पाच दिनोंमें वह अपने कारखानेमें काम करने योग्य हो गया। गर्दनपरके जख्म तो बिलकुल ठीक हो गये थे और पैरमेंका जख्म भी इतना अच्छा हो गया था कि वह किसी तरह चल लेता था।

गोलीका घाव

इस घावका उपचार भी ठीक वही है जो छुरे आदिके गहरे घावका है, फिर भी युद्ध आदिमें इसके महत्त्वके कारण इसपर विशेष रूपसे विचार करना आवश्यक है। क्षतोंके प्राथमिक उपचारका ज्ञान प्रत्येक सैनिकके लिए बड़े महत्त्वका होता है। किसी तरहकी सहायता मिलनेके पूर्व घटो पड़े रहनेके कारण बहुतसे जख्मोंमे—विशेपकर पाकनिवारक उपचार होनेपर—सड़ान पैदा होना कोई आश्चर्यकी बात नही है। इस हालतमें अगर मृत्यु न हो तो अंगच्छेद तो आवश्यक होता ही है।

जीवनसबंधी तथ्यों और व्रणके आप-ही-आप, प्राकृतिक रूपमें, ठीक होनेकी बातसे अपरिचित होनेके कारण लाचारीकी हालतमे अंग-च्छेदके अलावा सर्जनोके पास और कोई उपाय नही रह जाता, पर अगच्छेदसे घाव कभी अच्छा नही होता, बल्कि और गहरा घाव करना पडता है और इस प्रकार आहत सैनिक जीवनभरके लिए विकलाग बना दिया जाता है।

जनसाधारण और डाक्टरोकी धारणा है कि अगर गोली या इस तरहकी कोई चीज शरीरके अदर रह गई है तो शरीरको क्षतिग्रस्त होनेसे बचानेके लिए उसे निकालना आवश्यक है। यह भयकर भूल है जिसने बहुतोकी जान ले ली है। शरीरको अधिक क्षति पहुचाये बिना गोली या इस तरहकी किसी चीजको निकालना कठिन होता है। शरीरके भीतरी भागमे श्लेष्माका एक आवरण होता है जिसे भेदकर गोली आगे बढती है और जिस जगह वह घुसती है वहा उसके गुजरने भरके लायक ही भेदन होता है। कारण यह है कि गोलीके दबावसे छिदनेवाला भाग फैलनेवाला होनेके कारण ठीक वैसे ही फैलता है जैसे गोली मारनेपर रबर फैल जाता है। अगर रबर फैलाया न जाय तो गोली फिर उस रास्तेसे कभी नही निकलेगी।

पहले तो क्षतिग्रस्त स्थानमें सूजन होती है जो प्राय. जल्द ही कम पड जाती है, पर उसकी पूर्वरूप ग्रहण करनेकी शक्ति—स्थिति-स्थापकता चली जाती है। क्षतिग्रस्त स्थानपर रक्त और अन्य आरोग्यकारक पदार्थ एकत्र हो जाते है इसलिए वह कडा पड जाता है। अब अगर उसी प्रवेशवाले मार्गसे गोली निकालनेका प्रयत्न किया जाय, जैसा किया भी जाता है, तो यह कभी सफल न होगा। क्षतस्थानतकका सारा प्रवेश-मार्ग सूज गया होता है और उस भागकी स्थिति-स्थापकता भी समाप्त हो गई होती है, इसलिए गोली निकालनेके लिए जख्मको और बढाना पडता है। शरीरपर इसका कैसा बुरा प्रभाव होगा, इसका आसानीसे अनुमान किया जा सकता है। बलात् निकालनेकी अपेक्षा गोलीका शरीरमे रहना कम

खतरनाक होता है; क्योंकि शरीर शीघ्र ही इस विजातीय पदार्थको अहानि-कर बना देनेका प्रयत्न करता है—पहले तो वह एक रसमे उसे ढक देता है और फिर उस रसको श्लैष्मिक कलामें परिणत कर उसके ऊपर एक गाढ़ी तह डाल देता है। अगर विषैली पाकनिवारक दवाओंका प्रयोग कर शरीरकी शक्ति नष्ट न की जाय तो वह जल्द या कुछ दिनों बाद उस विजातीय पदार्थ—गोली आदि—को बाहर निकाल भी देता है। ऐसा प्रायः हुआ है कि कंधेमें घुसी गोली महीनों या वर्षों बाद कमर या जांघसे निकली है।

गोलीको निकालनेके फेरमें न पड़कर जख्ममें ताजगी पहुंचाना और रक्तका बहाव रोकनेका पहले प्रयत्न होना चाहिए, जिसकी विधि पहले ही बतलाई जा चुकी है। इसके लिए प्रत्येक सैनिकके पास कुछ ऊनी और कुछ सूती कपड़ा मौजूद रहना चाहिए जिससे आवश्यकता पड़नेपर वह स्वयं अपना उपचार कर ले। और कोई उपचारका साधन प्राप्त करनेकी अपेक्षा जल प्राप्त करना ज्यादा आसान है! अगर वह भी न मिल सके तो ठंड पहुंचानेवाली कोई चीज—घास, गीली मिट्टी या उस तरहकी कोई चीज—काममें लाई जा सकती है। जख्मपर पट्टीके रूपमें लगा देनेपर ये चीजें भी ताप-निवारणमें सहायक होती हैं। इस प्रकार बहुतसे आहत सैनिक, जो चल-फिर सकनेमें समर्थ होंगे, अपना प्राथमिक उपचार स्वयं कर ले सकते हैं। अगर प्रत्येक सैनिकको इस प्राथमिक उपचारका ज्ञान करा दिया जाय तो वह सर्जनके न आनेतक असहाया-वस्थामें कराहते रहनेके बदले चटपट प्रभावकर उपाय कर लेनेकी स्थिति-में हो जायगा और जो सैनिक कम घायल होंगे वे अधिक घायल साथियों-को मदद भी पहुंचा सकेंगे।

१८७०-७१ के फ्रांस-जर्मन-युद्धके समयसे मुझे पाक-निवारक औषधो-पचारके हानिकर परिणामका अनुभव करनेका काफी अवसर मिला है। १८८३ में एक व्यक्ति मेरे पास आया। इसी युद्धमें गोली उदरको पारकर पीठके पाससे निकल गई थी। पाक-निवारक औषधोपचार होने

रहनेपर भी इस तेरह सालके लबे अरसेमें उसका जख्म अच्छा न होकर और वढता ही गया। जख्मका मुह प्राय. बद हो जाता, पर फिर खुल जाया करता था। हालत दिनोदिन खराब होती गई और अब वह चलने-फिरने- मे भी असमर्थ हो गया था। आकृतिविज्ञानके सहारे तुरत मालूम हो गया कि घावके जल्द न भरनेका मुख्य कारण अधिक मात्रामें एकत्र विजातीय द्रव्यके साथ जीर्ण ज्वर है। मैंने जख्मका कोई स्थानिक उपचार न कर ठड लानेवाले और वाष्पस्नान तथा उपयुक्त आहारद्वारा जीर्ण ज्वरको दूर करनेका प्रयत्न किया। एक ही सप्ताहमें घाव भर गया और तबसे उसका मुह कभी नही खुला है। एक ही पखवारेमे वह आदमी चलने-फिरने भी लगा। मेरी रायसे वह कुछ दिनोतक उपचार चलाता रहा जिससे शरीर विजातीय द्रव्यसे बिलकुल मुक्त हो गया।

एक सैनिककी फलकास्थि (घुटनेकी कटोरी) टूट गई थी। उसने इसका बहुत उपचार कराया और बीस वर्षोतक पुरानी विधिसे प्राकृतिक उपचार भी कराया, पर कोई लाभ नही हुआ। पैर कड़ा तो नही पड़ा था, पर चलनेमे कठिनाई होती थी। बीस वर्ष बाद उसने मेरा उपचार शुरू किया—इस जख्मके लिए नही, सिर्फ इस पद्धतिकी प्रभावकारिताकी जाच करनेके लिए। जख्मी हड्डीमें फिर प्रदाह शुरू होनेपर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह इस बातका प्रमाण था कि जख्म ठीक तरहसे अच्छा नही हुआ है। कुछ दिनोके उपचारसे प्रदाह जाता रहा। पैरके ठीक होकर साधारण रूपमे काममें आने लगनेपर तो उसका आश्चर्य और बढ गया।

अस्थिभंग।

बाहरी आघातसे होनेवाले जख्मोमे अस्थि या कोमलास्थिका भग भी है जो बहुत धीरे-धीरे ठीक होता है। डाक्टर लोग साधारणत. इसपर पलस्तरका इस्तेमाल करते है पर मेरे उपाय बिलकुल भिन्न है और अधिक प्रभावकर भी होते है। मेरे उपचारका प्रभाव ठंड लानेवाला होता है जो पीड़ा और सूजन दूर न होनेतक कायम रहता है। ठंड लानेवाले

स्नानोको भी नही भूलना चाहिए, क्योंकि वे घावको चगा करनेमे बड़े सहायक होते है। इस जलोपचारका त्यागकर पलस्तरका प्रयोग करनेवाला व्यक्ति सुनिश्चित प्राकृतिक नियमके सत्यको अस्वीकार करता है। अगर जख्मवाला भाग कपडेकी पट्टीके सहारे ठीक स्थितिमें न रखा जा सके और कोई कड़ा सहारा आवश्यक हो तो लकडी, दफ्ती, छाल या इस तरहकी कोई चीज काममें लायी जा सकती है, पर पलस्तर तो कभी लगवाना ही नही चाहिये। मेरा उपचार करनेवाले देख सकते है कि उससे कितनी शीघ्रतामे पीडा कम होती और जख्म ठीक होता है।

तीस वर्षके एक सज्जनकी बाह कुहनीके पास टूट गई थी। प्राकृतिक उपचारमें आस्था होनेके कारण वे उसपर गीली पट्टी लगाकर जल देने लगे, पर चिकित्सकने पलस्तर लगानेकी राय दी और यह भी कहा कि हाथ कड़ा पड जायगा। यह बात पसन्द न आनेपर उन्होने मेरी राय ली। मैंने उन्हे हाथपर तारकी जाली लगाकर दफ्तीका सहारा देने और अपने तरीकेसे जख्मको ठडा रखते हुए अनुत्तेजक और सयत आहार तथा ठड लानेवाले स्नान चलानेको कहा। इन उपायोका आश्चर्यजनक परिणाम देख पडा। चौबीस घटेमें ही सारी पीडा और सूजन चली गई। एक सप्ताहमें वे कुछ चलने-फिरने योग्य हो गये। दूसरे सप्ताहमें विना किसी तकलीफके कुर्सी उठा लेने लगे और चार सप्ताहमे भग बिलकुल ठीक हो गया।

खुला घाव

युद्ध आदिमे हथियारोके आघातसे होनेवाले घाव बड़ी शीघ्रता और आसानीसे अच्छे हो जाते है, पर शरीरके प्राय: सभी अगोमें होनेवाले कष्टकर खुले घावोका रूप कुछ और ही होता है। इस प्रकारके घावसे निकलनेवाले पूयका सबध औपधोपचारक उपदश, कर्कटिका, क्षय या अन्य किसी रोगसे भले ही जोडा करें, पर वास्तविकता यह है कि वह है एक ही चीज—वह शरीरके अदर गलनेकी क्रिया होनेका सूचक है।

एलोपैथी इस प्रकारके घावको औषधोपचारसे अच्छा करनेमें बिलकुल असफल रही है; वह गलनेकी क्रियाका बाहर प्रकट होना रोक दे सकती है या विकारको पुन. शरीरमे लौटा दे सकती है, पर अच्छा नही कर सकती। उसके पास इस रोगके प्रतिकारका न तो कोई उपाय है और न योग्यता ही। यही कारण है जिससे घाव ऊपरसे तो अच्छा हुआ देख पडता है, पर दूसरे स्थानपर फिर प्रकट हो जाता है और इस प्रकार विकृत पदार्थका स्राव बराबर जारी रहता है। ये घाव वाहरी क्षतोकी तरह पीडा देनेवाले तो नही होते, पर उनका अच्छा होना सभव होते हुए भी वहुत कठिन होता है। ऐसे घावोका किसी गहराईतक पहुचे हुए जीर्ण रोगसे घनिष्ठ सबध होता है। आये दिन होनेवाली अधिकाश आत्महत्याए इसी प्रकारकी रुग्ण अवस्थाका परिणाम होती है। ऐसे ही अवसरोपर यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य अपनी दैनिक चर्या और रहन-सहनके ढगमे किस प्रकार नियमित रूपमे प्रकृतिके विरुद्ध आचरण किया करता है। आखिर इस प्रकारके घावका कारण क्या है? मेरा उत्तर तो यही होगा कि यह शरीरमे भरे हुए विजातीय द्रव्य और अच्छा न किये जाकर दबाये हुए रोगका वर्द्धित या चरम रूप मात्र है। यह रूप प्राय. पारा, आयोडिन, पोटैसियम अग्योडाइड ब्रोमाइड, कुनैन आदि कथित आरोग्यकारक औषधोके शरीरमे जज्ब होने या घुलनेके कारण प्रस्तुत होता है। शरीरमें विष प्रविष्ट करनेका दूसरा साधन टीका है जिसके कारण मानवजातिका अधिकाधिक अपकर्ष होता जा रहा है। इसके कारण जीवशक्तिका ह्रास हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप बराबर जमा होता रहनेवाला विकृत द्रव्य मसूरिका या अन्य किसी सक्रामक रोगके रूपमें प्रकट न होकर क्षय, घातकव्रण, उपदश, अपस्मार, उन्माद आदि रोगोके रूपमे प्रकट होता है जो कही अधिक भयकर, जल्द पिंड न छोड़नेवाले और प्रायः असाध्य होते है। दुर्भाग्यकी बात है कि औषधविज्ञान जीवशक्तिका रूप भलीभाति नही पहचान सका है; अगर पहचान सका होता तो टीके या लेपके जरिये शरीरमें प्रविष्ट करायी जानेवाली दवाओके विषका

हानिकारक प्रभाव, वर्षो बाद प्रकट होनेपर भी, उससे कभी न छिपा रहता। यही दवाएं, जिनके संबंधमें औषधविज्ञानको यह भी निश्चित रूपसे नही मालूम है कि वे कहा-कहा पहुचती और क्या करती है, प्राय. वर्षो पहले रोगका बीज बो देती है और अतत· यही खुले या बहनेवाले घावका कारण होता है।

यह भलीभाति जानी हुई बात है कि औषधविज्ञान हमेशा नयी-नयी दवाओ और कीटाणुनाशक तथा पाक-निवारक द्रव्योकी खोजमे लगा रहता है। नयी दवाए पुरानीसे ज्यादा तेज और अधिक विषैली होती हैं। रोगके प्रकट होनेपर इन दवाओंके जरिये जीवशक्ति कम करनेका प्रयत्न किया जाता है जिससे शरीर उभारकी अवस्था अर्थात् रोगको, जो विकारसे मुक्ति पानेका उसका सबसे बडा प्रयत्न है, जारी रखनेमें असमर्थ हो जाता हैं। बाहरी लक्षणोके विचारसे तो रोग गायब हो जाता है, पर उसका मूल रूप ज्यो-का-त्यो बना रहता है; फिर भी एलोपैथी इसे 'आरोग्यलाभ' मानती है। अगर कुछ काल पश्चात् जीवशक्ति कुछ अशोमें पुन लौट आये और वही या कोई दूसरा रोग प्रकट हो तो पहली दवा काम नही करेगी और पहले-जैसा प्रभाव उत्पन्न करनेके लिए और तेज या अधिक विषैली दवाकी जरूरत पडेगी। जीवशक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही हलकी दवा इस उभारकी अवस्था—रोग—को दबानेके लिए आवश्यक होगी, पर अगर जीवशक्ति कम हो तो तेज दवाकी जरूरत पडेगी। दवाए प्राय विषसे ही तैयार की जाती है और विष शरीरके लिए विजातीय द्रव्य है। शरीरकी जीवशक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही तेजी और जोरके साथ इस विजातीय द्रव्यको प्रभावहीन बनानेके लिए उसकी ओरसे प्रयत्न होगा। शरीर इसके लिए उस विषके ऊपर श्लेष्माका आवरण डाल देता है। इसके विपरीत अगर जीवशक्ति कम हो तो शरीरकी शक्तिको उत्तेजित करनेके लिए हलका विष पर्याप्त न होगा। यह शक्ति न्यूनाधिक रूपमे अचेतनावस्थामें पडी रहती है और बाध्य की जानेपर ही उसकी प्रतिक्रिया होती है। विषको अहानिकर बनानेकी प्रक्रिया धीरे-धीरे ही चलती है।

एक रोगीके उपचारके विवरणसे उपर्युक्त कथन स्पष्ट हो जायगा। एक चिकित्सकका विश्वास था कि उसने पैरमें होनेवाले खुले घावकी एक बहुत अच्छी दवा खोज निकाली है। इसके कारण उसकी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी थी। दवाका असर इतना गहरा होता था कि घाव थोड़े ही समयमें अच्छा हो जाता था—विकृत द्रव्य शरीरमें लौटा दिया जाता था। एक सज्जन, जिनकी जघास्थिके ऊपर बहुतसे ऐसे घाव हो गये थे, इस दवाके इस्तेमालसे बहुत जल्द अच्छ हो गये, पर दो साल बाद पुराने घाव फिर निकल आये। वे उसी चिकित्सकके पास गये, पर इस बार उस दवाका जरा भी असर नही हुआ। अक्ल काम न करनेपर चिकित्सकने कह दिया कि ये घाव और तरहके हैं, यह पुराना रोग नही है इसलिए मेरी उस दवासे अच्छा नही होगा। औषधविज्ञानकी कैसी दयनीय अवस्था है! प्रमाणपत्रसे रहित प्राकृतिक चिकित्सक जैसे नही बल्कि सनदयाफ्ता चिकित्सकोके पास पूयका टीका देने (जैसे मसूरिका आदिमें) और अगोको, जिनकी असाधारण अवस्थाका उन्हे जरा भी ज्ञान नही होता, काटकर निकाल देनेसे अच्छा कोई उपाय ही नही है।

खुले या बहनेवाले घावके मूलमें भी वही कारण होता है जो और सब रोगोंका होता है—शरीरमें विजातीय द्रव्यका एकत्र रहना। स्रावमे निकलनेवाला पूय विजातीय द्रव्य ही होता है। यह रोगकी परिवर्द्धित अवस्था है। इसका आधार अदरका असाधारण ताप होता है जिसकी वजहसे विजातीय द्रव्यके खमीर बनने या गलनेकी अवस्था प्रस्तुत हो जाती है। यही अवस्था जीवाणुओकी वृद्धिमें सहायक हुआ करती है। इसके अनतर विजातीय द्रव्य तापकी मात्राके अनुसार रूप ग्रहण कर लेता है। अगर यह बात ध्यानमें रहे तो अवस्थामें परिवर्तन लाने और भयंकर जीवाणुओंको नष्ट करनेके उपाय आसानीसे निकल आयेगा। इस तीव्र तापको ही नियन्त्रित करना आवश्यक होता है जिसके लिए ठंड लानेवाले स्नान, वाष्पस्नान और अनुत्तेजक आहार सर्वोत्तम उपाय प्रमाणित होते है।

मैंने विभिन्न प्रकारके—क्षय और उपदशसंबधी तथा गलनेवाले—

घावोंसे पीडित अनक रोगियोका उपचार किया है। जिनकी जीवशक्ति बहुत अधिक नष्ट नही हुई थी और शरीर दवाओंसे विपाक्त नही हुआ था उनके घाव वहुत जल्द अच्छे हो गये। इन रोगियोमेंसे एकका मै यहा जिक्र करूगा जिसका रोग वहुत कठिन था और आरोग्यलाभमे साधारणतः जितना समय लगता है उससे कई गुना समय लग गया। उसके पैरमे—टखनेसे घुटनेतक—पास-ही-पास लगभग चालीस गलनेवाले घाव हो गये थे। जो सवसे वडा था वह चार इचवर्ग था। उसमेसे वरावर वदबूदार पछे-जैसा पूय निकलता रहता था। कुछ दिनोके लिए ये घाव अच्छे हो गये थे, पर फिर वहा जोरोकी खुजली पैदा हुई और वह व्यक्ति सहन न कर खुजलाने लगा जिससे पुराने घावोके मुह फिर खुल गये। खुजलीका कारण त्वचामें रुके हुए विकृत द्रव्यका खमीर था जिससे पैरमें प्रदाह उत्पन्न हो गया था। घावोके नये सिरेसे खुल जानेपर खुजली कम पड गयी। पैरका नीचेका सारा भाग गहरे भूरे रंगका हो गया था जो उसके गलनेका सूचक था। अवतकके सारे उपचार विफल हो चुके थे, पैर कटवा देना या सडानके फैलनेसे मृत्युका शिकार होना वाकी था। इसी नैराश्यकी अवस्थामे वह मेरे पास आया, हाला कि मेरी पद्धतिमे उसका जरा भी विश्वास नही था।

आकृतिविज्ञानके सहारे उसका पाचन खराव होनेका पता फौरन चल गया। वह हलके-से-हलका खाद्य पदार्थ भी ठीक तरहसे नही पचा सकता था जिससे रक्तका साधारण रूपमे निर्माण नही हो रहा था। फुप्फुस भी अपना काम ठीक तरहसे नही कर रहे थे। इन खरावियोके कारण विकृत द्रव्यका वढना अनिवार्य था। रोगीको जीर्ण विकारसे ग्रस्त होनेका, जो उसके रोगका कारण था, जरा भी गुमान नही था जिससे वह समझ भी नही सकता था कि केवल पैरका उपचार न कर सारे शरीरका उपचार करना क्यो आवश्यक है। मैंने घावोपर कपडेकी गीली पट्टी लगाकर ऊनी कपडेसे ढकने, अनुत्तेजक प्राकृतिक आहार और चार वार मेहनस्नान चलाने, शुद्ध वायु ग्रहण करने और प्राकृतिक ढगसे पसीना निकालनेकी

राय दी। उसने उपचारका रहस्य न समझ सकनेके कारण आहार और स्नानकी उपेक्षाकर सिर्फ गीली पट्टीका प्रयोग किया। नतीजा यह हुआ कि छ. मासतक अवस्थामे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। अतमे अपने मनसे काम न कर उपचार-क्रम ठीक-ठीक चलानेको वह तैयार हो गया। वादके छ. मासमे उपचारका अच्छा फल देख पड़ा—घाव कम पड़ गये और बहुतसे छोटे घाव तो बिलकुल अच्छे हो गये, कष्ट देनेवाली खुजली जाती रही और घावोंका बहना भी करीव-करीब वद हो गया। पाचन और शरीरका स्वास्थ्य काफी सुधर गया और फुप्फुसोका विकृत होना भी रुक गया। इन अनुकूल लक्षणोसे उत्साहित होकर उसने उपचार बडी मुस्तैदीसे चलाना शुरू किया। दूसरे वर्षमे घाव नीचेसे हटकर घुटनेके ऊपर आ गये—नीचेके घाव अच्छे हो जाते और ऊपर नये सिरेसे निकलते थे। यह अच्छा लक्षण था; क्योकि रोग उदरकी ओर क्रमश. वढ़ता जा रहा था। ऊपर घाव निकलना शुरू होनेपर, जहां पहले कभी नही निकला था, उसे यह धारणा हुई कि मेरा उपचार भी किसी कामका नही है; क्योकि घाव अब शरीरके मुख्य भागकी ओर वढ़ रहे थे, पर रोगकी वास्तविक स्थिति समझानेपर उसे विश्वास हो गया और उपचार चलाता गया। पूरे तीन वर्षोमें उसके पाचन और फुफ्फुसोकी शक्ति पर्याप्त रूपमें बढ सकी। घाव हमेशाके लिए अच्छे हो गये और शरीरका साधारण रग भी लौट आया। इस प्रकार मेरे उपचारसे ऐसे भयकर घाव भी अच्छे हो गये जिन्हे बड़े-बड़े डाक्टर असाध्य होनेका फतवा दे चुके थे। अबतक उन घावोके फिर उभड़नेका कोई लक्षण नही देख पड़ा है।

सर्प और कुत्तेका विष

मनुष्यके रक्तकण बडे सवेदनशील होते है। विजातीय द्रव्यके संपर्क-में आनेके साथ ही उनकी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है जिसका परिणाम ठीक खमीर बननेकी प्रक्रिया-जैसा ही होता है। विषैले सर्पके काटनेपर

पूर्णतः स्वस्थ व्यक्तिके रक्तमें भी ज्वरके लक्षण वहुत कुछ वैसे ही प्रकट होते है जैसा खमीर वननेपर । अगर शरीरमें पहलेसे विजातीय द्रव्य मौजूद हो तो विपका और गहरा असर होता है । विपके—चाहे वह किसी विपैले कीड़ेका हो या कुत्ते या पूय आदिका—रक्तमें प्रवेश करनेपर विजातीय द्रव्य, जो स्वयं खमीर पैदा करनेवाला होता है, वहुत वढ जाता है । शरीरमें विजातीय द्रव्य जितना अधिक होगा विपके प्रवेश करनेपर उतनी ही तेजीसे खमीर वनेगा । यही कारण है जिससे मधुमक्खीका डंक किसीके अंगमें तो वहुत अधिक सूजन पैदा कर देता है और किसीको वह मच्छरके दशसे अधिक नही जान पडता । मैंने एक ही कुत्तेको दो व्यक्तियो-को काटते देखा—एकको तो जलातक (हाइड्रोफोविया) हो गया, पर दूसरेपर इसका कुछ भी असर नही हुआ । सर्पदंशमें भी यही वात होती है—एककी तो मृत्युतक हो जाती है, पर दूसरेको ज्वरसे अधिक कुछ नही होता । दश उतने खतरेका कारण नही जितनी दशित व्यक्तिकी अवस्था है । तथाकथित सफल शल्यक्रियाके वाद रक्तके विपाक्त होने-का भी प्रायः यही कारण होता है ।

मेरे खमीरसंवधी सिद्धांतसे पागल कुत्तेके काटनेके विचित्र प्रभाव-का भी, जिसमें लालाका विष अदृश्य रूपमें रोगका वीज वमन कर देता है और तीव्र रूप वादमें प्रकट होता है, स्पष्टीकरण हो जाता है । यह विप पहले उदरकी नाड़ियो और अगोको आक्रात करता है, मस्तिष्क और भेजेपर इसका प्रभाव कुछ हफ्तोंके वाद ही होता है और तभी इस तथा-कथित जलातंकके तनाव लानेवाले लक्षण प्रकट होते है । मैंने प्राय. देखा है कि पागल कुत्तेका पाचन और भूख साधारण अवस्थामें नही होती ।

निम्नलिखित उदाहरणसे सर्पदंशका प्रभाव भलीभाति स्पष्ट हो जाता है । एक लडकेके सिरमें एक विपैले सर्पने डंस लिया । इसका प्रभाव यह हुआ कि उसके उदरमें विकार पैदा हो गया और पंद्रह घटे पेशाव नहीं उतरा । जान खतरेमें थी । मेरी पद्धतिसे उसका उपचार किया गया

जिसमे शरीर और दशित स्थानका वाष्पस्नान कराकर खूब पसीना निकाला गया और ठड लानेवाले स्नान चलाये गये। कुछ ही समयमे उसका खतरा दूर हो गया और पेशाब भी काफी उतरा।

विषप्रवेशके विभिन्न प्रभावोपर विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले दशित स्थानकी सूजन होती है और ताप तथा तीव्र ज्वर मालूम होता है जो पहले स्थानिक ही होता है। इस ज्वरका शमन करना पहला काम होना चाहिये। इसके लिए उस स्थानपर ठड पहुंचाना बड़ा लाभ-दायक होता है। विषका रूप भयकर होनेपर दशित भाग जहातक रखा जा सकता हो पानीमें रखा जाय और अगर संभव हो तो उसपर पानी गिराया जाता रहे। अगर उस अंगको पानीमें रखना सभव न हो तो उसपर कपडेकी गीली पट्टी बराबर लगायी जाती रहे और मेहन तथा कटिस्नान क्रम-क्रमसे चलाये जाय।

छोटे कीड़ोंका डंक

मक्षिका-दश आदि छोटे जख्मोमे सूजन होती है जो थोडे समयतक रहती है, कोई खास असर नही होता। ये कीड़े प्रायः उसी स्थानपर आक्रमण करते है जहां विजातीय द्रव्य और जगहोसे ज्यादा जमा रहता है। ऐसे जख्मोंको अच्छा करनेके लिए कपडेकी गीली पट्टी काफी होती है। यह विषको निकालने या उसे श्लेष्मासे आवृत करनेके शरीरके प्रयत्न-मे सहायक होती है। अगर सूजन वढ़कर आस-पासके भागोंमें फैलने लगे तो यह खतरेका सूचक होगा और इसका फौरन उपचार करना आवश्यक होगा। वह भाग पानीमें डुबाकर रखा जाय और अगर यह सभव न हो तो उसपर गीले कपड़ेकी पट्टी लगायी जाय और वाष्पस्नानके बाद मेहन या कटिस्नान कराया जाय। इससे फौरन लाभ होगा। ये स्नान अलग-अलग होने चाहिये और अगर खतरा देख पड़े तो स्नान हर दो या तीन घटेपर होना चाहिये। इस प्रकार ज्वर कम हो जानेपर आरोग्यकी दिशा-में काफी प्रगति हो जायगी। उपवास तो सबसे अच्छा है, पर अगर भोजन

भी किया जाय तो पूर्णान्न और फलके सिवा कुछ भी न खाया जाय। पानी पीना हानिकारक नही होगा। ठड लानेवाले स्नानोंके वाद शरीरमें गर्मी लानेके लिए धूपमें वैठाया जाय और अगर सभव हो तो मैदानमें व्यायाम कराया जाय। अगर दशवाला भाग कडा पड़ गया हो तो आशिक वाष्प-स्नानका प्रयोग किया जाय, पर उसके वाद ठड लानेवाला स्नान अवश्य कराना चाहिये। वाष्पस्नानसे पसीना निकलनेमें मदद मिलती है जिससे वहुत-सा विजातीय द्रव्य निकल जाता है। ये सारे जख्म ज्वरकी अवस्था प्रस्तुत करनेवाले होते है और हमारा पहला प्रयत्न इसी ज्वरको कम करनेकी दिशामें होना चाहिये।

एक नवयुवकको, जिसकी अवस्था अभी वीस वर्षकी भी नही थी, वायें हाथमें एक जहरीले कीडेने डंक मार दिया। डक अधिक कष्टकर नही था और सूजन भी कम ही हुई इसलिए उसपर ध्यान नही दिया गया, पर कुछ घंटोंके वाद हाथ कडा पडकर सूजने लगा और थोड़ी ही देरमें सारा हाथ सूज गया। फौरन डाक्टर वुलाया गया। उसने इसे रक्तकी विपमयता मानकर हाथ काट देना आवश्यक वतलाया। सयोग-वश मेरी पद्धतिसे परिचित एक व्यक्ति वहा मौजूद था और इसी पद्धति-का प्रयोग भी किया गया; क्योंकि हाथ कटवाना मजूर नही था। स्थानिक वाष्पस्नानके साथ कटिस्नान और कभी-कभी केवल कटिस्नान चलाया गया जिससे सूजनका वढना रुक गया। स्नानोके वीचके समयमें गीली पट्टीका प्रयोग किया गया और पसीना निकालनेके लिए मैदानमें, विशेपकर धूपमें उससे व्यायाम कराया गया। इन सीधे-सादे उपायोसे डकका सारा असर जाता रहा और साथ ही स्वास्थ्यको भी लाभ पहुचा।

स्त्रियोंके रोग

स्त्रियोकी शरीरकी रचना जटिल होनेके कारण उनको यौन अंगोसे सबध रखनेवाले बहुतसे रोग हुआ करते है और वे प्रायः बहुत कष्टकर भी होते है।

रज स्राव, गर्भधारण, प्रसव, बच्चेका स्तनपान आदि प्राकृतिक क्रियाओंके सबधमें तो गडबडिया होती ही है, इनके अलावा भी कुछ होती है जिनका उन्हे प्राय. सामना करना पड़ता है। ये सभी वर्तमान युगकी, जिसमें कामुकता, विलासप्रियता, पथभ्रष्टता आदिकी प्रधानता है, बुराइयोके परिणाम है। ये ही बुराइयां नारी-अगोकी हानिकारक जीर्ण अस्त-व्यस्तताकी नींव डाल देती है और ये ही सारी असाधारण अवस्थाए प्रस्तुत करती है जिनको ठीक करनेमें औषधोपचारक उलझे हुए है, पर कोई फल नही निकल रहा है।

स्त्रियोके रोग आखिर उत्पन्न कैसे होते है? रहन-सहनका गलत तरीका, स्वास्थ्यकी ओरसे लापरवाही, खुली हवामें व्यायाम न करना, शरीरकी तात्कालिक आवश्यकताओकी पूर्तिपर ध्यान न देना, विलासप्रियता और प्राकृतिक मार्गका परित्याग ही इन रोगोंके कारण होते है—इनके प्रभाव आपसमे मिलकर स्त्रियोके कोमल अंगोको विकृत कर देते है। ऐसी हालतमे ये अग अगर अपनी सहन-शक्ति खोकर रोगोंके शिकार हो जाय तो इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही है। ऐसे जीवनका परिणाम अन्यथा हो भी कैसे सकता है? प्राकृतिक नियमोंका सम्यक् रूपमें पालन न करते हुए भी कठिन श्रम करनेवाली किसी स्त्रीके साथ आरामतलवी-मे जीवन बितानेवाली नगरकी किसी स्त्रीकी तुलना की जाय तो मेरे कथनकी सचाई भलीभाति स्पष्ट हो जायगी।

आनुवशिक दोषों और रहन-सहनके गलत तरीकेके कारण स्त्रियोके

अगोको जितने अधिक रोग होते है उतना ही अधिक महत्त्व मेरी उपचार-पद्धतिको प्राप्त है जो सफलतापूर्वक इन विभिन्न रोगोंसे निपट सकती है। स्त्रियो और लडकियोने ही मेरी पद्धतिको विशेष रूपसे अपनाया भी है जिसका एक मुख्य कारण इसका सरल और कमखर्च होना है। स्वास्थ्यकी पुनः प्राप्तिसे उन्हें मेरी पद्धतिमे पूर्ण विश्वास हो गया है और ज्यादा पूछताछ या तर्कवितर्क किये विना ही प्राकृतिक सिद्धातोपर आवृत मेरी पद्धतिके अद्भुत प्रभावका उन्हे निश्चय हो गया है जिससे वे इसकी कट्टर अनुगामिनी हो गई है।

इसके साथ ही मेरी नई निदान-पद्धति—आकृतिविज्ञान—ने भी वहुतोंको अपना हिमायती वना लिया है। इसके प्रति स्त्रियोकी अधिक सहानुभूति होना निश्चित भी है; क्योंकि इसमें यौन अगोंकी परीक्षा, जिसे स्त्रिया वहुत नापसद करती है, आवश्यक नही होती, फिर भी यह शरीर-की अवस्थाका ठीक-ठीक ज्ञान करा देती है। स्त्रियोंके रोगोंके कारणोका पता लगाना और गहराईतक पहुचे हुए किसी रोगको ढूढ निकालना विशेष महत्त्वकी वात है। स्त्रिया और लड़किया भीषण रोगोकी भी प्राय. उपेक्षा कर जाती है; क्योकि वे डाक्टरी जाचके लिए जल्द तैयार नही होती। मेरी पद्धतिमें यंत्रोसे यौन अगोकी परीक्षा करनेकी कभी जरूरत न पडने-मे उन्होने इसका विशेष आभार माना है।

रज.स्राव

रजःस्राव सतानोत्पत्तिकी अवस्था वनी रहनेका सूचक है। जवतक गर्भाधान नही होता यह स्राव विना प्रयोजन सिद्ध हुए ही होता रहता है। स्वस्थ शरीरमें यह क्रिया नियमित रूपमें चलती रहती है—इसके कारण न तो कोई कष्ट होता है और न प्रसन्नता ही। अगर इस तरहकी कोई वात हो तो समझना चाहिए कि शरीरमें विकार जमा है।

वर्षोंके अनुभवसे मै इस परिणामपर पहुचा हू कि यह प्राकृतिक क्रिया

चद्रमाकी विभिन्न अवस्थाओसे संबद्ध है। पूर्णतः स्वस्थ स्त्रीका स्राव प्रत्येक पूर्णमासीके समय—अतके तीन-चार दिनोंमें—और फिर पूरे उनतीस दिन बाद होना चाहिए। जिन स्त्रियोको इस समय या इसके आस-पास स्राव नही होता उन्हे निश्चित रूपसे समझ लेना चाहिये कि उनके उदरके अग विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त है। विजातीय द्रव्य जितना अधिक होगा उतना ही यह समय पूर्णिमासे हटकर होगा। अगर स्राव दो या तीन सप्ताहपर हो या दो सप्ताहतक जारी रहे तो यह विजातीय द्रव्यकी और भी जीर्णावस्थाका सूचक होगा। यह दुर्भाग्यकी ही बात है कि आज ये दोनों लक्षण आम तौरपर देखे जाते है।

प्रकृतिमे हर एक वस्तुमें हमेशा परिवर्तन होता रहता है—इस मासिक स्रावमे भी चढ़ाव-उतार, वृद्धि-ह्रास हुआ करता है। स्त्रियो और लड़कियोके लिए रज स्रावका महत्त्व साधारणतः जितना समझा जाता है उससे कही अधिक है। अगर स्त्रियां बुरे और विषम परिणामोसे भी बचना चाहती है तो उन्हे स्राव-कालमें सारी उत्तेजनाओसे बचते हुए अपनेको बिलकुल शांत बनाये रखना चाहिए। गर्भवती स्त्रियोंके लिए तो इसकी और भी आवश्यकता है। उनके सारे विचारो और कार्योंका भ्रूणकी वृद्धिपर गहरा असर पडता है। इस कालमें होनेवाले रोगका परिणाम, जैसा कि मैंने प्रायः देखा है, बहुत भयकर होता है।

स्रावकी गड़बड़ी

अगर स्राव बहुत अधिक या बहुत कम हो, बिलकुल हो ही नही या अनियमित रूपमे हो तो ये सभी अवस्थाए शरीरमे विकृत द्रव्य एकत्र होनेके निश्चयात्मक प्रमाण है। इस अवस्थाकी पहचान और उपचारमे भी आकृतिविज्ञान हमारी सहायता करनेमे नही चूकता। स्रावसंबंधी रोग प्रकट होनेके पहले उदरमे एकत्र विजातीय द्रव्यके कारण पाचन अवश्य ही खराब हो गया होता है। स्रावसबधी विकार इस खराबीका ही अवश्यंभावी प्राकृतिक परिणाम है। अगर पाचनका सुधार कर दिया

जाय, आंतोकी पूरी सफाई हो जाय, और उदरका असाधारण ताप घटा दिया जाय तो सारी गडबडी आप-ही-आप दूर हो जायगी। अबतकके उपचारोसे यह भलीभाति प्रमाणित हो चुका है कि मेरे ठड लाने-वाले स्नान, अनुत्तेजक आहार तथा अन्य उपाय रजःस्रावसबधी विकारो-मे बडे प्रभावकर होते है।

स्रावमें निकलनेवाला रक्त शरीरका फाजिल रस है। गर्भाधान होनेपर भ्रूणके पोषणमें इसीका उपयोग होता है। भ्रूणकी वृद्धिके लिए सबसे अधिक सकटका काल पूर्णिमाके आस-पासका है जो स्वस्थ स्त्रियोंके स्रावका समय है। मुझे यह भी निश्चय हो गया है कि चंद्रमाकी वृद्धिके समय गर्भाशयसबधी रोगोकी हालत और खराब हो जाती है और इसके विपरीत, चंद्रमाके ह्रास-कालमें हालत सुधर जाती है। इन बातोंसे भी यह स्पष्टत. प्रमाणित हो जाता है कि मनुष्य प्रकृतिके साथ कितना बधा हुआ है।

अगर इस विशेषकालके प्रभावके संबधमें कुछ घटनाओंका यहा उल्लेख किया जाय तो वह पाठकोको अरुचिकर न होगा। पहली घटना एक गर्भवती स्त्रीकी है जो चूहोंसे बहुत डरा करती थी। एक दिन एक चूहा उसकी खुली बाहपर ठीक उसी समय दौड़ गया जब वह गर्भ न होता तो ऋतुमती हुई होती। उसके मनमें इसका कितना भय था, यह इसीसे समझा जा सकता है कि वह रातको इसीका स्वप्न भी देखने लगी। जब छ. महीने बाद बच्चा पैदा हुआ तो उसकी बाहपर चूहेकी आकृति मौजूद थी—आकार तो चूहेका था ही, उसकी दुम भी मौजूद थी। आकृतिवाला सारा हिस्सा बाहकी ही सतहमें था, पर वह चूहेके-से भूरे बालोंसे ढका हुआ था।

एक दूसरी स्त्रीको छठा गर्भ था। उसके, उसके पतिके और पाचो बच्चोंके बाल काले थे। गर्भकालमें एक लडकी, जिसका उससे घनिष्ठ सबध था, उसके साथ रहा करती थी। लडकीके बाल घुघराले, घने और चमकीले लाल रंगके थे जैसे बहुत कम देख पडते है। वह स्त्री

इस लडकीको बहुत प्यार करती थी और अपनी भावी संतानके बाल भी उसीके-से होनेकी अभिलाषा किया करती थी। रज.स्रावका नियत समय आनेपर उसकी यह अभिलाषा और प्रबल हो जाया करती थी। और स्वप्न भी प्राय. इसीका देखती थी। पाच महीने बाद उसके लडकी पैदा हुई। उसकी शक्ल-सूरत तो माता-पिता-जैसी ही थी, पर बाल ठीक उस लडकीके-से थे।

एक स्त्री गोदमे छोटा कुत्ता लिये गाडीपर जा रही थी। अचानक किसी वस्तुसे आकृष्ट होकर कुत्ता नीचे कूद पडा और सयोगवश गाड़ीके पहियेके नीचे आ पडा। इस घटनासे उस स्त्रीको इतना आघात पहुचा कि वह कुत्तेके कुचले हुए सिरका दृश्य नही भूल सकी। उसका गर्भ अभी कुछ ही महीनोका था। छ महीने बाद उसे मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ जिसके सिरकी शक्ल कुचली हुई-सी थी।

एक स्त्रीको ऐसा बच्चा पैदा हुआ जिसका मुह एक कांनसे दूसरे कानतक था। वह जन्म लेनेके थोडी ही देर बाद मर गया। इस रूप-विकृति-का कारण यह था कि वह स्त्री एक अभिनेताका नकाब, जिसका मुह बहुत बडा बना हुआ था, देखकर इस कदर डर गई थी कि वह कई दिनोतक सो नही सकी। यह घटना रज स्राववाले कालमें हुई थी। अगर यह बात न होती तो इतना अधिक प्रभाव कभी न हुआ होता।

इन उदाहरणोसे पाठकोको यह स्पष्ट हो गया होगा कि बच्चेके लक्षण, स्वभाव आदि माताकी इन भावनाओ और परिस्थितियोसे कितने प्रभा-वित होते है जो उसके गर्भवती होनेपर स्राववाले समयमे रहती हैं। अगर उसमें विषाद और नैराश्य हो तो ये भाव बच्चोमें भी शीघ्र या कुछ विलंब-से प्रकट हो जायेंगे। क्रोध, भीरुता, साहस, चौर्यप्रवृत्ति, छल, लोभ तथा अन्य भले-बुरे गुण भी बच्चोमे प्राय. इसी कारण होते हैं।

इन बातोसे हम इस निष्कर्षपर पहुचते है कि वे सारे बाह्य प्रभाव जो हमारी ज्ञानेंद्रियोंके द्वारा मस्तिष्कमे पहुचते है, अपनी शक्तिका प्रयोग वहा न कर उदरागोपर करते हैं। अगर पाठकोने हमारे ज्वरसंबंधी

सिद्धातका ध्यानपूर्वक अनुगमन किया होगा तो वे भलीभाति समझ जायेंगे कि मै उदरको ही सारे रोगोंके कारणोका उत्पत्ति-स्थान क्यों मानता हू। उपर्युक्त घटनाओसे मेरे सिद्धातको, जिसमें उदरको मानवशरीरका प्रमुख अग माना गया है, वहुत दृढ समर्थन प्राप्त होता है।

गर्भाशयका भ्रंश

यह अस्तव्यस्तता भी उसी सामान्य कारण—गर्भाशयके विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त होनेका परिणाम है। इसमे विकृत द्रव्यसे उत्पन्न आतरिक ताप और दवावसे गर्भाशय पर्याप्त प्रतिरोध-शक्ति न होनेके कारण वाहर निकल आता है। यह स्थिति ठीक आत उतरने-जैसी होती है। इस स्थितिका वास्तविक कारण हमारे औषधोपचारकोको ज्ञात नही है। वे कारणकी तहतक तो पहुच नही पाते, योनिमें रवरका छल्ला या 'पेसरी' लगाकर गर्भाशयका वाहर निकलना रोक देते है। पेसरीका प्रयोग करनेवाली वहुत-सी स्त्रियोका मैंने उपचार किया है। उससे कुछ समयके लिए तो मदद मिल जाती है, पर वह कारण नही दूर कर सकती। मेरी उपचार-पद्धतिसे विकृत द्रव्य निकल जानेपर आतरिक दवाव, जो इस भ्रशका कारण होता है, कम पड जाता है जिससे पेसरी इस्तेमाल करनेकी कोई जरूरत ही नही रह जाती।

गर्भाशयका मुडना

यह भी उसी प्रकार उदरके आंतरिक तीव्र तापके कारण उत्पन्न हुए तनावसे होता है। उदर विजातीय द्रव्यके भारसे इस कदर गस्त हो जाता है कि गर्भाशय अपने स्थानपर न रहकर मुड़ जाता है। इसका उपचार भी उसी प्रकार होना चाहिए। मेरे उपचारसे प्राप्त सफलताओसे इस पद्धतिकी उपयोगिता भलीभाति प्रमाणित हो गई है। शल्यक्रिया या यंत्रो आदिके जरिये इसे ठीक करनेके प्रयत्नसे अगोको नुकसान पहुचता है जो कभी ठीक नही होता।

वंध्यात्व

मुझसे राय लेनेके लिए बहुत-सी स्त्रियां आती और संतान न होनेके कारण अपने विवाहपर जब दारुण मनोवेदना प्रकट करने लगती है तो यह बड़े दु:खका विषय होता है; मगर आश्चर्यकी बात तो यह है कि फिर भी वे अपनेको स्वस्थ ही समझती है। वस्तुतः यह बहुत बड़ा भ्रम है, क्योंकि वध्यात्व हमेशा अगों, विशेषकर यौन अगो—डिंबकोशो, डिंबप्रणालियो, गर्भाशय आदिके विजातीय द्रव्यके भारसे बहुत अधिक ग्रस्त होनेका द्योतक होता है। इस प्रकारकी कुछ स्त्रियोंको विजातीय द्रव्यका परिमाण कुछ कम होनेपर गर्भ रह जा सकता है, पर उस द्रव्यके कारण उदरमें जो प्रदाह उत्पन्न होता है वह तनाव पैदा कर देता है जिससे गर्भपात या समय पूरा होनेके पहले ही प्रसव हो जाता है। साधारणत. चौथा महीना पूरा होनेके पहले ही गर्भपात हो जाता है और भावावेश, त्रास, आघात आदि आकस्मिक कारण जो विजातीय द्रव्यको और तेजीसे खमीर बनाते है, इसमें सहायक हुआ करते है। कमरपट्टी जोरसे कसना भी इसका कारण होता है। देहातमें, जहां स्त्रिया स्वास्थ्यके नियमोका शहरकी स्त्रियोकी अपेक्षा अधिक पालन करती है, गर्भपातकी बात शायद ही सुनी जाती है। मैं कुछ ऐसी स्त्रियोको जानता हू जिन्होंने गर्भके सातवें मासमें नृत्यमें भाग लिया, पर इसका उनके गर्भपर कोई बुरा असर नही हुआ। मूल कारण—यौन अंगोपर मौजूद विजातीय द्रव्यका भार—दूर करनेपर ही गर्भपात रोका जा सकता है। शल्यक्रिया, इजेक्शन तथा इस प्रकारके अन्य डाक्टरी उपायोसे, जो स्त्रियोको बहुत नागवार मालूम होते है, अभीष्ट फलकी प्राप्ति नही हो सकती। वे शरीरकी स्वास्थ्यरक्षक आतरिक शक्तिको इस कदर निष्क्रिय बना देते है कि मेरी पद्धतिसे भी आरोग्यलाभ असंभव हो जाता है।

यहां मै एक बातका उल्लेख कर देना चाहता हू जो इतनी महत्त्व-पूर्ण है कि उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। अनुभव यही बतलाता है कि गर्भाधानका समय कोई तुच्छ विषय नही कि उसपर ध्यान देना

आवश्यक न हो। जो प्रकृतिमें सर्वत्र देख पडता है वही मनुष्यमें भी होता है। प्रात.काल शक्ति अपनी चरम सीमापर होती है इसलिए वही समय गर्भाधानके लिए सबसे उपयुक्त है । अन्य कालकी रति, उदाहरणार्थ रात्रिकालकी, पति-पत्नीकी नाडियोको निर्वल ही नही करती, वल्कि गर्भाधान भी हो जाय तो भ्रूणकी वृद्धि वैसी शक्तिके साथ नही होती।

अगर विजातीय द्रव्यका भार वहुत अधिक न हो और शरीरमें कुछ आतरिक शक्ति मौजूद हो तो वध्यात्व दूर हो सकता है। मै अपनी उपचार-पद्धतिसे स्त्रियोको उनकी आतरिक अभिलाषा पूर्ण करने योग्य अवस्थामें प्राय लाता रहा हू। एक स्त्रीका विवाह हुए आठ वर्ष हो गये थे। वह संतानके लिए तरस रही थी, पर उच्चकोटिके विशेषज्ञ भी उसकी कुछ सहायता नही कर सके। अतमें वह मेरे पास पहुची। मैंने उसे वतलाया कि वध्यात्वका कारण उदरका विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त होना है, इसलिए पहला काम इस विजातीय द्रव्यको निकालना है और केवल इस उपायसे इच्छा पूरी हो सकती है। मैंने दो-तीन वार ठंड लानेवाले स्नान चलाने, भोजन अनुत्तेजक रखने और रहन-सहनका ढंग प्राकृतिक रखनेको कहा। इन उपायोसे भार क्रमश. कम होता गया और कुछ ही महीने बाद उसने गर्भ रहनेका शुभ समाचार सुनाया। कष्टहीन प्रसव और स्वस्थ वच्चेके रूपमें मेरी उपचार-पद्धतिकी प्रभावकारिताका और निश्चयात्मक प्रमाण मिला।

स्तनक्षत और दुग्धाभाव

सर्वाधिक प्राकृतिक होनेके कारण माताका स्तन ही वच्चेके पोषणका सर्वोत्तम साधन है। यह वहुत महत्त्वपूर्ण अंग है जिसकी क्रियाका दुर्भाग्यवश उतना महत्त्व नही समझा जाता जिससे जातिके सवर्द्धनका एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधन उपेक्षित रह जाता ह। आज वहुतेरी माताए वच्चेको स्तन-पान करानेमें पूर्णतः या अशत. असमर्थ पाई जाती

हैं, इसलिए पूरे अर्थमें वे प्रजनन या जातिका क्रम आगे बढानेके योग्य नही मानी जा सकती। क्या पशुओमें इस तरहकी कोई बात कही देखनेमे आती है ? क्या बच्चेको दूध न पिलाने या इस कारणसे थनके जख्मी होनेकी बात किसीमें देखी जाती है ? ऐसा कभी नही होता। तव मनुष्यमें इस स्थितिके प्रस्तुत होनेका कोई खास कारण अवश्य होगा। इसका एक कारण गर्भाधान होने और स्तनपान करानेके पूर्व स्तनोकी असाधारण पीनता है। यह अच्छी तरह जानी हुई वात है कि जिन स्त्रियो-के स्तन काफी बढ गये होते है वे या तो स्तनपान करानेमे विलकुल असमर्थ होती है या स्तनपान करानेमें स्तनवृन्त (चूचुक) की पीडासे उन्हे वहुत कष्ट होता है। कौमारमें इस तरहका प्रवर्द्धित स्तन कभी साधारण नही माना जा सकता, बल्कि यह तो शरीरमे विकृत द्रव्य अधिक मौजूद होने-का निश्चित लक्षण है।

देहातमे मुझे प्राय. देखनेका मौका मिला है कि स्त्रियोंको न तो प्रसवमें कोई पीडा होती है और न स्तनपान करानेमे कोई कष्ट। गर्भा-धानके पूर्व या स्तनपान करानेके समयमें भी उनके स्तन पूर्ण रूपमे नही बढे होते। अगर स्त्री बहुत दुवली-पतली हो तो दुग्धाभाव हो सकता है जो इस बातका सूचक होता है कि विकृत द्रव्य जीर्ण होकर गहराईतक पहुंच गया है। इस अवस्थामें, विशेषकर जव उत्तम और पोषक समझा जानेवाला आहार—मास, सुरा, अडा, दूध आदि—मिल रहा हो, स्त्रिया दुग्धाभावके कारण बच्चेको स्तनपान करानेमें नितांत असमर्थ होती हैं। इसके विपरीत मैंने प्रायः यह अनुभव किया है कि जो स्त्रिया उपयुक्त और अनुत्तेजक आहार ग्रहण करती हैं और मेरे ठढ लानेवाले तथा वाष्पस्नानो-का प्रयोग करती हैं उनकी स्तनपान करानेकी अक्षमता दूर हो जाती हैं और स्तनका क्षत भी अच्छा हो जाता है। एक स्त्रीको तीसरा बच्चा पैदा हुआ था। वह अपने पहले या दूसरे बच्चेको दूध पिलानेमें समर्थ नही हो पाई थी, हाला कि वह चाहती बहुत थी। इस बार उसने प्रसवके पूर्व कुछ दिनोंतक मेरा उपचार किया और उसकी इच्छा पूरी भी हो गई—

वच्चेके लिए काफी दूध उतरने लगा। इस तरहकी वहुत-सी स्त्रियोको मैंने अच्छा किया है ।

वहुत-सी स्त्रियोका स्तनक्षत भी मेरे उपचारसे अच्छा हुआ है। यहां एकका उल्लेख किया जा रहा है। एक युवतीके स्तनोंमें प्रसवके कुछ सप्ताह वाद वहुत अधिक सूजन हो गई। पारिवारिक चिकित्सकने अंतिम उपायके रूपमें उनमें दूसरे दिन चीरा लगानेका प्रस्ताव किया, पर वह स्त्री इसके लिए तैयार नही हुई और वडी रात गये मुझे वुला भेजा। मैंने उसे वतलाया कि नश्तर वेकार ही नही, वल्कि खतरनाक भी हो सकता है और मे अन्य प्रकारसे कष्टमुक्त करनेमे सहायक हो सकता हूं। वह मेरी रायके मुताविक चलनेको तैयार हो गई और रातमें आधे-आधे घटेका मेहन (उपस्थ) स्नान चार वार किया। दूसरे दिन उसकी हालत वहुत कुछ सुधर गई और कुछ ही दिनोमें उसकी अवस्था विलकुल साधारण हो गई— रोगका मूल कारण विजातीय द्रव्य उदरसे होकर वाहर निकल गया।

आरोग्य-लाभके ये उदाहरण औपधोपचारकोंके सारे वैज्ञानिक विवेचनोकी अपेक्षा अधिक स्पष्टताके साथ वास्तविकताका द्योतन करते हैं और इस प्रकारके रोगोमे भी मेरी पद्धतिकी प्रभावकारिताका अकाटच प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सूतिकाज्वर

हर साल हजारो सपन्न माताए इस भीपण रोगके, जिसका रूप वहुत कठोर और कष्टकारक होता है, चगुलमे फँसा करती है। इसका भय भी अधिक होता है, क्योकि मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाली सहायता इसका मुकावला करनेमे अवतक समर्थ नही हो पाई है। इसका प्रकट होना ही शरीरके विजातीय द्रव्यके भारसे विशेप रूपसे ग्रस्त होनेका निश्चित लक्षण है। यह भयकर ज्वर तभी प्रकट होता है जव शरीरमें विजातीय द्रव्य मौजूद हो और वह खमीर वनने लगे। इसलिए सूतिकाज्वर केवल ऐसी स्त्रियोको हो सकता है जिनके शरीरमें प्रसवके वाद रोगको उत्तेजन

देनेके लिए काफी विजातीय द्रव्य रह गया हो। यह कोई जरूरी नही है कि जो रक्त गर्भाशयमे या त्वचाके तंतुओंमें रह गया होगा वह पहले खमीर बन लेगा तब विजातीय व्द्रयमें खमीर पैदा करेगा। इसलिए अगर हम सूतिकाज्वरको दूर करना चाहते है तो हमें इसके कारण—विजातीय द्रव्य—को शरीरसे निकालना होगा और यह मेहन (उपस्थ) स्नानसे बडी शीघ्रतासे हो सकता है।

एक स्त्री प्रसवके दूसरे दिन सूतिकाज्वरसे भयंकर रूपमें आक्रात हो गई। धायने गर्म पट्टीका प्रयोग किया, पर उससे कोई लाभ नही हुआ। शरीरमें विजातीय द्रव्यके कारण जो आंतरिक ताप उत्पन्न हुआ था उसका उसे कोई ज्ञान नही था जो स्वभावतः ठंड पहुंचानेपर ही दूर हो सकता था। मेरे कहे मुताबिक चलनेको तैयार होनेपर मैंने पद्रहसे तीस मिनट-तक रोज चार बार मेहन (उपस्थ) स्नान चलानेको कहा। मैंने पानीका ताप कुछ बढ़ानेको कहा था, पर इसमे उसे झंझट मालूम हुआ और उसने पाइपका ठंडा पानी लेकर काम चलाया, हा, और सब बातें कहनेके मुता-बिक ही की गई। अधिक तापवाला पानी उसके अनुकूल हुआ होता, पर इस ठडे पानीसे उसे कोई हानि नही हुई, उलटे आरोग्य-लाभमे कुछ शीघ्रता ही हुई। अगर शरीरकी स्वास्थ्य-रक्षिणी शक्ति कम न हुई हो तो ठडा पानी हमेशा अधिक प्रभावकर होता है। अठारह घटेमे ज्वर कम हो गया और उसका खतरा टल गया। एक सप्ताहमें तो वह अपना साधा-रण काम-काज करने योग्य हो गई। मेहन (उपस्थ)-स्नानके अद्भुत प्रभावका इसमें एक और प्रमाण मिला। विजातीय द्रव्य मलमार्गकी ओर खिच आया जिससे अन्य ज्वरोकी तरह ही इसका खमीर बनना रुक गया। कुछ दिनोतक उपचार चलाते रहनेपर उसका स्वास्थ्य इतना अच्छा हो गया जितना पहले कभी नही था। मेरा उपचार डाक्टरोंके उपचारके ठीक उलटा था। वे सिरपर वर्फकी थैली रखते है और उदर गर्म रखनेका प्रयत्न करते है और इस प्रकार जिसे वे कम करना चाहते है उसे वे बढ़ाते ही जाते है। यह मेरे लिए रहस्य ही बना रहा कि सिरपर

ही बर्फकी थैली क्यो रखी जाती है जो रक्तको उस भागमें खीच लानेका उपाय है। हर एक आदमी जानता है कि सिर विजातीय द्रव्यको बाहर नही निकाल सकता, प्राकृतिक मलमार्ग ही उसे निकाल सकते है। बर्फ भेजेको ठंडा ही नही करती बल्कि उसे कुठित भी कर देती है। इस अगके ठडा पडनेपर उस ओर रक्त आकृष्ट होकर गर्मी उत्पन्न करता है जिससे बाहर तो उतनी गर्मी नहीं मालूम होती, पर अदर जलानेवाला ताप मौजूद रहता है। अगर परस्पर आदान-प्रदानद्वारा दोनों अवस्थाओमें शीघ्र सामजस्य स्थापित न हो जाय तो मृत्यु हो जायगी।

एक उदाहरण और। एक दिन एक महिलाने मुझे बुला भेजा जिसे प्रसवके एक ही दिन बाद सूतिकाज्वर हो गया था। प्रोफेसरो और औपधोपचारकोने उसका उपचार किया, पर ज्वर, जो अब तीव्रसे जीर्ण अवस्थामे परिणत हो गया था, नही उतर सका। अंतमें लगभग एक सप्ताह उपचार चलानेपर मस्तिष्क आक्रात हो जानेसे उसको प्रलाप हो गया जिससे चिकित्सकोको अनिष्टकी आशंका होने लगी। तार पाकर जानेपर मैंने उसे इसी दयनीय अवस्थामें देखा। पहला काम अन्तर्लीन या जीर्ण ज्वरको हटाना था जिसे मैंने शीघ्र ही कर दिया। कुछ बार एक-एक घटेका मेहन (उपस्थ)-स्नान उदरका ताप शात करने और मस्तिष्कको साधारण अवस्थामें लानेके लिए काफी था।

इस अल्पकालमें शरीर विजातीय द्रव्यसे, जो ज्वरका कारण हुआ था, मुक्त नही हो सका, फिर भी खतरा टल गया। उसने कुछ दिनोतक ठड लानेवाले स्नान और निर्धारित आहारका क्रम जारी रखा जिसका परिणाम यह हुआ कि उस समयसे उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।

सरल और निरापद् प्रसव

प्रकृतिके राज्यमें, शाश्वत नियमोसे शासित होनेवाले और हमेशा क्रियाशील रहनेवाले इस जगत्मे प्रत्येक प्राणीके अस्तित्व धारण करने-की अवस्था निश्चित है। अगर आप जगली अवस्थामे रहनेवाले जान-वरोकी, जिनका मनुष्यके सपर्कके कारण पतन नही हुआ है, बच्चा जनने-की क्रियापर ध्यान दें तो आप यही पायेंगे कि इसमे उन्हे न तो किसीकी सहायता आवश्यक होती है, न कोई कष्ट होता है और न अधिक समय लगता है। समय निकट आनेपर उनमे भय या घबडाहटका कोई चिह्न भी नही देख पड़ता। इस प्रकार मनुष्योके लिए जो क्रिया इतनी खतर-नाक होती है वह उनमें बिना किसी कष्टके सपन्न हो जाती है और उनके स्वास्थ्यमें भी इसके कारण कोई गडबडी नही आती।

मैंने इन जानवरोको प्रायः ध्यानसे देखा है और यह पाया है कि बच्चा पैदा करनेके बाद तुरत उनका रहनेका पुराना ढंग शुरू हो जाता है। अगर बच्चेकी जहातक हो सके फिक्र रखनेकी बात छोड दी जाय तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ हुआ ही नही है। प्रकृति अपने मार्गसे कभी पृथक् नही होती, यह बात स्वस्थ जतु-जगत्में स्पष्टतः देखी जा सकती है। मुझे एक लोमडीकी घटना याद है। जब उसके दो बच्चे पैदा हो चुके थे तभी एक शिकारीने बाधा डाल दी। वह साधारण अवस्थाकी तरह भाग खडी हुई, पर उसे गोली लग गई। परीक्षा करनेपर उसके पेटमें बच्चा जान पड़ा और पेट काटनेपर उसमेंसे जीवित बच्चा निकला; तलाश करनेपर पहले पैदा हुए दोनो बच्चे भी मिल गये।

स्त्रियोमें सरल प्रसव बहुत कम देख पडता है। कष्टपूर्ण प्रसव, गर्भ-पात तथा आये दिन होनेवाली गर्भसबधी गडबडियोको देखकर इसपर गभीरतापूर्वक ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। आज तो धायके अभाव-

में प्रसवकी कल्पना भी नहीं की जाती और प्रसवकी क्रिया अब प्राकृतिक-से अधिक कृत्रिम हो गई है। इसके अलावा बुरे परिणामोंसे बचनेके लिए स्त्रीको प्रसवके बाद भी कुछ दिनोंतक प्रसूतिगृहमें रहना पडता है।

अपरिवर्तनशील प्राकृतिक नियमोंसे इस कदर दूर जा पड़नेका अवश्य कोई प्रबल कारण होगा। यह अन्तर उस अवस्थाका ही परिणाम होगा जो प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध पड़ती है। स्वयं प्रकृति इस तरहकी कोई गडबडी उत्पन्न नहीं करती, उसकी प्रक्रियामें कभी परिवर्तन नहीं होता, मनुष्य ही अज्ञानवश प्राकृतिक नियमोंसे शासित इस शरीरके कार्योंमें हस्तक्षेपकर प्रकृतिके मार्गमें बाधक होता है; मनुष्यके कल्याण-की दृष्टिसे प्रकृतिमें कोई विकार नहीं आया है, स्वयं मनुष्य अपूर्णताकी ओर बढ़ता जा रहा है।

अगर प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनका बदला मनुष्यके विनाशकी ओर अग्रसर होनेके रूपमें मिले तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। प्राकृ-तिक मार्गसे हटनेपर ही मानव-जातिका ह्रास होने और उसमें विजातीय द्रव्यका भार बढने लगा है और उसकी प्रजनन-क्रियापर भी इसीकी घातक प्रतिक्रिया हुई है। उसका स्वर्ग, उसका भौतिक सुख, जिसकी अनुभूति प्राकृतिक नियमोंके साथ सामंजस्य बनाये रखनेसे प्राप्त होनेवाले पूर्ण स्वास्थ्यकी ही अवस्थामें होती है, अब नष्ट हो चुका है।

उपर्युक्त बातोंसे हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि जो स्त्रियां वस्तुतः स्वस्थ होंगी उनका गर्भधारण-काल आरामसे बीतेगा, प्रसव निरापद होगा और बच्चे भी स्वस्थ होंगे। 'स्वस्थ'से हमारा अभिप्राय विजातीय द्रव्यसे पूर्णतः मुक्त होना है। बच्चा भी तभी स्वस्थ होगा जब उसका पिता विजातीय द्रव्यसे रहित होगा। प्रकृति हमेशा भ्रूणका निर्माण माता-पिताके सर्वोत्तम तत्त्वोंसे करनेका प्रयत्न करती है। बच्चोंमें रोगके कीटाणुओंके संक्रमणका रूप यह होता है कि अगर गर्भाधानके समय माता-पिताका कोई अंग रुग्ण या विजातीय द्रव्यके भारसे ग्रस्त हो तो बच्चेका वह अंग पूर्णत. विकसित नहीं होगा। इस प्रकार बच्चा ऐसा शरीर लेकर

ससारमें प्रवेश करता है जिसके अगोमे उचित अनुपात नही होता। अब अगर बच्चेमें विजातीय द्रव्यकी वृद्धि हो, जो आजकल टीका लगवाने और कृत्रिम आहारके कारण अनिवार्य है, तो विजातीय द्रव्य जिस तरफ सबसे कम प्रतिरोध होगा उसी तरफ बढनेकी कोशिश करेगा और इस प्रकार वह अल्प विकसित अंगमें जमा हो जायेगा। यही कारण है जिससे बच्चोको भी वही रोग हो जाता है जो माता-पितामे रहता है। हा, प्राकृतिक उपचार और प्राकृतिक नियमोंके पालनद्वारा यह विजातीय द्रव्य निकाला जा सकता है और वह अग स्वस्थ और सशक्त बनाया जा सकता है।

स्वास्थ्यको क्षति पहुचानेवाले कुछ अन्य कारण भी है। प्रकृतिमे कही किसी जानवरका बच्चा पैदा करनेके कारण कमजोर या बदशक्ल होना नही देख पडता, पर मनुष्योकी अवस्था बिलकुल भिन्न देख पड़ती है। कुछ स्त्रियोमें प्रथम प्रसवके बाद ही वार्द्धक्य-जैसी अवस्था आने लगती है या उनकी आकृति बदल जाती है। दोष गर्भ, प्रसव और स्तन-पान करानेकी क्रियाको दिया जाता है। बादके प्रसवोंमें तो आहार आदि अच्छा होते हुए भी अधिकाश स्त्रियोका सौदर्य क्रमश॰ क्षीण ही होता जाता है।

मै यहा एक बातका स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहता हूँ। वह यह कि मनुष्यको छोडकर प्रकृतिमें और कही गर्भाधानके बाद मैथुन नही देखा जाता, बल्कि मादा इसके लिए कभी तैयार ही नही होती। यही प्रकृतिका नियम भी है। मैथुनका उद्देश्य गर्भाधान है, विलास नही। इस क्रियामे यौन अंगोकी ओर रक्तका बहाव अधिक होता है। अगर गर्भाधान हो गया है तो भ्रूणकी वृद्धिपर इसका बहुत बुरा असर होता है। स्त्रीको भी इससे क्षति पहुचती है; क्योकि प्रकृति भ्रूणको क्षति पहुचानेवाली सभी चीजोंसे गर्भाशयको बचाना चाहती है। इस प्राकृतिक नियमकी अवहेलनाका फल शरीरकी जीवशक्तिके ह्रास और स्त्रियोके विभिन्न रोगोके रूपमें प्रकट होता है।

गर्भके साथ होनेवाली तरह-तरहकी तकलीफे प्राय: प्रकृतिके इसी

नियमके अतिक्रमणका परिणाम है। प्रातःकालकी मतली, शरीरका भारी मालूम होना, दातका दर्द, रग वदल जाना, सर्दीके साथ हरारत, उदासी, नाडीका क्षोभ, अभ्यस्त आहारसे ऊबना, वहुत अधिक भूख लगना आदि ऐसी ही तकलीफें है। कुछ स्त्रियोंमें ये वातें पैतृक विजातीय द्रव्यके कारण भी हो सकती हैं। स्वस्थ पशुवुद्धि तो गर्भाधानके वाद मैथुनका निषेध ही करती है, पर आजके रहन-सहन और विजातीय द्रव्यके भारके कारण कामवासना इस कदर वढ गई है कि लोग इस प्राकृतिक नियमके पालनकी ओर ध्यान देना आवश्यक समझते ही नही।

किसान अच्छी तरह जानते है कि पशुओमें अस्वाभाविक रूपमें वढ़ी हुई काम-प्रवृत्ति किसी रोगकी ही सूचक होती है; मनुष्यका भी यही हाल है जिसे ध्यानसे देखनेवाला आदमी आसानीसे समझ सकता है। क्षयरोगसे ग्रस्त लोगोकी कामोत्तेजना उदाहरणके रूपमें पेश की जा सकती है। स्वस्थ मनुष्यकी यौनप्रवृत्ति इस अनियन्त्रित कामवासनासे विलकुल भिन्न होती है। शुद्ध यौनप्रवृत्तिमें न तो वासना होती है और न किसी प्रकारका अप्राकृतिक उत्तेजन, वह केवल जातिको कायम रखनेके लिए होती है। इसे ऐसी जरूरत नही वना लेना चाहिए कि कुछ समयतक पूरी न होनेपर वेचैनीका कारण हो जाय। जो स्वस्थ है और अनुत्तेजक तथा प्राकृतिक आहारके द्वारा अपने शरीरको शुद्ध रखता है वही इस अवस्थाका अनुभव भी कर सकता है। जो अपनी इच्छाका प्रकृतिकी इच्छाके साथ कभी सवध नही होने देना चाहता, अपने शरीरपर नियत्रण रखना चाहता है जिसमें उसकी यौनप्रवृत्ति सीमाके अदर रहे और उसके मनपर ज्यादा जोर न डाले, उसे प्रकृतिकी ओर अग्रसर होना चाहिए। अगर वह मेरे वतलाये हुए नियमोका पालन करे और अपने शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त कर ले तो उसे सतोष और सुखकी प्राप्ति अवश्य होगी।

आज प्रजननके सवधमें सर्वत्र तरह-तरहकी अप्राकृतिक वातें देखनेमें आती है—कही गर्भपात और अकाल प्रसव होता है, कही वच्चेका

उलटा या बगलसे जन्म होता है, कही बच्चेका सिर बहुत बडा होता है और मार्ग बहुत छोटा जिससे कृत्रिम सहायता लिये बिना प्रसव असभव हो जाता है और कही प्रसवमे पेशियोकी शिथिलताके कारण बहुत अधिक समय लगता है। साराश यह कि तरह-तरहकी अप्राकृतिक बाते देख पडती है जो माताके और बच्चेमे सक्रमणसे पहुचे हुए विजातीय द्रव्यके कारण होती है।

गर्भाशयमे बच्चेकी गलत स्थिति मातामे विजातीय द्रव्य होने या उसके अनुपयुक्त कार्य या पेशेके कारण होती है और यह खराबी पूर्वार्द्ध-कालमें ही आती है। विजातीय द्रव्य या अनुपयुक्त कार्यके कारण बच्चा स्थानभ्रष्ट हो जाता है जिससे उदर फैलकर तन जाता है। विजातीय द्रव्यके कारण जनन-मार्गके संकुचित हो जानेपर प्रसवमें कठिनाई होना तो निश्चित ही है। बच्चेमें भी विजातीय द्रव्य अधिक होनेपर उसका आकार, विशेषकर सिर बढकर असाधारण हो जाता है। इससे भी प्रसव-में कठिनाई होती है। प्रजननमार्गमें विजातीय द्रव्य जमा होनेपर उसकी पेशियां, कण्डराए और बधनियां इस कदर उससे भर जाती है कि वे फूली हुई-सी मालूम होती है और उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है। सरल प्रसवके लिए सारे शरीरका वास्तविक अर्थमें स्वस्थ होना आवश्यक है।

विजातीय द्रव्यका भार होनेपर पेशियोकी क्रियाशक्तिका ह्रास हो जाता है। अगर जनन-मार्ग इसके कारण सकुचित हो गया हो तो उसपर बहुत अधिक तनाव और जोर पडता है जिससे बड़ी पीड़ा होती है। इस प्रकार प्रसवमें अधिक पीड़ा होनेका कारण विजातीय द्रव्यका भार ही हुआ करता है। गर्भके फूलके चिपक जानेका भी यही कारण होता है।

ऐसी हालतमें अगर स्त्रियोको सतानोत्पत्तिके संबधमे भय हो तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नही है। फिर भी यह भय प्राकृतिक नही है, सिर्फ विजातीय द्रव्यके कारण है। जो स्त्री वस्तुतः स्वस्थ है उसे कष्ट-

संबंधी भावना नही होती। चिंता अंतर्मनकी आवाज है जो प्राय. दवा दी जानेपर प्रसव-जैसे संकटकालमें यह स्पष्टतः बतला देती है कि प्रकृतिके दिये हुए शरीर और स्वास्थ्यका दुरुपयोग किया गया है, पर आज इस आवाजका अर्थ समझता कौन है ? प्रसवमें यन्त्रों आदिका प्रयोग अनावश्यक होते हुए भी जो यह समझते हैं कि बहुत-सी अवस्थाओंमे यह आवश्यक होता है उन्हे निम्नलिखित घटनासे वास्तविक स्थितिका पता चल जायेगा।

छत्तीस वर्षकी अवस्थाकी एक स्त्रीको दूसरी संतान पैदा होनेवाली थी। प्रसव-वेदनामें दो दिन बीत गये थे, पर बच्चा गर्भाशयसे हटनेका नाम ही नही ले रहा था। धायकी रायमे सर्जनकी सहायता लिये बिना बच्चेका पैदा होना असंभव था। एक कुशल डाक्टर, जो बच्चा जनवानेमे बहुत प्रसिद्ध था, सहायताके लिए बुलाया गया। वह चार घटेतक तरह-तरहके यन्त्रोका प्रयोग करता रहा, पर कोई फल नही हुआ और अतमे इस निश्चयपर पहुचा कि बच्चेके पैदा होनेमें माके लिए खतरा है। वह स्त्री इस डाक्टरी सहायतासे होनेवाली पीड़ा बर्दाश्त करनेसे मर जाना अच्छा समझती थी। डाक्टरसे कुछ करते नही बन पडा और वह यह कहता हुआ चला गया कि स्त्री बच नही सकेगी; क्योंकि बच्चेका निकलना असंभव है; पर प्रकृतिका निश्चय कुछ और ही था। चौबीस घटेकी वेदनाके बाद बिना किसी डाक्टरी सहायताके ही—सिर्फ धायकी मददमे—बच्चा पैदा हो गया। कौन अधिक मददगार हुआ—डाक्टर या सरल प्रकृति ? हा, डाक्टरकी यांत्रिक क्रियाएं अपना बुरा असर डालती गयीं—वह नौ हफ्ते बीमार रही और उसके बचनेकी भी आशा नही थी। यन्त्रोंके प्रयोगने तो एक प्रकारसे उसे पगु बना दिया था, पर अदरकी शक्ति उसके स्वास्थ्य-लाभमें सहायक हुई।

मानव-जातिके चिरकालगत अपकर्षके कारण प्रसवमे ऐसे-ऐसे उपद्रव हो सकते है जिन्हें डाक्टर दूर नही कर सकते। मै अपने अनुभवोंके आधारपर इस परिणामपर पहुचा हू कि ऐसी हालतमें प्रकृतिका ही भरोसा करना

अच्छा होता है, उससे बढ़कर कोई मददगार नही हो सकता। जननांगोंकी निष्क्रियता या शिथिलता दूर करनेके लिए मेहन (उपस्थ)-स्नानसे बढकर दूसरा कोई उपाय नही है। पेडूपर मिट्टीकी पट्टी लगाना भी लाभदायक होता है। सूती कपड़ेपर गीली पट्टी फैला दी जाती है और मिट्टी केवल पेडूपर रखकर ऊपरसे ऊनी कपड़ेसे बांध दी जाती है।

घबड़ाकर शल्यक्रियाकी सहायता लेनेसे हजारों स्त्रिया कालके मुख-में जा चुकी है। अगर शल्यक्रियाके अवभवत डाक्टरोके बदले सबकी देखभाल करनेवाली प्रकृतिपर ही सब कुछ छोड़ दिया जाय तो पीडित माताओंको बडी प्रसन्नता होगी और बहुतसे परिवार परेशानीसे बच जायंगे। अगर यंत्रोका प्रयोग किये बिना प्रसव असभव जान पड़े तो यह माताका ही दोष है; क्योकि निरापद प्रसवके लिए तैयारी करनेका अवसर गर्भाधानके समयसे ही उसे प्राप्त था। हा, इसके लिए जो उपयुक्त साधन है उनका तथा उनके प्रयोगके उपयुक्त समयका उसे ज्ञान होना आवश्यक है। गत कतिपय वर्षोमे बहुत-सी स्त्रियोके सबंधमें इस प्रयोगकी प्रभावकारिता स्पष्ट रूपमें देखी गई है। आहार-सुधार और मेहन (उपस्थ)-स्नान कभी निष्फल होते नही देखे गये। ध्यान देनेकी एक बात यह भी है कि प्रसवके समय कष्टसे छुटकारा पानेकी अपेक्षा पहले ही कष्टके निवारणका उपाय करना ज्यादा आसान होता है।

जो लोग निरापद प्रसव और स्वस्थ बच्चा चाहते हैं उन्हे इस बात-का खयाल रखना चाहिए कि उनका शरीर गर्भाधानके समय स्वस्थ हो, और मनुष्य स्वस्थ भी तभी कहला सकता है जब उसका शरीर विजातीय द्रव्यसे बिलकुल मुक्त होगा।

एक स्त्री मुझसे उपचार करा रही थी जो बहुत दिनोसे सधिवातसे पीडित थी। उसके शरीरमे, विशेषकर उदरमे विजातीय द्रव्य बहुत अधिक जमा था। उसके पाच बच्चे थे और हर एकके जन्ममें उसे बहुत कष्ट हुआ

था। दो-दो, तीन-तीन दिन प्रसव-वेदना जारी रहती और अतमें लाचार होकर यंत्रोकी सहायता लेनी पडती थी। छठी वार गर्भ रहनेपर उसने मेरे कहनेके मुताविक रोज दो-तीन वार मेहन (उपस्थ)-स्नान, चलाया। परिणाम यह हुआ कि इस प्रसवमें, जो वहुत कष्टकर हुआ होता उसको कोई तकलीफ नही हुई और एक घटेसे भी कम समय लगा।

उस स्त्रीको इस परिणामका स्वप्नमें भी अनुमान नही हुआ था। प्रसवके पहले मैंने उससे यह वात कही भी थी, पर उसका कहना था कि कष्टहीन प्रसवका कोई उपाय तुम नही निकाल सकते। इस वार उसने वच्चेको स्तन-पान भी कराया जो पहले कभी नही करा सकी थी। इन सवका कारण प्राकृतिक था—मेरी पद्धतिके वारेमें सुननेपर वह प्राकृतिक ढगसे रहने और नियमित रूपसे ठड लानेवाले स्नान चलाने लगी थी। पहले उसके शरीरमें वहुत अधिक विजातीय द्रव्य था जो अव काफी निकल चुका था और इसके फलस्वरूप उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति वढ गई थी। इसी प्रकार और स्त्रियोने भी मेरी पद्धतिसे अच्छा फायदा उठाया है।

प्रसवके बाद

जो स्त्रिया वस्तुत. स्वस्थ है उन्हे प्रसवके वाद कैसे रहना या क्या करना चाहिए, इस विषयमे कुछ वतलानेकी जरूरत नही है। जानवर ही नही, असभ्य जातियोकी स्त्रिया भी प्रसवके बाद तुरत अपना काम करने लग जाती है। सभ्य जातियोकी स्त्रियोमे यह वात बहुत कम पाई जाती है। यही नही, प्रसवके बाद उन्हे कई दिनोतक सूतिकागारमें रखा भी जाता है। पहले आम तौरपर नौ दिन रखते थे, अब बहुतसे चिकित्सक वारह दिन रखनेकी राय देते है। माताकी शारीरिक निर्वलता इसका उतना कारण नही होती जितना प्रजननसंबधी अगोंका पूर्वरूप ग्रहण करनेमें शैथिल्य। सूतिकागारमें इतने अधिक दिनोतक रहना निश्चय ही स्वास्थ्यके लिए बहुत हानिकारक होता है। खाद्यके अभिशोषण-की प्रक्रिया मद पड जाती है; क्योकि शरीरकी सक्रियताके अभावमें पाचन-क्रिया ठीक तरहसे नही हो पाती जो इस कालमें स्त्रियोको प्राय. होनेवाले कब्जसे प्रमाणित हो जाता है। प्रजननागोके पूर्व रूपमें आनेके पहले उठना भी हानिकारक ही होता है; क्योकि इससे उदर बड़ा हो जाता है जैसा कि वहुप्रसवा स्त्रियोमें प्राय: देखा जाता है। इस खरावीको दूर करनेके प्रश्नपर मैंने बहुत विचार किया है और इसका एक उपाय भी ढूढ निकाला है जो बहुत प्रभावकर होता है।

प्रसवके वाद स्त्री जवतक आवश्यक समझे आराम करे और कुछ देरतक सो लेना तो और भी लाभदायक होता है। इसके वाद वह अपने-को धो ले। यह काम मेहन (उपस्थ)-स्नानसे मजेमे हो जायगा। स्नान-के वाद उदरपर कपड़ेकी पट्टी कसकर लपेट ली जाय। पट्टी छेददार सूती कपडेकी हो और कसनेके लिए एक छोरपर डोरी लगी हो। डोरी दर-वाजेके कुडेसे वाध दी जाय और पट्टीका दूसरा छोर उदरपर कसकर

रखते हुए घूमकर पूरी पट्टी लपेट ली जाय और तब डोरीसे बांध दी जाय। इस उपायसे अंदरके अंगोंको दृढ सहारा मिल जाता है जिसकी उन्हें बड़ी जरूरत रहती है। अगर स्त्रीको कमजोरी न मालूम होती हो तो पट्टी
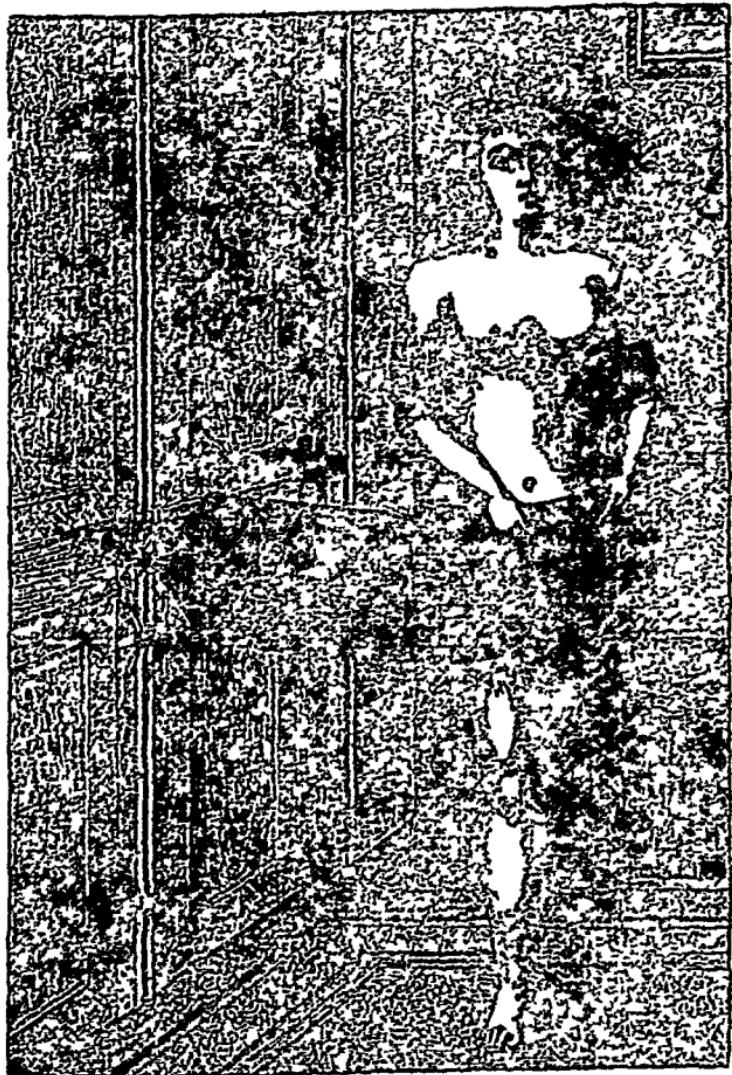
लगाकर वह अपना बिस्तर बिना खतरेके छोड़ सकती है। अगर उसे किसी तरहकी परेशानी मालूम हो तो पट्टी तीसरे या चौथे दिनतक न लगाई

जाय। पट्टी तीन-चार सप्ताह चलाई जाय। अगर हालत ठीक रहे तो पट्टी लगानेके अलावा और कुछ करनेकी जरूरत नही रहेगी। अगर हरारत हो तो बारी-बारीसे ठड लानेवाले स्नान और गीली मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग किया जाय। इन उपायोसे जल्द ही शरीरसे पसीना निकलने लगेगा जिससे ज्वर कम पड़ जायगा और क्षय-पूर्तिकी क्रिया होने लगेगी।

अगर संभव हो तो माता बच्चेको स्तनपान कराए। बेहिसाब खाने-पीने या इस प्रकारके किसी कार्यसे दूध नही आएगा, बल्कि इससे दूधका प्रवाह और कम हो जायगा। और समयोकी तरह इसमें भी प्राकृतिक आदेशका ही पालन होना चाहिए—भूख-प्यास मालूम होनेपर ही कुछ खाया-पिया जाय। आहार भी प्राकृतिक ही होना चाहिए। जो स्त्रिया स्वस्थ है उन्हे इसी आहारसे पर्याप्त और बढिया दूध उतरेगा।

बच्चोंका लालन-पालन

अगर हम प्रकृतिके मार्गका अनुसरण करें और माता तथा सतानके संवंधपर ध्यान दे तो हम इसी निष्कर्पपर पहुचेंगे कि इन दोनोमे दीर्घकाल-तक घनिष्ठ सवध वना रहना चाहिए। आरभिक वर्षोंमे तो यह संवव और भी गहरा होना चाहिए, क्योकि वच्चेको गर्मीकी आवश्यकता रहती है। वच्चेको मातासे पृथक् कर स्वास्थ्यके लिए लाभदायक उष्णतासे वचित करना वहुत वड़ी भूल है। यह दुर्भाग्यकी ही वात है कि आजकल अधिकांश स्त्रिया इस महत्त्वपूर्ण विषयकी ओर ध्यान नही दे रही हैं।

एक परिवारमे वुलाए जानेकी वात मुझे याद है। वच्चेकी अवस्था तीन सप्ताहकी थी और वह पालनेमें शातिसे नही लेट रहा था। माता वहुत चिंतित थी, इस कारण और भी वच्चेका पाचन खराव हो गया था। माताकी प्राकृतिक उष्णता और रोज तीन वार मेहनस्नानसे वच्चेको फिर आराम मिलने लगा और स्वास्थ्य सावारण हो गया।

वच्चेका पोपण

आजकल अधिकाश माताए वच्चेको स्तनपान कराने योग्य नही होती या उन्हे दूघ ही वहुत कम उतरता है। यही कारण है जिससे आज-कलके वच्चोका अच्छा विकास नही हो रहा है। माताका दूव न मिलने-पर वच्चेका सवसे अच्छा आहार धायका दूव होता है, पर इससे वच्चेके स्वास्थ्यका ठीक रहना निश्चित नही है; क्योकि धायका स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर वच्चेमें माता-पितासे जो विजातीय द्रव्य आया होगा वह और वढ़ जायगा। हा, धायके स्वास्थ्यकी परीक्षा आकृति-विज्ञानद्वारा कर ली जा सकती है, पर वस्तुत: स्वस्थ धायका मिलना वहुत मुश्किल है। अधिकतर वच्चोको कृत्रिम आहार ही दिया जाता है, पर न तो खाद्य पदार्थ-का अच्छा चुनाव होता है और न वह ठीक तरहसे तैयार ही किया जाता

है। अगर गायका दूध दिया जाय तो वह सिर्फ कुनकुना कर लिया जाय, उबाला न जाय, क्योकि उबला हुआ दूध पचनेमें कठिन होता है। उसके जीवाणुओ या कीटाणुओको नष्ट करनेकी वातका कोई महत्त्व नही है।

जो पदार्थ आसानीसे पचते है उन्हीसे अधिक पोषण मिलता है। अगर पाचनकी अवस्था ठीक रहे तो पाचकरसमे शरीरको क्षति पहुचाने-वाले सारे पदार्थोको नष्टकर निकाल देनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। कच्चा दूध पचनेमें बहुत हलका होता है, पर उबला हुआ दूध पाचन-प्रणालीमे बहुत देरतक टिका रहता है और इस प्रकार पोषण प्रदान करने-की अपेक्षा खमीर बननेकी अवस्था अधिक उत्पन्न करता है। यही अवस्था अधिकाश बालरोगो और बच्चोकी बढती हुई मृत्यु-सख्याका कारण होती है। बच्चोके लिए तैयार किए जानेवाले तरह-तरहके खाद्य पदार्थ और उनके सार बच्चोका पाचन खराब कर देते, आमाशय फैला देते और पाचनमें बाधा डालकर उनमे बेचैनी पैदा कर देते है।

वैज्ञानिकोके बतलाए हुए तरीकेसे उबालकर विसक्रमित किया हुआ दूध भी, जिसे देनेकी चिकित्सक राय देते है, साधारण रूपमें उबाले हुए दूधके समान ही हानिकारक होता है। ये वैज्ञानिक दूधको उबालकर जिस चीजको नष्ट करनेको कहते है वस्तुतः वही दूधको सुपाच्य बनाती है। पाचन-प्रणालीमे पहुंचनेके साथ ही दूधका पचना शुरू हो जाना चाहिए। बच्चेके मुहमें जानेके पहले दूधका वायुके सपर्कमे आना प्रकृति-में कही नही देखा जाता। दूध पोषक रसके सिवा और कुछ नही है, इसलिए वह स्तनसे निकलकर सीधे बच्चेके मुहमें जाना चाहिए, वायुके साथ उसका सपर्क नही होना चाहिए। वायुके सपर्कमें आनेके साथ ही उसमें परिवर्तन होने लगता है जिसका बच्चेके पाचनपर बहुत बुरा असर होता है। तुरत-के दुहे हुए दूधमें जो थोड़ा परिवर्तन होता है उसका विशेष महत्त्व नही है। गायमे भी विजातीय द्रव्यका होना सभव है, इसलिए सावधानी बर-तना अच्छा है। यह समझना भूल है कि घरके अदर खूब खाकर पली हुई गायका दूध बहुत अच्छा होगा। इस तरहकी गायका शरीर विजा-

तीय द्रव्यके कारण फैला हुआ होता है और इसका बुरा असर दूधमें भी मौजूद रहता है।

लोगोको यही विकृत दूध पीना पड़ता है; क्योंकि सभ्य देशोमें स्वस्थ गायें बहुत कम देखनेमें आती है। गायके दूधके बदले जईका मांड़ मजेमें काममें लाया जा सकता है। बिना सुखायी हुई जईका मांड़ निकाल लिया जाय और उसमें चीनी, मक्खन या नमक—कुछ भी न मिलाया जाय। टिकाऊ बनानेके लिए जई सुखा दी जाती है और वही बाजारमें मिलती है। ऐसी जई बच्चोंके लिए ठीक नही होती; क्योकि सुखानेसे उसकी सुपाच्यता नष्ट हो जाती है। अगर हरी जई न मिले तो छटी हुई साधारण जईका दलिया उबालकर मांड़ निकाल लिया जाय।

खेदकी बात है कि अधिकांश माता-पिताओको बच्चोंका पालन-पोषण भार-स्वरूप और कष्टकर जान पडता है। बच्चे कुछ सीखते नही, उनका ध्यान हमेशा किसी दूसरे विषयपर लगा रहता है, अशिष्ट, क्रोधी और चिड़चिड़े होते है, फिर भी मा-बाप और शिक्षक उनके लिए तरह-तरह-की परेशानिया उठाते रहते है; उनके शिक्षणका कार्य कठिन होनेका कारण उनकी समझमें नही आता, सारा दोष उम्रके मत्थे मढ़ दिया जाता है। अगर बच्चेके शरीरमें विजातीय द्रव्य मौजूद हो तो उसके मस्तिष्क तथा अन्य अगोकी क्रियापर उसका बुरा असर होगा और उसमें परिवर्तन आ जायगा, पर शरीरके विजातीय द्रव्यसे मुक्त हो जानेपर स्वाभाविक स्वास्थ्य फिर लौट आयेगा। मैंने प्राय देखा है कि जिन बच्चोका पालन बुरे तरीकेसे हुआ है वे भी मेरे उपचारसे बडे शात और शिष्ट बन गए है; जो लड़के कुछ भी नही पढ सकते थे और घटो प्रयत्न करके भी अपना हलके-से-हलका पाठ तैयार नही कर पाते थे उनमें विजातीय द्रव्य निकल जाने-पर पूर्ण परिवर्तन हो गया—जल्द समझने और सीखनेकी योग्यता आ गई, सुस्ती और आलस्य जाता रहा और पुन. माता-पिताके लिए आनद-के साधन बन गए। जो व्यक्ति स्वस्थ बच्चोंके पालनमें प्राप्त होनेवाले आनदसे परिचित है और जानते है कि उसमें कितना कम झझट और

कष्ट है वे इस आनंदको लानेवाली अवस्था प्रस्तुत करना कभी न भूलेंगे। मेरी उपचारपद्धति और आकृतिविज्ञानका ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक माता-पिताका कर्तव्य होना चाहिए। बच्चेके शरीरमे विजातीय द्रव्य आनेपर आकृति-विज्ञानके सहारे उन्हे फौरन उसका ज्ञान हो जायगा।

एक बात और है जो इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसका उल्लेख न करना ठीक न होगा। मेरा अभिप्राय लडकोमें बढती हुई काम-प्रवृत्ति और उसके स्वाभाविक परिणाम हस्तमैथुनसे है। खेदकी बात है कि लडकोंके इस दोषका मूल कारण अभीतक उचित रूपमें नही समझा गया है। लोग मिथ्या लज्जासे प्रेरित होकर ऐसी बातोकी चर्चा बिलकुल दबा दिया करते है। इस रवैयेंसे तो इस बुराईका कभी अंत ही नही होगा। जो लोग दुनिया-का सुधार करना चाहते हैं उन्हे उसकी बुराइयोको खुल्लमखुल्ला कहना चाहिए। देहातमें, जहा प्रकृतिके साथ आचार-व्यवहारका मेल है, यह बात बहुत पहले ही समझ ली गई है कि जानवरोमें अनुचित कामोत्तेजना विकारकी ही सूचक होती है। मनुष्य भी उन्ही नियमोंके अधीन है, भले ही कुछ लोग प्रकृतिमे मनुष्यका विशिष्ट स्थान मानकर अपने लिए विशेष नियम मानते रहें।

हस्तमैथुन यौन अगोंके विजातीय द्रव्यमे ग्रस्त होनेका स्पष्ट चिह्न है। अगर यह विकृत द्रव्य धीरे-धीरे शरीरसे निकाल दिया जाय तो यह अप्राकृतिक इच्छा भी आप-ही-आप दूर हो जायगी। यौन अगोको छेडने-के कारण बच्चोको बेत लगाना, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, बिलकुल बेकार है। लगातार होनेवाला उत्तेजन या क्षोभ दूर करनेके लिए उनके मूल कारण—विजातीय द्रव्य—को दूर करना आवश्यक है। बच्चोंकी इच्छा-शक्ति बढाकर भी यह रुकवाया जा सकता है, पर इस हालतमे अदर-की प्रेरणा बनी रहेगी और जबतक कारण दूर नही होगा तबतक उससे छुटकारा नही मिल सकेगा। इस रोगके उपचारसे प्राप्त विस्तृत अनुभव-के आधारपर मै इसी निष्कर्षपर पहुचा हूं कि मेरे ठड लानेवाले स्नानोके

साथ अनुत्तेजक आहार और रहन-सहनके प्राकृतिक ढंगसे वढकर इसका कोई उपचार नही है। इस प्रकार मेरी पद्धति वच्चोमे नैतिकता लानेका वहुत अच्छा साधन है और यह इतने महत्त्वका विपय है कि इस तथ्यको समझना मनुष्यको अपना मुख्य कर्तव्य मानना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोकी तादाद वढ रही है और साथ-साथ अनगिनत ओषधियोकी, पर आख उठाकर देखे तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चगुलमे फंसा मिलेगा। इससे सावित होता है कि दवाएं आदमीको न तदुरुस्त रख सकती है, न कर सकती है।

प्राकृतिक चिकित्सकोने तजुरवेसे जाना है कि रसायन और दवाए रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणोको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, वाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दवा देती है। जैसे गावमे कूडा-कचरा इकट्ठा होकर वीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गदगी निकल न पानेपर अदर सडने लगती है। वही गदगी सब रोगोकी जड है।

गलत भोजनकी वजहसे पैदा हुई सडन, अपच, दवाओके जहर, इजेक्शन, टीका वगैरह इस गदगीको वढाते है।

शरीरसे गदगी निकालनेकी कुदरतकी कोशिश ही रोग है और रोगके लक्षण इस कोशिशका कुदरती नतीजा है। कुदरती इलाज इस गदगीको शरीरसे निकाल फेकनेमें पूरी मदद पहुचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एव सतेज बनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार है उपवास, फलाहार, संतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दबते नही वल्कि जडसे नेस्त-नावूद होते है।

आरोग्य-मंदिर

इन्ही सिद्धातोके अनुसार चिकित्साकी सुविधा देनेके लिए आरोग्य-मदिरकी स्थापना की गई है। विशेष जानकारीके लिए आरोग्य-मदिरका परिचय-पत्र मंगानेकी कृपा करे।

प्रवधक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उ० प्रा०)

प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें ये क्या कहते हैं ?

मेरे दोनो हाथ पंद्रह वर्षसे छाजन (एक्जीमा) से भरे हुए थे। मुझे शरमके मारे उन्हे ढंककर रखना पडता था। आरोग्य-मंदिरके मिट्टी-पानीके उपचारसे छाजन ढाई महीनेमें चला गया और हाथकी त्वचाका रग स्वाभाविक हो गया।

काशमीरी देवी, हापुड़

मेरे पेशावके साथ सात प्रतिशत चीनी आती थी। इसे कम करनेके लिए मुझे डाक्टर दोपहर व शामको भोजनके पहले इंसुलिनका इजेक्शन देते थे। आरोग्य-मदिरमें आते ही इंजेक्शन वद कर दिया गया और यहाकी चिकित्सासे तीन सप्ताहमें पेशावके साथ चीनी आना विल्कुल वद हो गया। चिकित्सा कराए मुझे डेढ़ वर्ष हो गया तवसे मै स्वस्थ हू।

गादूराम चौवरी, विशनपुर (पूर्णिया)

मोटापेके साथ-साथ मै सिरदर्द, चक्कर, वेहोशी, कमजोरी और स्वप्नदोपसे पीडित था। आरोग्य-मदिरमें रहकर ढाई महीनेमें मैंने अपना अडतालीस पौंड वजन घटानेके साथ-साथ अपने शरीरको सुडौल वनाया और सभी रोगोंसे छुट्टी पा ली।

आरोग्य-मदिरके स्नेहपूर्ण वातावरणको छोडते हुए वडी तकलीफ हुई।

श्यामविहारीलाल गर्ग, कृष्णा प्रेस, मेरठ

मुझे वहुत पुराना दमा था और हृदयकी कमजोरी। प्राकृतिक चिकित्साकी कृपासे डेढ महीनेमें पचास वर्पकी उम्रमें इन रोगोसे छुटकारा पाकर मै फिर जवानीकी शक्ति और उमगका अनुभव कर रहा हूं।

कारुलाल साह, सूजागंज, भागलपुर

मै मासिककी गडवडी और प्रदरकी शिकायतसे वर्षोंसे पीड़ित थी। जगह-जगह चिकित्सा कराकर निराश हो चुकी थी। आरोग्य-मदिरकी चिकित्सासे ये सव रोग तो गए ही, भूख खुलकर लगने लगी और पुराना

कब्ज चला गया । मैंने यहा यह भी सीखा कि मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिए क्या खाना-पीना चाहिए और कैसे रहना चाहिए । मैंने नवजीवन पाया ।

बनारसीदेवी, वरडुआरी, मालदा

'आरोग्य-मदिर' मे आनेके पहले मुझे ये शिकायते थी—पेट भारी होना, स्वप्नदोष, पेटमे वायु, शारीरिक कमजोरी, निरुत्साह, निस्तेज मुख-मुद्रा, स्मरण-शक्तिकी कमी, वदहजमी।......एक महीनेकी चिकित्साद्वारा मेरे इन लक्षणोमे सुधार हुआ । तीन महीनेमें मैं विलकुल अच्छा हो गया और १४ पौंड वजन वढ गया ।

—नारायण भट्ट, ग्रामसेवासमित, अंकोला कारवार, (वम्बई प्रांत)

मेरे विचारसे प्राकृतिक चिकित्साका जितना अच्छा प्रवध 'आरोग्य-मदिर' में है उत्तरी भारतके किसी भी प्राकृतिक चिकित्सालयमे नही है।

—प्रोफेसर हरिश्चंद्र गुप्त, विरला कालेज, पिलानी (जयपुर)

England's foremost advocate of Natural Therapeutics · Dr. Stanley Lief advised me to come to AROGYA-MANDIR, Gorakhpur for it's training. Here I have had the wonderful opportunity to see Nature Cure at work. I have been able to watch so many patients, who recovered wonderfully. It must be witnessed to be believed. In this Institution I have learnt to understand many simple principles, otherwise impossible.

ALbert Issac Mosseri,
CAIRO (EGYPT.)

आरोग्य-मदिरमें चिकित्सा करानेके नियमादि जाननेके लिए 'आरोग्य'-मदिर'का परिचय-पत्र मगानेकी कृपा करें ।

संचालक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश)

आरोग्य-ग्रंथमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रथमालाका प्रकाशन शुरू किया गया है। इसमें हिंदुस्तानके अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकोकी पुस्तकोंके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोकी पुस्तकें भी होगी। ये सब हम मूल या साराशरूपमें हिन्दी भाषी जनताको अच्छे रूपमे और सुलभ मूल्यमें देना चाहते हैं।

रोगोकी नई चिकित्सा—आपके हाथमें है।

रोगोंकी सरल चिकित्सा–लेखक : श्रीविट्ठलदास मोदी—रोगोकी हर घरमें चल सकने लायक सरल चिकित्सा बतानेवाली अनुभवके आधार-पर लिखी हुई एक प्रामाणिक पुस्तक। मूल्य चार रुपया।

प्राकृतिक जीवनकी ओर–लेखक : एडोल्फ जस्ट, अनुवादक—श्रीविट्ठलदास मोदी, सपादक—'आरोग्य'। मिट्टी पानी धूप हवा और भोजनकी सहायतासे नये पुराने सभी रोगोको दूर करने तथा स्वास्थ्य-को बढिया बनानेकी विधि सिखानेवाली दुनियाकी सरलतम पुस्तक। मूल जर्मनसे अबतक इसके १४० भाषाओमे अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। बढिया गेट अप। मूल्य २॥)

बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चोंके पालन पोषणकी विधिके साथ-साथ उनके रोगी होनेपर उन्हे रोगमुक्त करनेकी विधि इस पुस्तकमें आपको विस्तारसे मिलेगी। मूल्य केवल ३)

जीनेकी कला—लेखक : विट्ठलदास मोदी। यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढायेगी, स्मरणशक्ति तीव्र बनायेगी, चिंताओंसे मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिनके जाननेके कारण वह व्यक्ति जिसे आप बडा कहते है, बडा बना है। मूल्य १।)

कश्मीरमें पंद्रह दिन—लेखक . विट्ठलदास मोदी। कश्मीर हमारे भारतका हृदय है—हृदयकी समस्त उदात्त भावनाओंकी तरह सुदर।

यह सौंदर्य कश्मीर भ्रमणमें मानसिक वृत्तियोंपर स्वास्थ्यकारी प्रभाव डालता और मनुष्य शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यका अनुभव करता है। कश्मीरमें पन्द्रह दिन पढ़िये। आप निश्चितरूपसे इस भावनासे ओतप्रोत हो उठेंगे। सुंदर कवर, ५० चित्र, मूल्य केवल १)।

उपवाससे लाभ—संपादक : श्रीविट्ठलदास मोदी। उपवासकी महिमा, उपवास करनेकी विधि और रोगोंके निवारणमें उपवासका स्थान बतानेवाली पुस्तकके रूपमें एक धर्मगुरु। मूल्य डेढ़ रुपया।

आरोग्यकी कुंजी— गांधीजीने अपने जीवनमें अनेक प्रयोग किए हैं। स्वास्थ्य और भोजनसंबंधी उनके प्रयोगोंका सार इस पुस्तकमें है। मूल्य आठ आना

सर्दी-जुकाम-खांसी—सर्दी, जुकाम, खांसीका कारण तथा इन रोगोंकी चिकित्सा बतानेके साथ रोगोंका कारण, उनसे बचने और मुक्तिका रास्ता बतानेवाली सरल भाषामें लिखी गई, एक अपूर्व पुस्तक। मूल्य बारह आना।

मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार?—इस प्रश्नका उत्तर इस पुस्तकसे लें और दवाके जालसे निकलकर अपना स्वास्थ्य और धन बचाएं। ले० श्रीलूई कूने। मूल्य आठ आना।

आदर्श आहार—भोजनसे स्वास्थ्यका क्या संबंध है और भोजनमें थोड़ा-सा हेर-फेर करके रोगका निवारण कैसे किया जा सकता है, यह विशद रूपसे बतानेवाला एक ज्ञानकोष। मूल्य एक रुपया।

उठो!—नदी समुद्रसे मिलनेपर जिस आनंदका अनुभव करती है, पक्षीको उड़नेमें जो आसानी होती है, पृथ्वीको पहली वर्षासे जिस तृप्तिकी प्राप्ति होती है, मुर्झाए बिरवेको सूर्य-प्रकाशसे जो जीवन-दान मिलता है; वह आनंद, आसानी, तृप्ति और जीवन, यदि आप एक साथ पाना चाहते हों तो उठो! पढ़िए। मूल्य है केवल सवा रुपया।

स्वास्थ्य कैसे पाया ?

इस पुस्तकमे आप स्वास्थ्यको उन्नत वनाने और लोगोंके रोगोसे मुक्ति पानेकी आत्म कथाए पढकर स्वस्थ रहनेका सही रास्ता जानेंगे। वढ़िया छपाई, सुदर दुरगा कवर, चालीस हाफटोन चित्र, पृष्ठ संख्या २१६, दाम सिर्फ १॥)

—व्यवस्थापक, आरोग्य-ग्रंथमाला, गोरखपुर

—:अगर आप चाहते हों:—

कि

- आपके घरभरका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे,
- दवा-दारूसे पिंड छूटे,
- खान-पान-व्यायाम आदिके वारेमे जरूरी हिदायतें मिलें,
- भोजनसवधी खोजोका नया-से-नया ज्ञान प्राप्त हो,
- नामी प्राकृतिक चिकित्सकोंके लेख पढनेको मिलें,
- विना दवा-दरपनके पुराने रोगोसे छुटकारा पाए हुओंके वयान उन्हीकी जवानी जानें,
- 'आरोग्य-ग्रथमाला' की पुस्तकें तीन चौथाई मूल्यपर मिलती रहे तो

'आरोग्य'

मासिकके ग्राहक वन जाइए। इसका हर अंक स्वतत्र पुस्तककी भाति होता है। वार्पिक मूल्य ५) । एक अकका आठ आना।

व्यवस्थापक—'आरोग्य', गोरखपुर